विषय सूची

चित्र-सूची

छप गई ! प्रकाशित हो गई !!

[लेखिका—श्रीमती सुशीला देवी जी निगम, बी॰ ए॰]

आज हमारे अभागे देश में शिशुओं की मृत्यु-संख्या अपनी चरम-सीमा तक पहुँच चुकी है। अन्य कारणों में माताओं की अनभिज्ञता, शिक्षा की कमी तथा शिशु-पालन-सम्बन्धी साहित्य का अभाव प्रमुख कारण हैं।

प्रस्तुत पुस्तक भारतीय गृहों की एकमात्र मङ्गल-कामना से प्रेरित होकर सैकड़ों अङ्गरेज़ी, हिन्दी, बङ्गला, उर्दू, मराठी, गुजराती तथा फ्रेञ्च पुस्तकों को पढ़कर लिखी गई है, कैसी भी अनपढ़ माता एक बार इस पुस्तक को पढ़कर अपना उत्तरदायित्व समझ सकती है।

गर्भावस्था से लेकर ९-१० वर्ष के बालक-बालिकाओं की देख-भाल किस तरह करनी चाहिए, उन्हें बीमारियों से किस प्रकार बचाया जा सकता है, बिना कष्ट हुए दाँत किस प्रकार निकल सकते हैं, रोग होने पर क्या और किस प्रकार इलाज और शुश्रूषा करनी चाहिए, बालकों को कैसे वस्त्र पहनाने चाहिए, उन्हें कैसा, कितना और कब आहार देना चाहिए, दूध किस प्रकार पिलाना चाहिए आदि-आदि प्रत्येक आवश्यक बातों पर बहुत उत्तमता और सरल बोल-चाल की भाषा में प्रकाश डाला गया है। इससे अच्छी और प्रामाणिक पुस्तक आपको हिन्दी क्या, बहुत-सी भाषाओं में इस विषय पर न मिलेगी, इस बात का हम विश्वास दिलाते हैं।

यदि आपको अपने बच्चे प्यारे हैं, यदि आप उन्हें रोग और मृत्यु से बचाना चाहते हैं, तो इस पुस्तक को स्वयं पढ़िए और गृह-देवियों को अवश्य पढ़ाइए, परमात्मा आपका मङ्गल करेंगे।

सुन्दर छपी हुई सचित्र Protecting Cover सहित सजिल्द पुस्तक का मूल्य लागत-मात्र केवल २) रु॰; 'चाँद' तथा पुस्तक-माला के स्थायी ग्राहकों से १॥) मात्र!

☞ व्यवस्थापिका 'चाँद' कार्यालय, इलाहाबाद

हिन्दू-समाज और हिन्दी-संसार की तूफ़ानी चीज़

तब, अब, क्यों, और फिर ??

हिन्दी के प्रख्यातनामा लेखक

आचार्य श्री० चतुरसेन जी शास्त्री

की

लोह-लेखनी का उन्मत्त-हास्य, करुण-रुदन और ताण्डव-नृत्य, करोड़ों अधमरे हिन्दुओं की आज की आकांक्षाओं का ज्वलन्त अग्नि-समुद्र

महान् ग्रन्थ-रत्न

जिसमें

वाग्धारा का छलकता हुआ प्रवाह, प्रमाण और युक्तिवाह की घनघोर वर्षा, मौलिकता और नूतन क्रान्तिवाद का भयानक स्फोट, प्राचीन रूढ़ियाँ, अन्ध-विश्वास और कट्टरता के लिए महा प्रलय, बिलकुल अनूठे, जो न कभी सुने न कल्पना किए ऐसे विचार!

मानों—

पुस्तक का प्रत्येक पृष्ठ युद्ध-भूमि है, उसके लेखक प्रचण्ड योद्धा की तरह—असंख्य कुरीति, अन्ध-विश्वास, पाप, पाखण्ड और रूढ़ियों की शत्रु-सेना के मध्य में रणोन्मत्त होकर दोनों हाथों से तलवार चला रहा है।

पुस्तक पढ़ते-पढ़ते—

अनहोनी भावनाएँ मन में उदय होंगी। कभी गर्व से छाती फूल उठेगी, कभी करोड़ों बिच्छुओं के दंश की वेदना से आत्मा तड़प उठेगी। कभी जूझ मरने के हौसलों से रोम-रोम तन जायगा।

अन्त में—

"उठो और जीवित रहो" का मर्दाना सङ्कल्प तेज-पुञ्ज महासत्व की तरह शरीर में प्रवेश कर जायगा।

छप रही है !!

लगभग १,००० पृष्ठों में समाप्त होगी

विषय-सूची)॥ का टिकट भेजकर मँगाइए

मूल्य का अभी निश्चय नहीं

☞ व्यवस्थापिका 'चाँद' कार्यालय, इलाहाबाद

भविष्य-चिन्तन

करती हूँ मैं पूजा तेरी, किसी मृतक की स्मृति सुकुमार !
मेरे पति मेरे मरने पर, कभी बहावें आँसू चार !!

Highly appreciated and recommended for use in Schools and Libraries by Directors of Public Instruction, Punjab, Central Provinces and Berar, United Provinces and Kashmir State etc., etc.

परिवर्त्तन

[रचयिता—श्री० चन्द्रनाथ जी मालवीय 'वारीश']

हम थे जगाते सदा निद्रा-मग्न मानवों को,
कुम्भकर्णी नींद में स्वयं ही आज सोते हैं।
धन दान करते थे धनहीन याचकों को,
आज याचकों से दीन-हीन हमीं होते हैं॥
हम विश्व-व्यापी विश्व-प्रेम-बीज बोते रहे,
द्वेष का विषैला बीज आज हमीं बोते हैं।
दिन-रात रोने वालों को हम हँसाते रहे,
आज हमीं ऐसे हुए, रातों-दिन रोते हैं॥

दिसम्बर, १६२८

विजयिनी-बारदोली
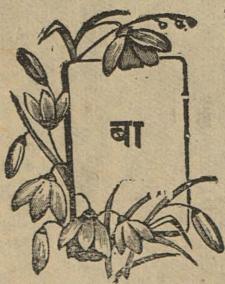
रदोली की वीरतापूर्वक विजय ने समस्त ब्रिटिश-साम्राज्य का ध्यान बारदोली तालुक़े की ओर खींच लिया है। बारदोली रक्त-हीन महाभारत का कुरुक्षेत्र बन गया था और यह युद्ध उस हद तक पहुँच गया था कि यदि वह जारी रहता तो दुनिया भर में हाहाकार मच जाता।

बारदोली वह स्थान है जिस पर महात्मा गाँधी को गर्व है और उसने उस प्रतिष्ठा की रक्षा की। परन्तु ब्रिटिश-गवर्नमेण्ट के सामने भी वह प्रश्न था, जिस पर वह या तो प्राण खो दे सकती है; या प्राण ले सकती थी। ऐसी ही अभूतपूर्व घटना वहाँ होते-होते रह गई, जिसके लिए संसार इस क्षुद्र प्रदेश की ओर दृष्टिपात कर आशङ्का कर रहा था।

बारदोली तालुक़ा सूरत से २० मील दूर ताप्तीघाटी रेलवे के निकट है, इसकी आबादी ८६ हज़ार है। यहाँ खेती के योग्य ज़मीन १२,६०० एकड़ है, जो १७,००० खातेदारों में बँटी है। खातेदार स्वयं अपनी ज़मीन को जोतते-बोते हैं। लगान पर मुश्किल से ३-४ हज़ार एकड़ होगी। सन् १८६७ में २० वर्ष के लिए इस तालुक़े में लगान का बन्दोबस्त हुआ था। उस समय वहाँ के किसानों पर ३४ लाख रुपया क़र्ज़ चढ़ रहा था। इस समय उन पर १ करोड़ के लगभग क़र्ज़ है। फिर भी सरकार ने ३० वर्ष के लिए २० फ़ी सदी लगान बढ़ा दिया है।

वीर-मूर्त्ति श्री० वल्लभभाई पटेल की अध्यक्षता में तालुक़े ने सरकारी लगान देने से इन्कार कर दिया था, सरकारी गुण्डों ने एक प्रकार से प्रजा को ख़ूब लूटा, सरकारी पठानों ने वहाँ की बहिन-बेटियों की आबरू लेने में कसर न छोड़ी और सरकार ने बेहया बनकर इन सबसे अन्त तक इन्कार किया। महीनों वहाँ घर-द्वार बन्द रहे और तालुक़े भर में सन्नाटा छाया रहा। वहाँ की प्रजा हिजरत करने, घर-बार छोड़ने, गोली खाने, और प्राणों पर खेलने को बिलकुल मुस्तैद बैठी थी। श्री० वल्लभभाई पटेल एक कर्मठ पुरुष और महात्मा गाँधी के चरम विश्वासी सेनापति हैं। इनके विषय में महात्मा जी ने लिखा था—"वल्लभभाई पटेल जाग्रत योद्धा हैं। उन्हें मेरी सहायता की आवश्यकता नहीं—पर वे जब मुझे बुलावेंगे, मैं पहुँचूँगा।"

श्री० पटेल ने एक बार कहा था—"ऐसा मालूम होता है कि बारदोली का आन्दोलन शीघ्र समाप्त नहीं होगा। जब तक सब मरना नहीं सीखेंगे, तब तक स्वराज्य नहीं मिल सकता। क़ानून मान कर सबको चलना चाहिए, परन्तु प्रजा की सलाह के बिना मालगुज़ारी बढ़ा लेने का जो नियम बना लिया गया है, वह ग़ैरक़ानूनी है। इस संग्राम में सभी विचार और सभी दल के लोग एक मत हैं, बारदोली के किसान मर-मिटेंगे, मगर अपने आप विसर्जन नहीं करेंगे। मैं सरकार को बारदोली में गोली चलाकर देख लेने की चुनौती देता हूँ। बारदोली के किसान इसके लिए तैयार हैं। मैंने उन्हें पीठ पर नहीं, छाती पर गोली खाने की सलाह दी है। गुजरात के किसान आज वे नहीं हैं जो पहले थे। आज वे चौकन्ने हैं। नहीं हैं तो मैं कर दूँगा। कोई भी सरकार केवल पशु-बल से अब शासन नहीं कर सकती। बारदोली के किसानों की माँग सिर्फ़ इतनी ही है कि बन्दोबस्त की फिर से जाँच कराई जाय। यह माँग पूरी न की गई तो वे मर-मिटना पसन्द करेंगे, पर लगान अदा न करेंगे।"

उन्होंने जो भाषण अपने किसानों के सम्मुख दिया था, वह इस प्रकार थाः—

"जो तुम्हें अपनी शक्ति का पूरा ज्ञान हुआ हो, तुमने हवा साफ़ की हो, तुम्हारे दिल साफ़ हो गए हों, तो तुम्हारी ज़मीन के टुकड़े को कोई भी हाथ नहीं लगा सकता। तुम्हारे बर्तन और वस्त्र उठाने वाला भी कोई नहीं मिलेगा। इसी शक्ति की शिक्षा देने के लिए मैं यहाँ आया हूँ। जब सरकार ने अपने से लड़ाई लड़ना ही चाहा, तब हम भी उसे लड़ कर बता रहे हैं। एक समय बारदोली, आनन्द और बोरसद-सत्याग्रह के युद्ध में अपना कौशल बतलाते खेड़ा को अवसर मिला और उसने कर बताया। अब तुम्हारा अवसर आया है, तुम लड़कर बतलाओ। आज तो तुमने ऐसी लड़ाई लड़ना आरम्भ किया है कि जिससे भारतवर्ष का नाम रहने का है। अमर तो कोई रहने का नहीं है। ज़र-ज़मीन सब पड़ा रह जाएगा, नाम बस एक रहेगा। लाख, सवा लाख रुपए का अधिक लगान देना हो तो जैसे-तैसे करके उसे भी भरो। इतना ख़र्च करते हो उतना और सही। पर यह लगान जो तुम्हें ग़लत साबित कर, तुम्हारे पास से लिया जाता है। सरकार कहती है कि तुम ज़मीन के मालिक हो। तुम्हारे घर बड़े हैं, तुम्हारे खेत आबाद हैं; और रुपया ख़र्च नहीं करना पड़ता, तुम झूठ बोलते हो। तुम्हारे नेता झूठे हैं। मैं यह कहता हूँ कि यह अपमान सहकर लगान भरने की अपेक्षा मरना अच्छा है। सरकार को हर काम में अपनी ही बात सच्ची करनी है। जब सरकार गुजरात के किसानों को झूठा कहती है, तब मुझसे यह सहन नहीं होता। जब तक सरकार के मुँह से यह भाषा दूर न हो, तब तक तुम्हारी इज़्ज़त कहाँ है? इस इज़्ज़त के लिए लड़ो, मर जाओ, सरकार से कहो कि सचाई का दावा हो तो अपनी बात पूरी कर दिखाओ। एक तुम्हारा और एक हमारा, इस प्रकार पञ्च नियुक्त कर सारी बातें उनके सामने रक्खो। हम झूठे नहीं हैं, टण्टा तो तू करती है, तेरे ही भाई-बिरादर झूठे हैं, यह हम सिद्ध कर बता देना चाहते हैं। युवाओं को यही गाँव के चौकीदार तलासी चक्कर मारते फिरें। सन्ध्या में तो सबके साथ घूमा जा सकता है। ज्यों-ज्यों लड़ाई लड़ोगे, त्यों-त्यों तुम्हें शिक्षा मिलेगी, और कुशल बनोगे, और इस प्रकार के बन जाओगे, तभी स्वराज्य की लड़ाई सीखोगे। तुम्हें देखकर पड़ोसी भी तुम्हारा पाठ सीखेंगे। इसी में हमारे हिन्दुस्तान के किसानों की माँग समाई है। हमें सरकार सुखी कहती है। हमारे समान सुखी आदमी थोड़ा भी दुख न सह सकें तो जीना वृथा ही है। जो दलित दुखी हैं, उन्हें क्या सीखना है। मातर तालुका तुम्हारी अपेक्षा एक समय सुखी था, सबसे धनवान गिना जाता था, तुम्हारे मकानों की अपेक्षा वहाँ बड़े-बड़े मकान थे। वह आज भिखारी में भिखारी है।

"मुहमदाबाद में, धन्धुका-धोलका में भी ऐसी ही अवस्था है। तुम कुछ सुखी हो तो ईश्वर की कृपा से हुए हो। इसमें तुम्हारी बुद्धि का कारण नहीं है। लोग अफ़्रीका गए, महायुद्ध हुआ, थोड़े वर्ष में रूई का भाव चढ़ गया, पर यह युद्ध हमेशा के लिए नहीं हुआ। लगान तो हमेशा के लिए है। तीस वर्ष तक, सवा लाख वार्षिक अधिक लगान भरना पड़ेगा। इसलिए पहले से ही विचार कर सरकार से कह दो कि तुम्हारा मामला झूठा है। हमसे यह नहीं दिया जा सकेगा। ईश्वर तुम्हें इतनी बुद्धि और सत्य पर क़ायम रहने की शक्ति प्रदान करे।

अमलदार ग़लती नहीं करते

"हम कुछ सरकार का राज्य पलटने के लिए नहीं निकले हैं। पर इस लगान की लड़ाई में लड़ते हुए हमें यह विदित हो जायगा कि यह राज्य एकदम पोला है, फूँक से उड़ जाय, ऐसा ही है। उसकी निर्बलता भूत की निर्बलता के समान है। भूत दीखता नहीं है, उसी प्रकार सरकार भी नज़र से दीखती नहीं है।

"ब्रिटिश-राज्य में एक क़ायदा है कि राजा कोई खोटा काम नहीं कर सकता है। इसका अर्थ यह है कि राजा चाहे जो गुनाह करे, तो भी प्रजा ने तो राजा की सारी सत्ता मर्यादित कर अपने हाथ में ले ली है। अब केवल हिन्दुस्तान में यह क़ानून लागू पड़ता है और यहाँ आगे बढ़ कर यह भी कहा जाता है कि राजा तो गुनाह करता ही नहीं है। पर उसके नौकर-चाकर भी भूल नहीं करते। रेवेन्यू-विभाग के एक लगान लगाने वाले अमलदार ग़लती कर डाले, पर वह ग़लती न गिनी जाय। वह गाँव के चौकीदार के पास से आँकड़े इकट्ठा करे। चौकीदार बेचारा यह जानता तक नहीं है कि आँकड़ों का क्या उपयोग होगा? तीन दिन में वर्षों के आँकड़े इकट्ठे कर लिए जाते हैं, और इन आँकड़ों के आधार पर लगान ढाँक कर बैठा दिया जाता है। मैंने ग़लती प्रकट कर कहा यह तो बड़ी भद्दी भूलें हैं। ऐसी भूलों से तो ग़रीब किसान मर जायँगे, तो वे हमसे कहते हैं कि हमारे अमलदार बहुत होशियार हैं और निपुण गणितज्ञ हैं।

"गाँव-गाँव फिर कर उसने रिपोर्ट तैयार की है, मैंने कहा कि यह बात बिलकुल झूठी है। उनके बन्दोबस्त के कमिश्नर की रिपोर्ट पर से उनकी ग़लती मैंने प्रकट कर दिखाई। तिसपर भी अमलदार ग़लती नहीं करते।

"इससे अब मैं किसानों को तैयार होने की शिक्षा देने के लिए आया हूँ। पर हमें इस प्रकार तैयार होना चाहिए कि संसार में कोई अपनी निन्दा न कर सके, जिसमें सत्य हमारी ओर हो। हमारी इस लड़ाई में कोई हमारी ग़लती बतलावे, ऐसा कभी नहीं।"

अब बारदोली-लगान के गुण-दोष पर विचार करना आवश्यक है। बारदोली का नया बन्दोबस्त मिस्टर जयकर नामक एक अफ़सर ने किया। उन्होंने अपनी सिफ़ारिशें सन् १९२५ के नवम्बर महीने में पेश कीं। उन्होंने तीस सैकड़ा लगान बढ़ाने की सूचना दी। लगान के अमलदार मि० एण्डरसन मि० जयकर की सिफ़ारिशों से राज़ी नहीं हुए और उनसे जुदे विचार प्रकट कर २९ सैकड़ा लगान बढ़ाने की सिफ़ारिश की। बम्बई-सरकार ने अपने इन दोनों अफ़सरों की बात मिलती न देखकर, २२ सैकड़ा लगान बढ़ाया। इस प्रकार तहसील का लगान ५,१४,७६२ रुपए से बढ़कर ६,२१,००० बढ़ गया। इस पर बारदोली के किसानों का कहना यह है कि इस तहसील पर हद दर्जे तक लगान बढ़ाया जा चुका है, उसमें ज़्यादा लगान बढ़ाने की ज़रा भी गुञ्जाइश नहीं रही है। इस तहसील में ज़मीन रखने वालों की संख्या इस प्रकार है:—

१ से ५ एकड़	...	... १०,३७१
६ से २५½ "	...	... ५,९३६
२६ से १०० "	...	... ८२९
१०१ से ५०० "	...	... ४०

यह प्रकट है कि २५ एकड़ से अधिक ज़मीन जिन किसानों के पास नहीं है, वे ख़ुद खेती करते हैं। अधिक ज़मीन रखने वाले ही, दूसरे किसानों से खेती कराते हैं। इस हिसाब से १६,३१५ किसान हैं, जिनकी कुल १,२७,०४५ एकड़ ज़मीन पड़ती है। (प्रत्येक किसान को ८ एकड़ ज़मीन पड़ती है) वे अपनी-अपनी ज़मीन जोतते-बोते हैं। बड़े ज़मींदार तो केवल ८६९ हैं। इतने छोटे किसानों को बड़े ज़मींदारों में रखकर लगान बढ़ाना सरासर अन्याय है। लगान तो दर-असल में ज़मीन-लगान-क़ानून की १०७ वीं क़लम के अनुसार बढ़ाना चाहिए था। १६,३१५ किसानों की ज़मीन की क़ीमत और उससे उन्हें जो नफ़ा मिलता हो उसके आधार पर लगान बढ़ाया जा सकता था। बारदोली के किसानों की दलील यह है कि तुम हमारा लाभ देखो, पर सरकारी अमलदार तो पैदावार के दाम देखते हैं। किसान कहते हैं कि डेढ़ एकड़ में ख़र्च वग़ैरह लगाकर क्या पड़ता है, उसमें कितनी पैदावार होती है, और हमें अन्त में उससे क्या बचता है; उस पर लगान लगाओ। पर बन्दोबस्त के अफ़सर तो बाज़ार में पैदावार के दाम देखकर लगान बढ़ाने की ज़िद में हैं। आठ एकड़ के किसान को इतना नफ़ा नहीं मिलता कि उस पर लगान बढ़ा दिया जाय। किसान अपनी इस दलील को साबित करने के लिए तैयार हैं, और उन्होंने यह भी घोषित कर दिया

कि ५० सैकड़ा नफ़ा की घोषणा स्वीकार करने में आवे, तो भी लगान बढ़ाना उचित नहीं प्रकट होता। यदि नफ़ा २५ सैकड़ा पर शुमार करने में आवे तो सरकार को मौजूदा लगान में जल्दी से कमी करनी चाहिए। उनकी इस शिकायत से तहसील की अवस्था प्रकट होती है। ये किसान तो सरकारी रिपोर्ट में लगाई हुई पैदावार की क़ीमत और उसमें लिखी हुई सची बातों को झूठी साबित करने के लिए तैयार हैं। यही नहीं, वे तो सरकार पर यह भी इल्ज़ाम लगाते हैं कि लगान-बन्दोबस्त के अफ़सर मि० जयकर को जैसी जाँच-पड़ताल करनी थी सो उन्होंने कुछ भी नहीं की। बहुत से थोड़े गाँवों में वे गए और लगान बढ़ाने के सवाल पर किसानों की आवाज़ सुनने का ज़रा भी मौक़ा न दिया गया। उन्होंने ग़लत रिपोर्ट तैयार की, अपने ऑफ़िस में बैठे-बैठे ही रिपोर्ट लिखी, और अपनी ३०) सैकड़ा की वृद्धि के लिए कुल पैदावार के भाव का आधार ऊँचा रक्खा। मि० जयकर की जाँच को यदि जाँच कहा जाय तो फिर भी वह जाँच इतनी ग़लत है कि उस जाँच का कोई मूल्य नहीं रहा। पर मि० अण्डरसन ने तो दूसरे ही उद्देश्य से मि० जयकर की रिपोर्ट पर अपनी सम्मति दी। मि० अण्डरसन का उद्देश्य वही है, जो कौन्सिल के प्रतिनिधियों का कौन्सिल में रहा। मि० अण्डरसन कहते हैं कि मि० जयकर ने अपनी सिफ़ारिश कुल पैदावार की क़ीमत के आधार पर की है। वह अनुचित है। उनकी इस सिफ़ारिश से मैं सहमत नहीं हूँ, उनकी किसी भी सिफ़ारिश को नहीं माना जा सकता। इस अवस्था में मि० अण्डरसन ने फिर नए सिरे से जाँच करने की सरकार से सिफ़ारिश की थी। पर बन्दोबस्त के अफ़सर की प्रेस्टिज के कारण यह सब कुछ कहकर भी अन्त में आँकड़ों के आधार पर कमी सिफ़ारिश कर दी। मि० अण्डरसन का काम अनेक सरकारी अफ़सरों ने अनुचित बतलाया। इन अफ़सरों ने कहा कि इस नई सिफ़ारिश का कोई महत्व नहीं है, क्योंकि ये आँकड़े थे ही ग़लत और बिना किसी जाँच के किताबों में लिख लिए गए हैं। मि० जयकर ने सची जाँच न कर, लगान के क़ानून को पैरों तले कुचला है और मि० अण्डरसन मि० जयकर की बातें जानकर भी इस क़ानून के उल्लङ्घन करने में उससे भी एक पैर आगे बढ़ गए हैं। लगान का क़ानून साफ़ है कि जो आँकड़े इकट्ठे किए जायँ, उनका तब तक उपयोग नहीं किया जा सकता जब तक कि उनका अर्थ सब प्रकार से समाधान न हो जाय। पर यहाँ तो सच्चे आँकड़े ही न तैयार कर, भयङ्कर ग़लती की गई है। एक ओर मि० अण्डरसन मि० जयकर पर यह इल्ज़ाम लगाते हैं कि तुमने सच्चे आँकड़े मालूम करने और किसानों की ज़मीन का विस्तार जानने में ज़रा भी प्रयत्न नहीं किया। दूसरी ओर यह होते हुए भी अण्डरसन साहब ख़ुद ग़लत निर्णय पर आ जाते हैं कि कम से कम आधी ज़मीन ज़मींदारों की है, जो ख़ुद खेती नहीं करते हैं। मि० अण्डरसन की ग़लती के दो कारण हैं। एक तो उन्होंने जल्दी में सात वर्ष के आँकड़ों को ४२,९२३ एकड़ एक वर्ष के गिन लिए हैं, और दूसरे मि० जयकर के शुमार में २३,९९५ एकड़ ज़मीन अर्थात् कुल विस्तार की १८ सैकड़ा ग़ैर-किसानों के हाथ में है—इस बात की अटकल लगाई है।

इन्हीं कारणों से मि० जयकर और मिस्टर अण्डरसन दोनों की रिपोर्ट ग़लत है। और सरकार का नियत किया हुआ २२ टका का नया लगान बिना किसी आधार के मनमाना लगाया हुआ लगान है। इस अन्याय-युद्ध के सम्बन्ध में देश के प्रायः सभी महापुरुषों ने सरकारी नीति के प्रति अपना विरोध प्रकट किया था।

महात्मा गाँधी का कथन था—

"अफ़वाह गरम है कि सरकार दमन की तैयारी कर रही है और तत्काल की ज़ब्ती की कारवाई रोक दी गई है। परन्तु सत्याग्रहियों पर ऐसी अफ़वाहों का कोई असर नहीं होना चाहिए। सरकार क्या करेगी और क्या न करेगी, इस ओर उनकी उपेक्षा होनी चाहिए। पर उन्हें अपनी ओर से सजग रहना चाहिए, जिसमें सरकार उन पर असावधान दशा में वार न कर सके। सत्याग्रहियों को अपनी प्रतिज्ञा पर दृढ़ रहना चाहिए।"

श्री० केलकर का कथन था—

"मालगुज़ारी बढ़ाना सरकार के लिए ज़रूरी है, इसी से उसने मालगुज़ारी बढ़ाई है, परन्तु दुख की बात है कि यह दायित्व-हीन सरकार प्रजा के मर्म-भेदी और युक्ति-सङ्गत प्रतिवाद की उपेक्षा कर रही है। इसलिए किसानों के लिए क़ानून हाथ में लेने के सिवा और कोई उपाय ही नहीं रह जाता। बारदोली के किसानों ने मालगुज़ारी की

वृद्धि के विरुद्ध सत्याग्रह करके अपनी आत्म-निर्भयता का ही परिचय दिया है। 'टाइम्स' ने इस आन्दोलन को बोलशेविकों का आन्दोलन कहकर जो नीचता की है, उससे बढ़कर नीचता दूसरी हो ही नहीं सकती। गवर्नर की काउन्सिल के भारतीय सदस्यों और मन्त्रियों ने इस कर-वृद्धि का समर्थन करके बताया है कि देश के लोगों का कहाँ तक पतन हो गया है। ऐसे ही लोगों के बुद्धि-दोष से असहयोग की वृद्धि हो रही है। भारतीय प्रजा अनुभव करती जा रही है कि सरकार के साथ सहयोग करना सम्भव ही नहीं है। यदि सिविलियनों की यही मनोवृत्ति रही तो भारतीयों को बारदोली के किसानों को सहायता देने के सिवा कोई उपाय नहीं रह जायगा। यदि बारदोली के किसानों की पराजय हुई तो वह समस्त देश के किसानों और नेताओं की पराजय होगी; और वह देश के लिए अत्यन्त अपमान की बात होगी।"

श्री० हृदयनाथ कुँजरू का कथन था—

"बारदोली के बन्दोबस्त की कार्यवाही जिस ढङ्ग से की गई है वह अवैध है और किसी प्रकार उचित नहीं ठहराई जा सकती। बारदोली के किसानों का अद्भुत भाव और हिम्मत मैं अपनी आँखों से देख आया हूँ। यदि उनके पक्ष में न्याय न होता तो यह कदापि सम्भव न था कि हज़ारों किसान हँसते-हँसते इतनी हानि और कष्ट सहते। बारदोली-सत्याग्रह न बोलशेविकों का कार्य है और न क्रान्तिकारियों का। वह सरकारी अन्याय और ज़बरदस्ती के विरुद्ध लड़ी जाने वाली एक सीधी-सादी लड़ाई है। बारदोली के किसानों की माँग बहुत नरम माँग है। यह बात 'पायोनियर' तक को स्वीकार करनी पड़ी है। मैं आशा करता हूँ कि अब भी सरकार का विवेक जाग्रत होगा और वह इस नरम माँग को स्वीकार कर लेगी, अन्यथा सम्पूर्ण भारत राजनीतिक दल-भेद का विचार न कर, दृढ़ता से बारदोली के किसानों का साथ देगा।"

डॉक्टर सत्यपाल का कहना था—

"बारदोली के वीर आज भी अचल, वीर और कष्ट सहने को तैयार हैं। मुझे विश्वास है कि उस भूमि के प्रत्येक कृषक में त्याग, बलिदान, आत्म-विश्वास और अपनी प्रतिज्ञा पर अटल रहने की इतनी भावना है जितनी हममें से कइयों में आधी भी नहीं है। यदि सरकार को अपनी शान का विचार है तो उस तालुक़े के प्रत्येक सत्याग्रही को भी अपनी सम्मान-रक्षा का हठ है। मैं यह कहने के लिए तैयार हूँ कि यदि बारदोली-सत्याग्रह स्वतन्त्रता-मन्दिर का सोपान नहीं, तो कम से कम उसने हमें मुक्ति-पथ तो दिखा ही दिया है। अस्सी हज़ार शस्त्र-हीन योद्धा-एक सशस्त्र सरकार का कैसे मुक़ाबला कर सकते हैं, यह बात देखने योग्य है। वे हँसते हुए गोलियाँ खाने को तैयार हैं। औचित्य और सत्य के लिए जान देने को भी तैयार हैं। उन महात्माओं पर गोलियों और शस्त्र, जेल और ज़ब्ती का कुछ भी प्रभाव नहीं हो सकता। मेरे कान में एक महापुरुष की देव-वाणी गूँज रही है कि वह देश की सम्मान-रक्षा और प्रतिष्ठा पर अटल रहने के लिए अपने प्राण दे देगा, पर अत्याचार और पाशविक बल के आगे नत-मस्तक न होगा। मैं ईश्वर से प्रार्थना करता हूँ कि सभी भारतीयों को ऐसे स्वाभिमानी और सत्य-प्रेमी के अनुकरण की प्रेरणा करे तथा समस्त देश से प्रार्थना करता हूँ कि धीरतापूर्वक सत्याग्रह की समाप्ति की राह देखे, जो अवश्य सन्तोषप्रद और मनोवाञ्छित प्रमाणित होगा। मेरी हार्दिक इच्छा है कि देश के कोने-कोने में इस आदर्श का अवलम्बन किया जावे। प्रत्येक देशभक्त मैदान में इस निश्चय के साथ आवे कि हम बिना किसी की सहायता के अपनी मातृभूमि को स्वतन्त्र करके रहेंगे। सरकार की दया, साइमन-कमीशन के सहयोग या भीख माँगने से स्वराज्य न मिलेगा। इतिहास हमें बतलाता है कि स्वतन्त्रता-प्रेमियों और ग़ुलामी की ज़ञ्जीरें तोड़ने के प्रयत्नशील योद्धाओं के पवित्र रक्त ने ही स्वतन्त्रता प्रदान की है। मैं उत्सुकता से उस पवित्र दिन के आगमन की बाट जोह रहा हूँ।"

श्रीमती सरलादेवी चौधरानी कहती थीं—

"बारदोली ने ही हमारी राजनीति को वर्षों के लिए पीछे ढकेल दिया था, और आज उसी के दृढ़ आधार पर हमारी राजनीति साँस ले रही है। भारतीय किसान और ज़मींदार कर-भार के नीचे दबे जा रहे थे, पर उन्होंने विरोध का साहस कभी नहीं किया। जिसके फल-स्वरूप उन्होंने असीम कष्ट सहे। अपराध डरपोक किसानों का भी था और अत्याचारी शासकों का भी। आज उन्होंने इस असह्य अपराध का विरोध करके, भारत की मुक्ति का द्वार खोल दिया है।"

श्रीमती बिसेण्ट ने कहा था—

"बम्बई की सरकार ने बारदोली के बहादुर किसानों की ज़मीनें ज़ब्त करनी शुरू कर दी हैं, क्योंकि उन्होंने बढ़े हुए लगान की वसूली के पहले बन्दोबस्त की दो बार जाँच किए जाने की माँग पेश करने का साहस किया था, पर सरकार कहती है कि ये ज़मीनें वापस न की जावेंगी, मुझे इसमें आश्चर्य नहीं है; क्योंकि अब से कुछ ही वर्ष बाद पहली स्वराज्य-सरकार इस अन्याय का प्रतिकार कर देगी। यदि इसी बीच में बारदोलियों की तादाद बढ़ती चली गई तो क्या होगा?"

लाला लाजपतराय ने कहा था—

"सरकार के रोब का ख़ब्त आग में घी डाल रहा है। हमारी धारणा है कि सविनय अवज्ञा ग़ैर-क़ानूनी और अवैध नहीं है। अनुचित क़ानूनों और निष्क्रिय विरोध करने से जनता को रोकने के लिए कोई भी सरकार सर्व-शक्तिमान् नहीं बन सकती। इस देश की सरकार जनता की सरकार नहीं है। काउन्सिलें तक भी वस्तुतः प्राति-निधिक नहीं हैं, उनमें सरकारी मनोनीत सदस्य ही भरे हैं। क़ानून की अवज्ञा को ग़ैर-क़ानूनी बताने का सरकार को हक़ नहीं है। हमें गवर्नर की चुनौती स्वीकार करके अपने अधिकार के वास्ते सब कुछ चुकाने को तैयार हो जाना चाहिए। बारदोली वालों को बहुत कष्ट सहने पड़ेंगे। पर यदि यह कष्ट सहना भी नहीं हो सकता तो हमें चुपचाप विदेशियों से अपनी स्वाधीनता को ख़ूब कुचलते रहने देना चाहिए। स्थिति १६२१ की सी हो रही है।"

गत १८ जुलाई, १६२८ को सूरत में बम्बई के गवर्नर से सत्याग्रह-समिति के नियुक्त ६ प्रतिनिधियों का एक डेपुटेशन इस विषय में समझौता कराने को मिला था, जिसमें (१) श्रीवल्लभभाई पटेल, (२) श्री कल्याण जी विट्ठल भाई, (३) श्री० अब्बास जी तैयब जी (४) श्रीमती शारदा सुमन्त मेहता (५) कुमारी मीठू बहिन पेटिट, (६) श्रीमती भक्ति वा गोपालदास देसाई। ये ६ व्यक्ति थे। डेपुटेशन से गवर्नर के मिलने के समय—कमिश्नर मि० स्मार्ट, कलक्टर हार्टशोर्न, रेवेन्यू-मेम्बर मि० रिड भी उपस्थित थे।

गवर्नर ने छूटते ही पूछा कि क्या यह किसानों का डेपुटेशन है?

श्री० पटेल ने कहा—हाँ, मैं किसान हूँ, और यह किसानों का डेपुटेशन है। हम किसानों की बात स्पष्ट-रूप से रखने ही के लिए यहाँ आए हैं। सरकार और प्रजा दोनों की आबरू रहे, ऐसा ही कोई निश्चित साधन हम चाहते हैं। सरकार की इज़्ज़त में ख़लल डालना हम नहीं चाहते। तथा प्रजा पर दया दिखाकर कुछ किया जाय, यह भी हमें स्वीकार नहीं है—जो न्याय की बात है वही होनी चाहिए। सरकार जाँच कराने के लिए तैयार है तो समझ में नहीं आता कि किस क़ानून के अनुसार सरकार बढ़ाया हुआ लगान पहले माँगती है। जाँच होकर जो कुछ निश्चय हो वह दोनों पक्ष मान लें।

गवर्नर ने कहा:—

१—जाँच-कमिटी बनेगी, उसमें एक जज, एक रेवेन्यू-विभाग का अफ़सर और एक ग़ैर-सरकारी व्यक्ति रहेगा।

२—ज़ब्त किया गया माल तथा बेच दी गई चीज़ें नहीं मिलेंगी।

३—क़ैदियों का विचार करने पर यदि उचित समझा गया तो उन्हें छोड़ दिया जायगा।

४—पहले बढ़ा हुआ तमाम महसूल चुकता कर दिया जाना चाहिए।

डेपुटेशन ने निम्न शर्तें पेश कीं:—

१—कमिटी में एक जज तथा दो ग़ैर-सरकारी व्यक्ति हों।

२—सत्याग्रही क़ैदी छोड़ दिए जायँ, जिससे जाँच में ठीक न्याय मिल सके।

३—ज़ब्त ज़मीनें और माल वापस मिले।

४—टेलाटो तथा पटेल, जिन्होंने इस्तीफ़े दिए या सरकार ने नोटिसों द्वारा बर्ख़ास्त किया है, फिर से बहाल किए जायँ।

५—प्रजा जाँच-कमिटी का पूर्ण निर्णय होते ही पूरा महसूल भर दे।

उपरोक्त दोनों तरफ़ की शर्तों को देखने पर प्रकट हो जाता है कि गवर्नर की शर्तों में टाल-मटोल, अभि-मान, अन्याय और बेपरवाही है, और श्री० वल्लभभाई की शर्तों में न्याय, प्रतिष्ठा, स्थिरता, गम्भीरता और सावधा-नता की गूँज है। इसके बाद श्री० पटेल ने अपने सब साथियों के साथ परामर्श करके जो जवाब गवर्नर को

दिया है, वह सभ्यता और शिष्टता का नमूना है। लेकिन गवर्नर ने खूँख़्वार पशु की तरह गुर्रा कर काउन्सिल में जो कहा था, वह इस प्रकार है :—

"मैं समझता हूँ कि इस विषय में काउन्सिल के सामने सरकार की नीति को मैं घोषित कर दूँ। बारदोली की समस्या अखिल भारतीय रूप पकड़ चुकी है और इसका महत्व भी कई दृष्टियों से बहुत अधिक है।

"इस समय सारा झगड़ा एक ही प्रश्न पर केन्द्रित हो गया है, अर्थात् हिज़ मैजेस्टी दि किङ्ग एम्परेर के राज्य में हिज़ मैजेस्टी का शासन माना जाना चाहिए या किसी ग़ैर-सरकारी व्यक्ति का या संस्था का? यह विषय ऐसा है जिसके निर्णय में सरकार अपनी सारी ताक़त आज़मा लेगी! बारदोली के प्रतिनिधियों को स्पष्ट बता देना चाहिए कि वे सरकार की शर्तों को स्वीकार करते हैं या अस्वीकार, ××× सरकार की ओर से मैं काउन्सिल के सामने वही शर्तें रखता हूँ, जो मैंने सूरत में किसान-प्रतिनिधियों के सामने रक्खी थीं। उन शर्तों का दुहराना व्यर्थ है। मैं यह साफ़ कह देना चाहता हूँ कि वे शर्तें केवल प्रस्ताव नहीं हैं, बल्कि सरकार का अन्तिम निर्णय है। वे न्यायपूर्ण हैं और किसी भी न्याय-प्रिय व्यक्ति के लिए स्वीकार के योग्य हैं। इससे पूर्व कि सरकार की ओर से तहक़ीक़ात का वचन दिया जाय, उन शर्तों का पूरा होना लाज़िमी है। वह अटल हैं—उनमें परिवर्त्तन की कोई गुञ्जाइश नहीं।

"काउन्सिल-सदस्यों को चाहिए कि वे १५ दिन के भीतर ही भीतर रेवेन्यू-मेम्बर के पास इस विषय का सम्वाद भेज दें कि उन्हें सरकार द्वारा प्रस्तावित शर्तें स्वीकार हैं या नहीं। ××× यद्यपि मुझे आशा नहीं कि काउन्सिल के सदस्य किसानों के हित को सामने रखते हुए उन शर्तों से इन्कार करेंगे; मगर यदि उन्होंने अस्वीकार किया तो उन्हें समझ लेना चाहिए कि सरकार तब अपने शासन और क़ानून की रक्षा के लिए प्रत्येक उपाय का आश्रय लेगी। कोई भी सरकार किसी भी व्यक्ति या संस्था द्वारा क़ानून के तिरस्कार को सहन नहीं कर सकती। ××× सत्याग्रह ग़ैर-क़ानूनी है—उसे करने वाले चाहे अपने को कितना ही न्याय पर समझते हों, पर क़ानून भङ्ग करना एक अपराध है।"

मि० नरीमैन ने इस भाषण को गिदड़-भबकी बताया है, मगर उधर पार्लिमेण्ट के हाउस ऑफ़ कॉमन्स में अर्ल विन्टरटन ने ललकारते हुए कहा था—"यदि बम्बई-गवर्नर की पेश की हुई शर्तें न मानी गईं तो बम्बई-सरकार को भारत-सरकार और ब्रिटिश-सरकार की ओर से पूर्ण स्वतन्त्रता है कि वह जैसे चाहे वैसे क़ानून की रक्षा के लिए राजद्रोही आन्दोलन को कुचल डाले। ××× जहाँ किसान लोग लगान अदा करने से इन्कार कर देंगे, वहाँ कोई गवर्नमेण्ट नहीं ठहर सकती। ब्रिटिश-सरकार बारदोली के राजद्रोही और ग़ैर-क़ानूनी आन्दोलन को मटियामेट कर देने के लिए बम्बई-सरकार के सब प्रयत्नों का समर्थन करती है।"

गवर्नर और भारत-मन्त्री के इस तरह गुर्राने पर महात्मा गाँधी ने लिखा :—

"सत्याग्रहियों का कर्त्तव्य बिलकुल निश्चित है। उन्हें सदैव न्यायोचित समझौते के लिए तैयार रहना चाहिए। परन्तु वह यदि नहीं होता, तो उन्हें उसके लिए लड़ने को भी तत्पर रहना चाहिए। सत्याग्रही को प्रण की रक्षा के लिए अपने प्राणों की बलि चढ़ा देनी चाहिए।"

उधर बारदोली के किसान, प्राणों की बलि चढ़ा देने की तैयारी कर चुके थे। अब तक ज़ब्ती और कुर्की तथा छोटी-छोटी बातें हो रही थीं, पर शीघ्र ही मामला बहुत गम्भीर होने वाला था। खेतों को जोतने-बोने का समय आ रहा था। बारदोली के किसानों ने यह ठान लिया था कि वे खेतों पर अपना क़ब्ज़ा बनाए रक्खेंगे, जो खेत सरकार ने नीलाम कर दिए हैं और दूसरों को बेच दिए हैं, उन पर उसी तरह क़ब्ज़ा रक्खेंगे और उन्हें जोतें और बोवेंगे। प्राण रहते वे खेतों से नहीं हटेंगे। ऐसी दशा में सरकार गोली चलाने को बाध्य होती। और यदि बारदोली के किसानों का ख़ून खेतों में गिरता तो निश्चय ही हिन्दुस्तान में वह आग लगती जो किसी के बुझाए न बुझती।

लण्डन के 'मैनचेस्टर गार्जियन' पत्र ने, जोकि मज़दूर-दल का पत्र है, लिखा था—"ऐसी आपदाओं को टालने का सबसे सुगम उपाय यही है कि प्रान्त का आर्थिक एवं कर-सम्बन्धी अधिकार मन्त्रियों ही के हाथों में दिया जाय। × × × पिछले वर्षों में रैयत को यह अच्छा हथियार मिल गया है। ज्वाइण्ट पार्लमेण्टरी कमिटी ने भी यही सिफ़ारिश की थी कि ज़मीन की मालगुज़ारी में

आवृत्ति करने के सिद्धान्तों का व्यवस्थापिकाओं से सम्बन्ध कर देना चाहिए। पहले वे सिद्धान्त शासन-सम्बन्धी आज्ञाओं एवं क़ानूनों में ही पाए जाते थे और प्रान्तीय सरकारें भी इसे व्यवस्थापिका सभाओं से सम्बन्धित करने की सिफ़ारिश नहीं करती थीं, क्योंकि उन्हें भय था कि सदस्य ऐसा संशोधन उपस्थित करेंगे जिससे मालगुज़ारी का बढ़ाना प्रायः बन्द ही हो जायगा। ××× सरकार के विरुद्ध प्रचार करने का यह एक अच्छा साधन है और यह सब साधनों से कहीं आकर्षक है, इसलिए कि उपाय भी यही है कि ज़मीन की मालगुज़ारी और प्रान्त का आर्थिक प्रबन्ध मन्त्रियों को सौंप दिया जाय, जो व्यवस्थापिकाओं के सामने इसके लिए दायी हों। आबकारी के कर के सम्बन्ध में मन्त्रियों तथा व्यवस्थापिकाओं ने भी अच्छा प्रबन्ध किया है। अतः यह मानने के काफ़ी कारण हैं कि ज़मीन की मालगुज़ारी के सम्बन्ध में भी वे वैसा ही करेंगे। शहर स्वयं कोतवाली सिखलाता है।"

* * *

तालुक़े के मनुष्य कहाँ तक क़ुर्बानी को तैयार थे,
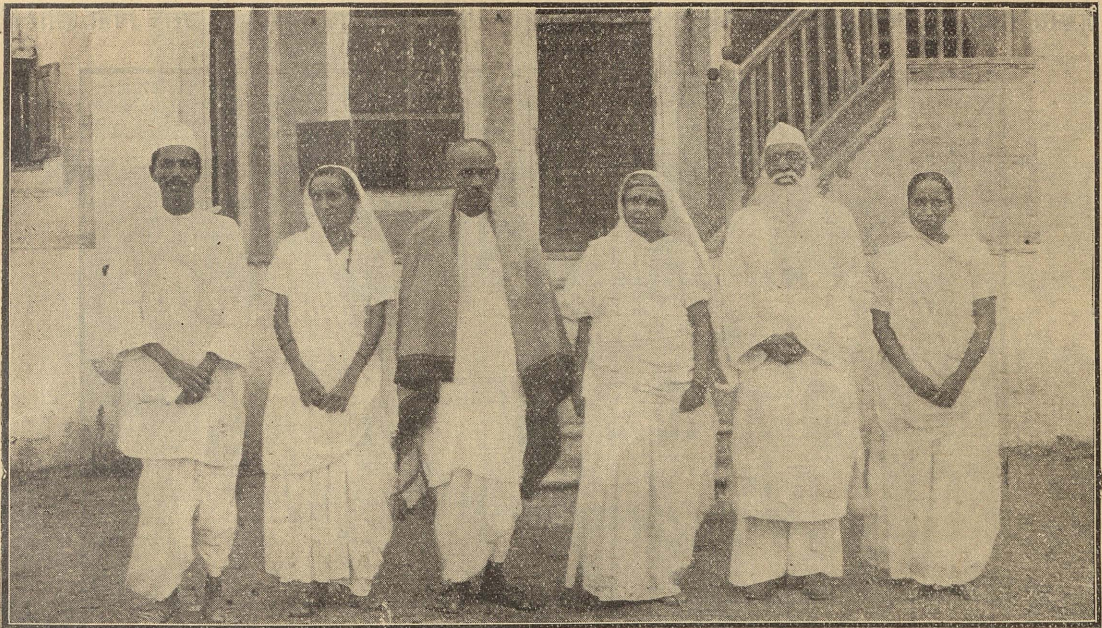
६ प्रतिनिधियों का डेपुटेशन, जो गवर्नर से समझौते के लिए मिला था। बीच में श्री० वल्लभभाई पटेल खड़े हैं।

इसका सम्बन्ध ख़ास किसानों से है, जो राजनीति से प्रायः विरक्त ही रहते हैं। ज़मीनों की मालगुज़ारी पर ही प्रान्तीय सरकार स्थित है। और कोई सरकार इसकी सङ्गठित चेष्टा को अस्वीकार नहीं कर सकती। साथ ही ज्यों-ज्यों किसान राजनीतिक नेताओं को नौकरशाही के विरुद्ध नेतृत्व करने के लिए निमन्त्रित करेंगे, त्यों-त्यों सरकार का अन्त निकट होता जायगा। और यदि ऐसी ही ज़िद कर हम लोग हठधर्मी पर ही क़ायम रहेंगे तो निश्चय है कि उसका अन्त भी इसी के द्वारा होगा। इसका इसका अनुमान एक किसान की बातचीत से लग जायगा।

"तुमने सरकार की अन्तिम विज्ञप्ति तो पढ़ी होगी?"

"जी हाँ, पढ़ी तो है। इसके तो यही माने होते हैं कि अब तक संग्राम जितना विकट हो रहा है, भविष्य में उससे बहुत विकट होगा।"

"आख़िर तुम लोग कब तक टिक सकोगे?"

"जब तक ज़रूरत पड़े, मेरा सारा गाँव पूरा सङ्गठित हो चुका है। गाँव में एक भी भैंस बची हुई नहीं है।

ज़ब्त करने को इस समय गाँव भर में एक फूटी कौड़ी भी नहीं मिलेगी। जब से यह संग्राम शुरू हुआ है, मैंने पीतल के बर्तनों में खाना छोड़ दिया है। अब हम मिट्टी की हाँडियों में पकाते हैं और मिट्टी की तश्तरियों में खाते हैं। उनकी इच्छा हो तो वह भी ज़ब्त कर ले जायँ। हम बाहर चटाइयों पर सोते हैं, खाटों पर नहीं। उन्हें कोई क्या ज़ब्त करेगा? और अब हम और ही उपाय सोच रहे हैं। अब हम घरों में क्यों बन्द रहें। हम तो किसी घर को धर्मशाला बना देना चाहते हैं। कोई ग़ैर खातेदार (जिसके ज़मीन नहीं है) धर्मशाला को चलावेगा। ज़रूरत होगी, तो भण्डारा भी चलेगा।"

श्रीयुत महाशय चन्द्रकान्त जी बारदोली स्वयं गए थे। वे अपना अनुभव इस प्रकार लिखते हैं—"सवेरे नौ बजे की धूप थी। सरभन गाँव के एक स्वयंसेवक के साथ मैं गया। वहाँ एक कुनबी के घर में एक वृद्ध स्त्री नाज साफ़ करती थी। "भाई पत्रिका लाए हो?" स्वयंसेवक को देखकर तुरन्त ही उसने पूछा।

"नहीं" उस स्वयंसेवक ने जवाब दिया, और पत्रिका दोपहर में या साँझ में मिलेगी, यह बतलाया।

कौतूहल होने पर मैंने पूछा—"माँ जी! तुम्हें तो बहुत कष्ट सहना पड़ता है?"

"ओ हँसने वाले भाई! पर उसके बिना हमारे दिन सूने थे? ये हमारी दो भैंसे देखो—वे घर में बँधी हैं। अगर मैं उन्हें बाहर रक्खूँ, तो ज़ब्ती वाले उठाकर क़साई को सौंप दें। घर में भैंसों की सेवा करती हूँ, इसका मुझे कुछ दुख नहीं होता।" इतने में उसका लड़का नहा कर आया। स्वयंसेवक के साथ वह भी तैयार होकर चलने लगा। पर मेरा ध्यान उस वृद्धा की ओर था।

"माँ जी! इस साल ज़मीन बोई जायगी क्या?"—थोड़ी देर में मैंने पूछा।

"बोई जाय या न बोई जाय। हम तो वल्लभभाई जो कहें, उसकी राह देख रहे हैं। पेट पुरता खाने को इस
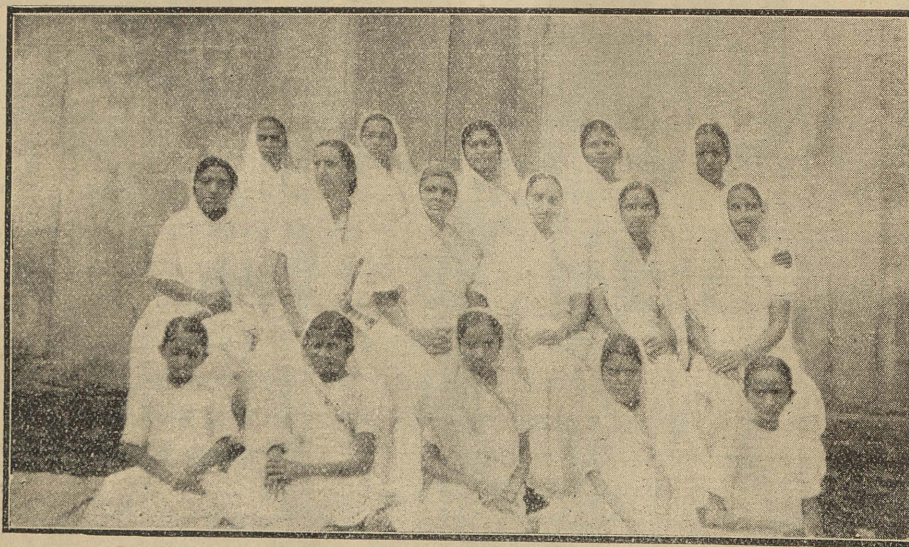
बारदोली-स्वयंसेविकाओं का एक प्रभावशाली जत्था, जिन्होंने प्राण रहते अत्याचार न सहने की शपथ ली थी।

"मगर यदि तुम्हें घर-बार छोड़कर हिजरत करने की ज़रूरत हुई तो?"

"बहुत ख़ुशी से। हमने अपने बच्चों को रिश्तेदारों के यहाँ भेज दिया है। कुछ औरतें भैंसों के साथ चली गई हैं। सच पूछिए तो हम लोग सोने भर को घर में आते हैं।"

उपरोक्त बातचीत से यह तो प्रतीत होता है कि किसान अब स्वयं मर्दाने और वीर बन रहे हैं और अब भारत के किसान भारत के स्वामी बनेंगे, वह दिन भी शीघ्र आने वाला है।

धरती से न मिले, इतनी हद तक ईश्वर नहीं रूठा है। घर की इस ज़मीन के छोड़ने का अवसर तो आने का नहीं !"

"क्यों नहीं आवे ?"—उसका लड़का बीच में बोला। "सरकार ज़मीन ज़ब्त करे तो फिर क्या होगा ?"

"अरे क्या बात है ? ज़मीन ज़ब्त कैसे करेगी ? स्टीमर पर ज़मीन चढ़ाकर उसे विलायत तो नहीं ले जायगी ?" यह सुनकर हम सब हँस पड़े। "ज़ब्त हुई ज़मीन में भी हम खेती करेंगे, सरकार को जो करना हो वह करे।"

गाँव में क्रूर पठान फिरते थे। स्त्रियाँ उनके दुष्ट व्यवहार जानती थीं, तो भी कितनी स्त्रियाँ घर से बाहर निकलने में नहीं हिचकती थीं। पठानों का विकराल स्वरूप उन्हें नहीं डराता था और न वे अपनी हिम्मत ही खोती थीं।

एक कुनबिन के घर हम गए। उस देवी से बात की। उसने कहा—"तीन दिन से मेरी भैंस दो-एक पठान बाँध कर ले गए हैं। मैं तो उस दुष्ट पठान के आगे जाकर कहने वाली हूँ कि, ओ नालायक़ ! मुझे ले जा न ! इन बेचारे

दो सुप्रसिद्ध महिला कार्यकर्त्ता

(१) कुमारी मीठूबेन पेटिट और (२) श्रीमती भेसानिया हिरासत में। आप ज़ब्ती का माल किसी को न ख़रीदने देने का प्रचार कर रही थीं, इसी जुर्म में पुलिस ने आपको गिरफ़्तार कर लिया था।

यह सुनकर मुझे बड़ा आनन्द हुआ। उस वृद्धा से फिर हमने बिदा ली। इस प्रकार जिन-जिन गाँवों में गए, वहाँ के वृद्ध, युवा या बालक, स्त्री या पुरुष किसी के घर में शोक के चिन्ह नहीं दिखाई पड़ते थे। भयङ्कर अत्याचारों से पीड़ित होते हुए भी मैंने देखा कि सबके मन में उत्साह है—जैसे कि उनके घर में महा उत्सव हो रहा हो।

निर्दोषों को किस लिए ले जाता है ? इन्होंने तेरा क्या अपराध किया है ? पर ये पापी सुनते नहीं। मुझे जानवर ले जाने का दुख नहीं है। मुझे जेल में क्यों नहीं ले गए ? इनकी इस शैतानी से वल्लभभाई की सरदारी के नीचे मरना ठीक है।" इसी प्रकार जिस घर में जाओ, यही सुनने को मिलता था। सरकार की प्रतिष्ठा तो नष्ट हो गई थी। वहाँ से हम फिर एक भाई के घर में गए।

उसकी युवा पत्नी ने अपने ऊपर अत्याचारों का वर्णन करने के उपरान्त कहा—"भाई! हमारे गाँव से सरकार को फूटी कौड़ी नहीं मिलने की।"

श्रीमती शारदा मेहता, बी० ए०

आप सर्व-प्रथम गुजराती ग्रेजुएट महिला हैं, जिन्होंने अपना जीवन ही देश-सेवा में लगाने का पुण्य सङ्कल्प किया है। बारदोली सत्याग्रह-आन्दोलन में स्त्रियों ने जो भाग लिया, वह आपही के नेतृत्व और शिक्षा का फल था। महात्मा गाँधी ने एक बार कहा था कि "मुझे अरमान है कि एक बार मैं शारदा मेहता जैसी वीर माता के गर्भ से पैदा होऊँ।"

उसने फिर कहा—"यह सत्याग्रह क्या ऐसा-वैसा है। वर्षों तक सरकार इसी प्रकार ज़ुल्म करती जाय तो उसका परिणाम उसी के लिए ख़राब होगा।" फिर उसने उत्साह-पूर्वक कहा—"सौ दिन सास का तो एक दिन बहू का, इसी से हम लोगों के छकाने की बारी आई है।"

"आज तो इस गाँव में छोटे कमिश्नर की मोटर आई थी?"—मेरे साथी ने उससे पूछा।

"क्या करने के लिए?"

"और ज़ब्ती के लिए शिकार खोजते होंगे।"

"कौन सा मुँह लेकर अब ज़ब्ती करने आया होगा? और क्या ज़ब्ती करेगा? हमें ले जाय तो ज़ब्ती हो सकती है।" इस प्रकार गाँव की स्त्रियाँ सत्याग्रह के लिए तैयार दिखाई दीं। उनकी हिम्मत और श्रद्धा के आगे मुझे मस्तक झुकाना पड़ा।

एक दूसरे घर में गए, वहाँ घर के आँगन में युवती लड़कियाँ खेल रही थीं। कूद-कूद कर नाच रही थीं। उन बालिकाओं की ओर मैंने देखा, तो मेरे कान में यह आवाज़ आई :—

अमे लीधी प्रतिज्ञा पालशुँ रे,
बारदोली नी राखवा लाज।

इन बालिकाओं में अभी से यह सरल प्रेरणा देखकर आनन्दित हृदय हो, वहाँ से रवाना हुआ। इन बालिकाओं का यह गीत अभी भी कानों में सुनाई पड़ता है—

"बारदोली नी राखवा लाज।"

बारदोली-सत्याग्रह-छावनी के विभागपति श्री० डॉक्टर चम्पकलाल जी घीआ कहते हैं—"बारदोली की देवियों को भैंसें बड़ी प्यारी हैं। सरकार ने चालबाज़ी कर स्त्रियों के दिल दुखाने का प्रयत्न किया था। भैंसें ज़ब्त करना शुरू किया—उन्हें हर प्रकार से सताना शुरू किया। मूक प्राणी किसके आगे अपनी फ़र्याद करे? बैठ जाय या पैर मारे तो पीछे से पठान का डण्डा पड़े। घास, पानी और दाने के लिए कोई व्यवस्था नहीं। एक भैंस बेचारी सरकारी थाने में ही यमराज के घर में चली गई और सरकार के कपाल में काला टीका पोत गई। दूसरी भैंस का हाल बड़ा करुणाजनक था। उसे ज़ब्त कर ख़ूब मारा। इसलिए वह थाने पर पहुँचते ही ज़मीन पर गिर पड़ी, उससे खड़ा होना मुश्किल हो गया। देह सख़्त मार की चोट से सूज गई, मुँह और पैर में घाव हो गए। सात दिन तक यही अवस्था रही। नौकरशाही के अमलदार और बम्बई-सरकार के आदर्श

पठान भैंस के इस बर्ताव से परेशान हो गए। थाने में मरे तो सरकार के सर पर बदनामी आवे, और गाँव में वापस ले जाने वाला उन्हें कोई नहीं मिलता था। ख़ुद वापस ले जाने में शर्म मालूम देती थी कि सरकार को बारदोली तहसील भर में भैंस ले जाने के लिए एक भी नौकर नहीं मिलता, और सरदार वल्लभभाई के पास तहसील के अस्सी हज़ार आदमी अमीर और ग़रीब ताबेदारी में हाज़िर थे। पर भैंस के मरने का डर था। इससे रात के दो बजे भैंस को एक सरकारी गाड़ी में डालकर जिस किसान के यहाँ से उसे ज़ब्त किया था, उसी किसान के घर के आगे चुपचाप छोड़ आए। सवेरे गाँव के लोगों ने भैंस की दयाजनक अवस्था देखी। मुँह में से सफ़ेद फेन निकल रहा था। मरने की घड़ी आ गई थी। मूक प्राणी असहाय अवस्था में बिना हिले-डुले दुख सहन कर रहा था। बेचारे किसान ने इस मृत्यु-शय्या पर पड़ी हुई भैंस के घाव साफ़ किए, उसकी सेवा बर्दाश्त की!

पर दुष्ट, घातकी, नराधम जैसे-राक्षसों की मार से की हुई शिकार, पड़ी हुई भैंस अन्त में यमराज के दरबार में सरकार के दूतों की काली कथा कहने के लिए चली गई। हज़ार के क़रीब भैंसें ज़ब्त कर ली गईं, और ग़रीब किसानों की यह सम्पत्ति मामूली क़ीमत में क़साइयों के हाथ नीलाम कर दी गईं। अपने बच्चों से भी प्यारे जानवर क़साइयों के हाथों में जायँ—यह बारदोली के किसान नहीं सहन कर सकते थे। तिस पर भी उन्होंने आश्चर्यजनक शान्ति धारण की। वे यह मान बैठे कि जैसे अपने जानवरों को दूसरी बीमारियाँ घेर लेती हैं, वैसे नौकरशाही के रोग की बीमारी भी उनको सता रही है।

बारदोली के वीर किसान और उनकी वीराङ्गना देवियों की उपमा किससे दी जाय। अस्सी हज़ार स्त्री-पुरुष एक आदमी के रूप में काम कर रहे हैं। बालोद के सेठ दोराबजी, सेठ वीरचन्द मेनाजी तथा बारदोली क़स्बे के सेठ इस्माइल गवा के अविचल साहस, धैर्य, दृढ़ता और सहनशीलता के लिए उन्हें जितनी बधाई दी जाय, थोड़ी है। नौकरशाही ने तो इन तीन भाइयों से दुश्मनी का बदला लेने का निश्चय किया था। सेठ दोराबजी के यहाँ तीन-तीन बार ज़ब्ती की। तेईस सौ रुपए की ज़ब्त की हुई शराब को केवल ११॥) रु० में बेच दी। इतने पर भी लगान की

कुमारी मीठूबेन पेटिट

आप बम्बई के धन-कुबेर मि० पेटिट की कन्या-रत्न हैं। जिन्होंने आजीवन किसानों की सेवा करने का संकल्प किया है। बाढ़ के समय आपने पीड़ितों की जो सेवा की थी, वह स्वर्णाक्षरों में अंकित है। बारदोली-सत्याग्रह-आन्दोलन की आप एक प्रभावशालिनी कार्यकर्त्री थीं। आजकल आप मद्य-निषेध सभा की ओर से बड़े ज़ोरों से कार्य कर रही हैं। प्रान्तीय सरकार पर आपके कार्य का बड़ा आतङ्क है।

रक़म पूरी नहीं हुई, तो बाक़ी के लगान के लिए उनकी क़रीब ३० हज़ार रुपए की ज़मीन ख़ालसा कर दी। दूकानें बन्द कर दी गईं। तब आबकारी-विभाग की ओर से यह

श्रीमती भक्त लक्ष्मी देसाई

आप दरबार गोपालदास जी की त्यागशीला पत्नी हैं, जिन्होंने १९२१ में गद्दी त्याग दिया था। पति-पत्नी दोनों ही ने किसानों की सेवा का व्रत धारण किया है और बारदोली-सत्याग्रह-आन्दोलन में इस आदर्श दम्पति ने विशेष भाग लिया था।

धमकी दी गई कि जो दूकान नहीं खोलोगे तो तुम्हारे साथ क़ानूनी कार्यवाही की जायगी। सरकार ने इस प्रकार बारदोली के हर एक किसान की परीक्षा लेकर उसे रास्ते का भिखारी बना दिया था, तिस पर भी किसान नौकरशाही के पैरों पर नहीं गिरते थे, वरन् अपनी माँग पर क़ायम थे।

वीरों की क़ुर्बानी के कुछ जाग्रत नमूने देखिए :—

सेठ वीरचन्द भेनाजी को तहसील से ख़ालसा का नोटिस पहले-पहल मिलने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। दब्बू बनिया जानकर सरकार ने अपना पहला दाँव उन्हीं पर आज़माया। पर सदा के डरपोक और मालदार इस बनिए ने तो एक वीर क्षत्रिय की सी हिम्मत दिखलाई। उसके यहाँ तो दो बार ज़ब्ती हुई। ज़मीन ख़ालसा की। फिर उसके घोड़े की दो जोड़ियाँ ज़ब्त करके ले गए।

सेठ इस्माइल गवा एक ईमानदार मुसलमान हैं। सात सौ रुपए की लगान के लिए इन पर ख़ूब दाब-दूब की गई। सरकारी अमलदार, सरकार के जी-हुज़ूरियों ने इन्हें बहुत समझाया, फुसलाया, धमकाया, पर यह मुसलमान अपने वचन की प्रतिज्ञा कैसे तोड़ सकते थे? इनकी बन्दूक़ छीन ली गई। लायसेन्स भी ले लिया गया। इनकी पचास हज़ार रुपए की ज़मीन ख़ालसा कर ली गई।

मि० गार्ड ने इन्हें ख़बर दी कि सरकार ने ज़मीन पर क़ब्ज़ा कर लिया है। इस ज़मीन पर उस समय ५ हज़ार रुपए का अनाज, २० हज़ार रुपए की घास और क़रीब २५ हज़ार रुपए के बैल थे। यह ख़बर सुनने पर भी इस भाई का चेहरा वैसा ही हँसता रहा। हमेशा आनन्द में रहता। इसकी हिम्मत और सहनशीलता तो भारतवर्ष के उन ज़मींदारों के लिए सबक़ है, जो किसानों को चूसते हैं—और सरकार के जी-हुज़ूर बनते हैं।

बारदोली के किसान जेल से नहीं डरते थे। जेलों में वे सैकड़ों की संख्या में भर गए और बाक़ी जाने के लिए कमर कसे हुए थे। सरकार उनकी खेती में उन्हें अटकावेगी, तो वे सब के सब जेल भर देंगे। उनके लिए तो घर की सब सम्पत्ति दे देना और जेल जाना मामूली बात हो गई थी। घर पर ताला बन्द कर तीन-तीन दिन तक दिन-रात जानवर और आदमी एक साथ मकान में बन्द हैं; और यह हालत हुए आज ५ महीने हो गए—यह जेल नहीं तो क्या है? जेल में ख़ूराक

मिलती है, रहने को घर मिलता है और हवा मिलती है। मिहनत तो किसानों को सवेरे से शाम तक कहाँ नहीं करनी पड़ती ? सरकार के आगे वीर किसान हाथ उठा-उठा कर कहते थे कि हम पर तोप चला दो। हम अस्सी हज़ार किसान तमाम भारतवर्ष के किसानों को चूसने वाले लगान के लिए मर जायँगे तो सोच नहीं। अमीर-ग़रीब सब मरने को तैयार हैं। किसानों की स्त्रियाँ खुल्लमखुल्ला कहती थीं—"इन्हें क़ैद करोगे तो स्त्रियाँ खेती कर जेल जायँगी। हम तोपों से भी नहीं डरती हैं। सरकार पुरुषों से पहले हमारा बलिदान ले।"

रायम गाँवों के किसान गोसाईं भाई के पञ्चायत में हाज़िर न रहने का मुक़द्दमा अदालत में चलता था। यह क़ायदा है कि पञ्चायत में बुलाने के लिए लिखित परवाना आना चाहिए। सर फ़ौजदार ने वैसा नहीं किया। जब अदालत में फ़ौजदार ने कहा कि "लिखित परवाना" दिया गया है, तब गोसाईं भाई का सच्चा हृदय झूठी बात सहन न कर सका, और वे बोल उठे—"अरे फ़ौजदार, तू ईश्वर को साक्षी कर तो बोल?" किसान झूठी साखी कैसे दे सकते हैं? और वह डर तो सारी दुनिया का न्याय करने वाले भगवान् का था। फ़ौजदार, मैजिस्ट्रेट या नौकरशाही के अमलदारों का न्याय किस खेत की मूली था। बेचारा फ़ौजदार बहस में गड़बड़ा गया।

सरमन में एक मुहल्ले पर अठारह घण्टे तक ज़ब्ती करने के लिए घेरा डाला गया था। घेरा डालकर जानवर तथा आदमियों को शौच-क्रिया तक से रोका गया। पानी की कठिनाई कर दी गई। ख़ूराक मिलना तो मुश्किल था। सब दरवाज़ों के बन्द होने से बाल-बच्चे तथा जानवर तड़फड़ाते रहे। सात दिन बीत गए, पर घर न खुले। वीर किसान ज़रा भी न झुके। हार कर नौकरशाही ने ज़ब्ती का घेरा उठा लिया और किसानों की विजय हुई। ज़ब्ती की क्रूरता और अमानुषिक नीति इस सभ्य सरकार के राज्य में चलती है। यह क्या इस सरकार को लज्जित करने वाली नहीं हैं? ये नृशंस अत्याचार बारदोली तहसील भर में हुए हैं। यहाँ इन्हें दुहराने से सैकड़ों पन्ने भर जायँगे। एक बड़े खातेदार से लगान देने की बड़ी पैरवी की गई। पहले तो उसे धमकी मिली। पीछे झूठे मामले में उसे फँसाने का प्रयत्न किया गया। तिस पर भी वह भाई विचलित नहीं हुआ। तब एक ऐसे पेन्शनर की पेन्शन में से, जो उक्त खातेदार का मित्र था, लगान वसूल किया गया। उस पेन्शनर से अमलदार ने कहा कि तुम्हारे खातेदार मित्र ने, तुम्हारी पेन्शन में से लगान वसूल करने के लिए हमें इजाज़त दी है। पर इस पेन्शनर से इसके खातेदार मित्र ने कुछ नहीं कहा था।

कुमारी मनीबेन पटेल

आप भी बारदोली-सत्याग्रह-आन्दोलन की प्राण थीं। आपने भी बड़े त्याग और निष्काम सेवा कर भारतीय महिलाओं के समक्ष एक अपूर्व आदर्श उपस्थित किया है।

वहाँ पर उसने पेन्शन से रुपए काटने से साफ़ इन्कार कर दिया। घर पहुँचने पर पोल खुल गई। सरकार के ज़िम्मेदार अफ़सर कितना झूठ बोलते हैं, इसका प्रमाण ग़रीब किसानों को पूरा-पूरा मिल गया।

एक किसान के पुत्र ने अपने पिता को इस आशय का पत्र लिखा कि मेरे लिए गौरव छोड़ जाना, मिल्कियत

नहीं। मिल्कियत-जायदाद तो मैं प्राप्त कर सकूँगा, पर पीढ़ियों तक के लिए खोई हुई इज़्ज़त फिर मिलना सम्भव नहीं। पिता भी सरकारी था—पर वह एक सरकारी अमलदार था, जो पहले लोगों को बहुत सताता था। उसने अब यह ज़ाहिर कर दिया कि मेरे पुत्र को मेरे पीछे विरासत में मिल्कियत नहीं—इज़्ज़त चाहिए; और मेरी उम्र तो बड़ी है—तो मुझे ज़मीन को क्या करना है। फिर जिस राज्य में न्याय न होता हो और किसानों को समूल नाश करने की नीति व्यवहार में आती हो, उस राज्य में मुझे ज़मीन रखकर खेती करने से क्या लाभ है। भले ही ज़मीन सरकार ज़ब्त करे या बेच डाले। कुल ७८ पटेल तथा २१ तलाती-पुलिस और चौकीदारों ने इस्तीफ़े दे दिए थे। प्रजापक्ष की यह कितनी बड़ी विजय थी। सरकारी पुलिस बारदोली में नहीं थी। जो थोड़े आदमी थे, उनपर कलक्टर साहब का विश्वास नहीं था। यह बहादुर पुलिस के नौकर भी इसी तहसील की सन्तानें हैं, किसान हैं, और इनकी देश की ओर लगन सूली पर चढ़ने वाले देशभक्त के सामने जितनी ज्वलन्त है उतनी ही प्रशंसनीय भी है। गाँव के किसान तो यह कहते थे कि इन पटेल और तलातियों के इस्तीफ़े का मूल्य हमारे लिए काउन्सिल के सभासदों के इस्तीफ़ों की अपेक्षा अधिक गौरव-जनक है।

बम्बई के उत्कट विद्वान् मुन्शी कन्हैयालाल एडवोकेट की विदुषी धर्मपत्नी श्रीमती लीलावती देवी ने स्वयं बारदोली जाकर जो कुछ उद्गार प्रकट किए हैं, उन्हें सुनिए:—

"बारदोली के सम्बन्ध में अनेक प्रकार के अत्याचारों के समाचार आने पर मैं तारीख़ १४ को सशङ्क हृदय से अपने पति के साथ रवाना हुई। तारीख़ १५ को सवेरे मैं और मेरे पति तथा रायबहादुर भीमभाई नायक बारदोली-स्टेशन से उतरे और सरदार वल्लभभाई के साथ आश्रम में गए। सारे आश्रम में उत्साह व तत्परता और स्वातन्त्र्य का वातावरण व्याप्त था। शोक, दुख, चिन्ता, दुर्बलता कहीं नहीं दीखती थी। वहाँ की परिस्थिति के सम्बन्ध में हमने वल्लभभाई से पूछा। आश्रम के प्रकाशन विभाग से बारदोली की घटनाएँ थोड़े समय
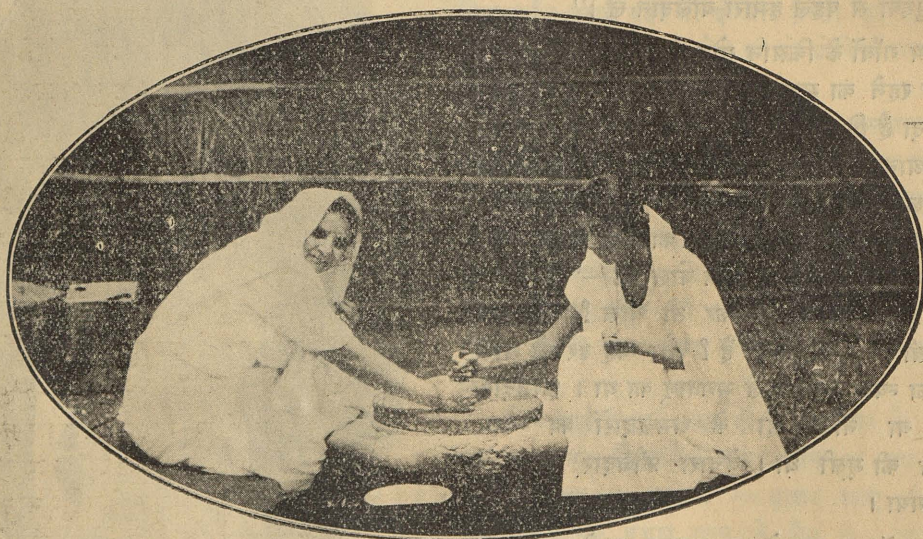
अपनी पुत्री-सहित श्रीमती भेसानियाँ

आप बम्बई के एक प्रतिष्ठित पारसी-परिवार की महिला-रत्न हैं, जिन्होंने शेष जीवन किसानों के सुधार के लिए अर्पण कर दिया है। आपने बारदोली-सत्याग्रह-आन्दोलन में आदर्श भाग लिया है। आप ही इस चित्र में चक्की पीसने का अभ्यास कर रही हैं।

में ही मेरे पति को बतला दी गईं। बारदोली का प्रकाशन विभाग ग़ज़ब का काम कर रहा था।

पर अब सबसे बड़ा अनुभव तो अभी होने वाला था—वह हमें तब हुआ जब हम मोटर पर चढ़कर ग्राम देखने गए। वर्षा आगई थी, इसलिए सड़कों पर मिट्टी जम गई थी। सबसे पहले हमारी पार्टी सरमन गई। वहाँ से लौटती बार हम बावला गाँव गए।

जैसे हातिमताई के क़िस्से में किसी निर्जन नगर की कहानी पढ़ते हैं, उसी प्रकार सारा गाँव दिखाई दिया। खुल गए। हम घर के अन्दर गए और वहाँ जो दृश्य देखा वह जीवन भर नहीं भूलेगा। उसमें केवल दरवाज़े से प्रकाश और हवा आ सकती थी, खिड़की कोई नहीं थी। इस घर में तीन-चार स्त्रियाँ लड़कों को लेकर खड़ी थीं। एक ओर के हिस्से में भैंसें और उनके बच्चे वग़ैरा जानवर बँधे थे। दरवाज़ा खोलने पर भी उस घर में अँधेरा दिखाई देता था। पर जब इस घर के दरवाज़े बन्द हो जाते होंगे तब इन सबकी क्या हालत होती होगी? कलकत्ते की काल-कोठरी की अपेक्षा यह अधिक अँधेरा

किसान-स्त्रियों के मध्य में श्रीमती पेटिट

जो बम्बई के धन-कुबेर मि० पेटिट की आदर्श-धर्म-पत्नी हैं।

हरेक घर के दरवाज़े और खिड़कियाँ बन्द थीं। इन घरों के अन्दर कोई जीवित आत्मा रहती होगी, यह बात पहले-पहल किसी अनजान आदमी को देखने पर तो नहीं मालूम हो सकती थी। वह तो यही जानेगा कि यहाँ कोई आदमी की जाति रहती ही नहीं है। एक ओर चबूतरे पर उसी गाँव का एक स्वयंसेवक पहरा दे रहा था। हमारी मोटर देख कर उसने तुरन्त आवाज़ दी कि खिड़कियाँ खोलो, आश्रम की मोटर है।

आश्रम की ओर धीरे-धीरे एक के बाद एक दरवाज़े कारागृह था। ऐसे एक घर नहीं, किसानों के सब के सब घरों में स्त्रियाँ और बालक गन्दगी में बन्द होकर रहते; साथ ही इस कारावास से सड़ गए और सफ़ेद हो गए। जानवर भी एक साथ रात-दिन पाँच-पाँच महीने से रह रहे थे। उनके प्यारे जानवर बाहर अहाते में रहने से ज़ब्त न हो जायँ, इसी कारण से वे उन्हें इस स्थिति में रखते थे, जिस दुर्गन्ध और गन्दगी में कभी कोई एक क्षण बैठने को तैयार नहीं हो सकता। ज़ब्ती अमलदारों की निर्दयता के समय तो कितनी बार वे एक-एक सप्ताह तक शौचादि

के लिए बाहर नहीं जा सकते थे। उसी अँधेरी तङ्ग जगह में गड्ढा खोदकर मल-मूत्र करते थे। यह दृश्य देखकर मेरी छाती फट गई। नेत्रों से आँसू बहने लगे। पर इतने दुख सहन करने वाली उन बहिनों के मुख पर कायरता और दुख लेशमात्र भी नहीं था। यह दृश्य देखते-भालते एक घर की वृद्ध माँ जी से मैंने सहज ही में कहा—"माँ जी, इतना दुख सहन करती हो, इससे सरकार का पैसा दे दो, तो कैसा हो?" जवाब में वृद्धा माँ ने हँस दिया। अभी तक इतना सहन किया और अब पैसा दे दें? न्याय होगा तब पैसा देंगे, अन्याय की एक दमड़ी नहीं मिलेगी। फिर धृष्टता कर मैंने एक दूसरे भाई से कहा—सरकार वल्लभभाई को पकड़ लेगी तो क्या करोगे?

"एक वल्लभभाई जायँगे तो दूसरे ऐसे अनेक वल्लभभाई वली होंगे।" यह जवाब मिला। इतनी दृढ़ता के आगे निर्बलता का एक शब्द भी बोलना पाप था। इस बीच में गाँव के लगभग सभी आदमी इकट्ठा हो गए थे। उनके आगे थोड़ी सी बातें कीं। उनके दुख-सुख जानने का थोड़ा प्रयत्न किया, उनकी दृढ़ता और साहस की प्रशंसा करके हमारा दल आगे चला।

सरमन-आश्रम में गए। वहाँ डॉक्टर सुमन्त और श्रीमती शारदा बहिन से भेंट हुई। थोड़ी देर वहाँ बैठने के बाद भुसावल गाँव भी जाकर देख आए। वहाँ पहले से लोगों को ख़बर होने से श्रीमान् लल्लूभाई के यहाँ सब इकट्ठे हुए थे। श्रीमान् लल्लूभाई पर किसी नाज़िर ने सूरत की अदालत में मुक़दमा चलाया था। उनका यह अपराध था कि उन्होंने लोगों को लगान नहीं भरने दिया। इसके बाद हम लोग कहाँ-कहाँ गए और क्या-क्या देखा, उस सम्बन्ध में मैं यहाँ पर कुछ लिखूँगी।

सच पूछो तो "इस समय बारदोली में सरकार का डर और राज्य के लिए इज़्ज़त इन दोनों चीज़ों में से एक भी नहीं रही।" सरदार वल्लभभाई का बारदोली में जितना हुक्म माना जाता है, उतना ही सरकारी हुक्म वहाँ हास्यास्पद अवस्था में पहुँच गया है। पटेलों और पटवारियों ने इस्तीफ़े दे दिए हैं, और लोगों ने मकान के नम्बर निकाल कर फेंक दिए हैं। इतना हो गया है कि अब लोगों की ज़मीन का पहचानने वाला सरकार के लिए कोई नहीं रहा।

सरकारी अफ़सर योग्यायोग्य का सारा विचार बिलकुल भूल गए हैं। चालीस हज़ार रुपए की ज़मीन चालीस रुपए में बेची जाय; इतने पर भी लगान पूरा न हो, तो रोटी करने के बासन और घर के गाड़ी-घोड़े तक एक सौ रुपए के लगान के लिए ज़ब्त कर, बेच डाले गए। श्रीमती मीठू बहिन, मुरारी बहिन, श्रीमती माई लक्ष्मी देवी आदि वीर बहिनों ने ज़ब्त ज़मीनों को अपने अधिकार में कर रक्खा है। जब तक ये बहिनें जेलों के बाहर हैं, तब तक इन ज़मीनों पर किसी का क़ब्ज़ा नहीं हो सकता। पर उन्हें एकाएक पकड़ना, केवल एक बन्दर-घुड़की है।

सरकारी अफ़सरों के दिमाग़ी हुक्मों में से एक हुक्म भी वहाँ अमल में नहीं आता। कलक्टर के कमरे के बाहर पहरा देने वाले तीन युवकों को एक के बाद एक को पकड़ा तो और अनेक पकड़े जाने के लिए इतने और आ गए कि कलक्टर को ही वहाँ से दूसरी जगह चल देना पड़ा। मकान खुदवाया, गाड़ी ज़ब्त की, पर उसे जोतने के लिए न तो बैल मिले और न खींचने के लिए मज़दूर। ज़ब्तियाँ और ख़ालसा के नोटिस बिना पहचाने चाहे जहाँ लगा दी जाती है, लोग उन पीले पन्नों को न देखते हैं, न पढ़ते हैं। लोग तो यह मानते हैं कि ज़मीन हमारी है, सरकार कौन होती है?

छोटे से लेकर बड़े से बड़े सरकारी नौकर या अफ़सर को बारदोली में एक पाई की चीज़ नहीं मिलती। चाय पीने के लिए एक पाव भी दूध नहीं मिलता था। बेचारे नौकरों को रस्सी के बिना पानी भी नहीं मिलता। यह मुसीबत सरकारी नौकरों की थी। उनका किसी क़िस्म का काम करने के लिए कोई आदमी नहीं मिलता। एक अफ़सर की मोटर यदि कीचड़ में फँस जाय तो घण्टों तक लोगों को धमकी और लालच देने के उपरान्त भी वहाँ पड़ी रहती थी। पर कोई उसमें हाथ नहीं लगाता था। जब सरदार वल्लभभाई आवें और सरकारी अफ़सर उनसे कहें, तब उनकी आज्ञा से लोग मोटर को कीचड़ से निकालते थे। यह स्थिति वहाँ थी। आज की घड़ी तक लोगों की दृढ़ता का कीर्ति-स्तम्भ स्थिर है।

पठानों के ज़ुल्मों की भी हद हो गई थी। उनकी नङ्गे होकर नहाने की बात, शक्कर के धोखे में नमक चुराने की बात और लोगों के घर में ज़बरदस्ती घुस जाने की बात,

भयङ्कर अत्याचारों की बड़ी लम्बी फ़ेहरिस्त है। अफ़सरों ने भी इन पठानों को ख़ूब उत्तेजना दी। ज़ब्ती सूर्यास्त के उपरान्त नहीं होती, पर इनका क़ानून सूर्यास्त के बाद भी चलता। ताला न तोड़ने का नियम होने पर भी ये दुष्ट पठान दरवाज़ा खोलकर घरों में घुस गए। इन दुष्टों ने देवियों के हाथ पकड़-पकड़ कर घसीटा। इतने पर भी ज़ब्ती अफ़सर न शर्माया। रात में एक आदमी ने दरवाज़ा खटखटाया—"फ़लाने भाई, दरवाज़ा खोलो, तुम्हारे आदमी आए हैं।" इस प्रकार की झूठी बातों से ये दुष्ट पठान बड़ी रात में लोगों को तङ्ग करते।

रानीपरज जाति की एक किसान महिला

इस जाति ने भी बारदोली-सत्याग्रह-आन्दोलन में प्रभावशाली भाग लिया था।

पर किसी घड़ी दर-असल मेहमान आते थे, यह सन्देहजनक बातें थीं। दरवाज़े तो खुल नहीं सकते थे। मेहमान आने पर भी उन्हें चौतरे पर रहने को कहा जाता। बाहर खिड़की से लटकाकर चाय और पानी दे दिया जाता और सवेरे जाने को भीतर से ही कह दिया जाता था। भूल-चूक से खिड़की खुल जाय तो पठान तुरन्त कूद आते थे। अनेक बार तो वे दीवार पर चढ़कर पीछे के रास्ते से घर में घुस आते थे। इस प्रकार लगातार घर बन्द रहने पर घरों में स्वयंसेवक-दल लोगों को भोजन और पानी पहुँचाता। इतना होने पर भी लोगों ने बिना किसी शिकायत के सारी अवस्था सहन की है।

एक समय एक देवी मकान का दरवाज़ा खोल कर आँगन में कुछ काम से आई थी। इतने ही में ज़ब्ती अफ़सर आ धमके। देवी तुरन्त घर में जाने लगी। पर अफ़सर ने उसे दरवाज़े पर पकड़ लिया। उस पर दरवाज़ा बन्द करने का और अपना पैर कुचलने का मुक़दमा चलाया। देवी का पति बेचारा भलामानुष था। वह पहली बार ठीक-ठीक उत्तर न दे सका। दूसरी बार अदालत में जाने पर उसकी स्त्री भी उसके साथ हो ली। गाड़ी में वह उसे हिम्मत देने लगी और बोली—"जवाब देने में क्यों डरते हो? रोनी शकल क्यों बनाए हुए हो? अगर सच-सच कहने पर छः महीने की सज़ा मिले तो कहना कि सरकार १२ महीने की क़ैद दे।"

बारदोली की इस लड़ाई में इस प्रकार बहिनों ने पुरुषों को आगे बढ़ाया। बारदोली की बहिनों का शौर्य अपूर्व था। उनके मुख पर चिन्ता नहीं, दुख नहीं। जितना दुख वे सहन करतीं, वे हँसते-हँसते सहन करती थीं। अपने स्वयं निर्णीत कारागार में महीनों बन्द रहने पर भी विषाद की एक रेखा भी उनके हृदय को कलुषित नहीं करती थी। सरदार वल्लभभाई पर तो अस्सी हज़ार भाई-बहिनों की अपूर्व श्रद्धा थी। वे जहाँ जाते थे वहाँ गाँव की स्त्रियाँ एक के बाद एक आतीं। उनके मस्तक पर कुटुम्ब की विजय का तिलक कर अपनी शक्ति के अनुसार रुपए की भेंट देतीं। जो विश्वास और भक्ति-भाव से भेंट होती है उसे देखकर अश्रद्धालु का भी हृदय पिघल जाता था। इनके गीत दृढ़ता और आत्म-विश्वास पैदा करने वाले सुने। इन अशिक्षित भाई-बहिनों की आत्मा की महत्ता के आगे हमारा हृदय नमता था।

पर सरदार वल्लभभाई पर इनका विश्वास देखने का मौक़ा तो हमें शाम को मिला। नानीफ़रोद नामक गाँव

में उनका व्याख्यान था। वहाँ हमारे साथ वे चल दिए। रास्ते में आने वाले गाँवों में बड़े उमङ्ग, सद्भाव और भक्ति से लोग उनका स्वागत करते थे। स्त्रियाँ उन पर कुङ्कुम, अक्षत और पुष्प चढ़ातीं। उनके आगे भेंट धरतीं। यह सब दृश्य हमें देखने को मिला। बारदोली के ८० हज़ार स्त्री-पुरुष और बालकों का मन केवल वल्लभभाई में था। वे उनके मार्ग-दर्शक नहीं, वरन् तारनहार हैं। उनकी आज्ञा को वे प्राण देकर भी पूर्ण करने को तैयार हैं।

अमे लीधी प्रतिज्ञा पालशुँ रे।
भले काया ना कट का थाय॥

यह घोषणा केवल एक गाँव के लोगों की नहीं थी, समस्त बारदोली इस प्रतिज्ञा से बद्ध है! सरकार इन्हें डराने और कुचलने की मिथ्या बात करती थी।

वहाँ तो स्त्रियाँ यह गाती थीं :—

सरकार, जो ने अभागीयातु जागी।
तोग्रा वार ऊपर वे गया बागी।

कौन कहता है कि यह लोग हार की ज़रा भी आशङ्का रखते थे?

बारदोली तालुक़े में सत्याग्रहियों ने जो सुव्यवस्था रक्खी थी, उसके आगे आजकल के अङ्गरेज़ी शासन की व्यवस्था किसी मूल्य की नहीं। हर-एक छावनी में एक विभागपति था। इस विभागपति के हाथ के नीचे स्थानीय स्वयंसेवक और कार्यकर्त्ता थे। वे अपने अधीन के गाँवों में घूमते थे। उनकी व्यवस्था करते थे, समाचार संग्रह करते थे और सत्याग्रह का प्रचार करते थे, ज़ब्तीदारों की ज़ब्ती होने पर उनकी ख़बर लेते थे और प्रत्येक समाचार विभागपति को देते थे। ये विभागपति अपने सौंपे हुए गाँवों की पूरी-पूरी ख़बर बारदोली के मुख्य आश्रम में भेजते थे। इन ख़बरों से बारदोली का प्रकाशन विभाग प्रकाशित करने योग्य समाचार तुरन्त प्रकाशित कर देता था और शेष समाचार सरदार वल्लभभाई और उनके साथियों के पास जानकारी के लिए पहुँचा देते थे। इन समाचारों में प्राइवेट जानकारी की भी कई बातें होती थीं। इसके सिवा सरकारी ख़बरें जानने के लिए भी ख़ास-ख़ास आदमी काम करते थे। प्रत्येक सरकारी हलचल की जानकारी सरदार वल्लभभाई पटेल को ठीक समय पर होती रहती थी।

इस प्रकार सारी तहसील एक ज़ञ्जीर से बँधी हुई थी। यह ज़ञ्जीर इतनी मज़बूत थी कि सरकार उसे तोड़ने के लिए कमज़ोर साबित हुई। सरकार के हाथ-पैर—पटेल और तलाती, गाँव की पुलिस और चौकीदारों ने इस्तीफ़े देकर सरकार को बारदोली तहसील में पङ्गु कर दिया था। सरकार को लक़वा मार गया था। कुछ विभागपतियों के नाम यहाँ दिए जाते हैं :—

छावनी का नाम	विभागपति का नाम
बारदोली-क़स्बा मोता ...	डॉक्टर चम्पकलाल घीआ
सरमन ...	... डॉक्टर सुमन्त मेहता
बालोद ...	... डॉक्टर चन्दूलाल देसाई
वराड ...	... श्री० मोहनलाल पण्ड्या
मढ़ी ...	... श्री० अब्बास तय्यबजी
बामनी ...	... दरबार साहब देसाई

इसी प्रकार दूसरी छावनियों में भी विभागपति नियुक्त थे। सरकारी शासन को बन्द कर देने की सम्पूर्ण व्यवस्था इन छावनियों ने कर डाली थी। अब तो बारदोली में सरकारी हुकूमत रही ही नहीं थी। सरदार वल्लभभाई का राज चल रहा था।

आश्रम में

बारदोली-सत्याग्रह-आश्रम में प्रत्येक कार्यकर्त्ता एक निष्ठा से अपना काम करता था। प्रत्येक काम की ओर अपनी ज़िम्मेदारी समझता था। स्वामी आनन्द श्री० वल्लभभाई के मन्त्री की तरह काम करते थे। श्री० कल्याण जी भाई आगत सज्जनों की व्यवस्था कर, उनकी सवारी आदि का प्रबन्ध करते थे—भिन्न-भिन्न बारह आश्रमों की आवश्यकताएँ पूर्ण करने में लगे रहते थे। वे सरकारी हरकतों का जवाब देते थे। उनसे लोगों को सावधान रखते थे। संक्षेप में समस्त कार्य बड़े परिश्रम से कर रहे थे, वे फ़ोटो भी उतारते थे। उनके फ़ोटो लेने से नौकरशाही के अमलदार भी दङ्ग हो गए थे। चीनी के धोखे में बारदोली-स्टेशन पर नमक चुराने वाले पठान का मुफ़ालाल के साथ रेलवे पुलिस के पहरे में फ़ोटो खींच लेने पर कलक्टर साहब को भी सफ़ाई देनी पड़ी थी। आश्रम के मन्त्री श्रीयुक्त ख़ुशालभाई भोजन-व्यवस्था के अतिरिक्त बड़े से बड़ा काम करने में अपना जीवन धन्य समझते थे। श्री० ख़ुशालभाई आज कई वर्षों से बारदोली को तैयार करने के लिए आश्रम में कुटुम्ब-सहित निवास कर रहे थे,

श्रीयुक्त जुगत रामदेव शान्त-रूप से प्रकाशन विभाग के मन्त्री-पद का कार्य कर रहे थे। इनकी क़लम के प्रभाव से सरकारी नौकर चक्कर में पड़ जाते थे। किसान अमलदारों के धोखे में नहीं आते थे। इसके सिवा अनेक नवयुवक अपनी सहनशीलता, कर्त्तव्यपरायणता और कार्यदक्षता को प्रकट करने के लिए बारदोली-सत्याग्रह में लगे हुए थे।

सौभाग्यवती भक्ति लक्ष्मी देवी

जीवन तक याद न भूलने वाली ऐसी छाप हमारे हृदय पर गुजरात के रत्न श्रीमान् गोपालदास देसाई डासा की पत्नी सौभाग्यवती भक्त लक्ष्मी देवी की पड़ी। इस देवी ने राज-दरबार के सुख भोगे हैं। जिन्होंने धूप और सर्दी न देखी हो, जिनकी आज्ञा मानने के लिए अनेक सेवक हाथ जोड़े खड़े हों, वे राजघराने की पत्नी श्रीमती भक्ति लक्ष्मी बहिन आज बारदोली-आश्रम में सवेरे से सन्ध्या तक सतत् परिश्रम करती हैं। मेहमानों की वे मेहमानदारी करती थीं। इन्हीं के समान श्रीमती मीठू बहिन पेटिट एक पारसी-देवी हैं। ख़ानदान और धनाढ्य कुटुम्ब की प्यारी पुत्री हैं। यह बहिन भी दिन-रात काम में लगी रहतीं। वे युवकों को रण में जूझने के लिए अग्रसर करती थीं। शराब की दूकान पर पहरा देते समय गिरफ़्तार भी हो चुकी थीं।

बारडोली के विजयोत्सव पर महात्मा गाँधी जी ने जो भाषण दिया था, उसका सारांश नीचे दिया जा रहा है :—

"किसी सत्याग्रही के लिए इससे अधिक सच्ची बात कोई नहीं हो सकती कि बारदोली-सत्याग्रह के लिए और किसी का नहीं, केवल परमात्मा का ही यश गाना चाहिए, एक उसी को धन्यवाद देना चाहिए। मगर मैं जानता हूँ कि इससे हमें सन्तोष नहीं मिलने वाला है, क्योंकि हमें यह विश्वास नहीं हुआ है कि हम कुछ नहीं हैं, हम तो केवल उसके हाथ के साधन भर हैं और वह जैसे चाहता है, हमसे काम लेता है। हमने अब तक परमात्मा के हाथों आत्म-समर्पण करने का महत्व नहीं समझा है। आदमी अभी कुछ अंश तक मनुष्य और पशु दोनों है, बल्कि अभी तो उसमें मनुष्यता की बनिस्बत
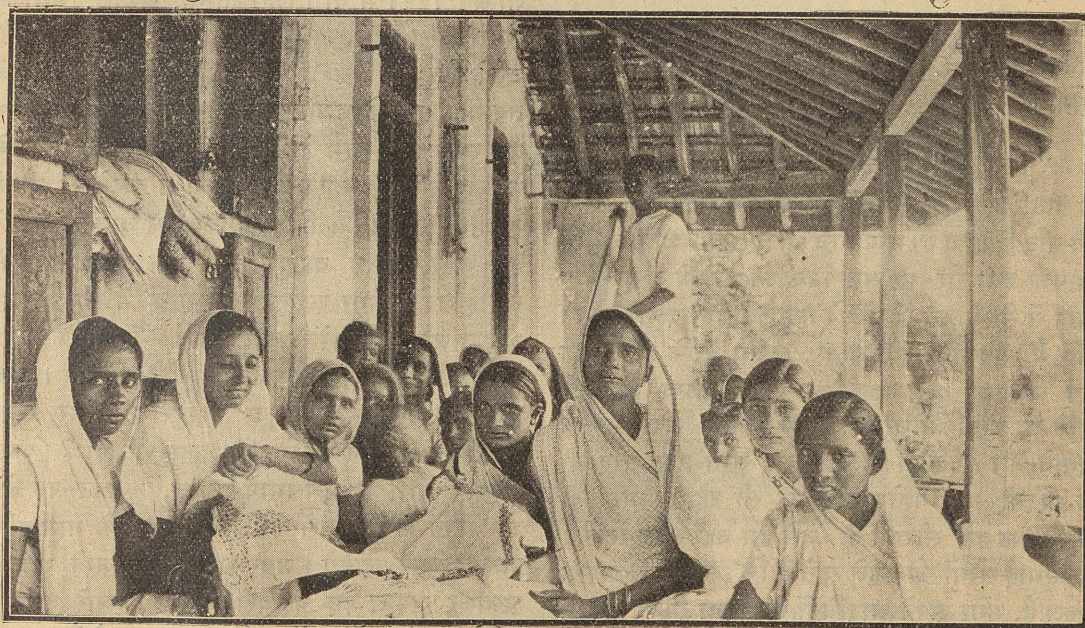
बारदोली-सत्याग्रह-आन्दोलन में भाग लेने वाली कुछ प्रतिष्ठित महिलाएँ, जिनका एकमात्र कार्य खादी बनाना और घर-घर उसका प्रचार करना था— यही थी इनकी दिनचर्या।

पशुता ही अधिक है, और इसलिए केवल परमात्मा का ही यश गाने से उसका अहङ्कार सन्तुष्ट नहीं होता। सच पूछो तो ऐसे अवसरों पर परमात्मा को याद करके हम मानते हैं कि मानों हम उन्हीं पर कृपा कर रहे हों। इसलिए अपने पशु-स्वभाव के अनुसार हम अपने सरदार, उनके सहायकों और बारदोली के स्त्री-पुरुषों को भले ही बधाई दे लेवें; अपने सहकारियों के सहयोग के बिना वल्लभभाई अकेले लड़ाई नहीं जीत सकते थे। मगर उसी तरह से हमें गवर्नर साहब, उनके अफ़सरों और काउन्सिल के सभ्यों को भी सुखद समझौता कराने में मदद करने के लिए धन्यवाद देना चाहिए। अगर हम अपने विरोधियों के यथायोग्य धन्यवाद देने के अपने कर्त्तव्य के पालन में पीछे पड़ें, तो हममें नम्रता की कमी होगी।

"गीली ज़मीन में इतनी तकलीफ़ से बैठा हुआ सूरत के नागरिकों का इतना बड़ा समूह मुझे आज सन् १९२१ की याद दिलाता है। मुझे आज भी वे शब्द याद हैं, जो मैंने आपको इसी ठौर पर सन् १९२१ में कहे थे। सम्भवतः आप में से भी कुछ लोगों को तब के मेरे शब्द याद होंगे। और मैं आपको याद दिलाना चाहता हूँ कि हमने सात वर्ष पहले जो काम करने का निश्चय किया था, उन्हें करने में हम किस तरह चूके हैं। अगर केवल उत्सव मनाने और मिठाइयाँ बाँटने के बाद सूरत और बारदोली के आदमी कान में तेल डाल कर सो रहे, तो बारदोली से जो पाठ हमें सीखना है, उसे हम नहीं सीख सकेंगे। वल्लभभाई लोगों को कहते रहते हैं कि सरकार से लड़ना सहज है, मगर अपने आदमियों से लड़ना सहज नहीं है, क्योंकि हम स्वभावतः ही सरकार की राई के समान भूल को पर्वत बना डालते हैं। मगर जैसे ही हमें अपनी त्रुटियाँ नज़र आती हैं, हम उसका सामना करने से भाग चलते हैं। इसलिए मैंने बारदोली वालों को याद दिलाया कि तुमने अपने व्रत का पहला भाग पूरा कर लिया है, अब दूसरा भाग भी—यानी पुराना लगान देना—पूरा करो। मैं जानता हूँ कि यह थोड़े दिनों में हो जायगा। मगर उसके बाद? सत्याग्रह-आन्दोलन में अत्यन्त बड़ी शक्ति और उत्साह का जो संग्रह हुआ है, उसे कैसे काम में लाया जायगा? बारदोली की स्त्रियों में पैदा हुई अपूर्व जाग्रति से क्या लाभ उठाया जायगा? आप कैसे उनकी सेवा करोगे; किस तरह उनके साथ एक बनकर उनके दुख दूर करने में उन्हें सहायता दोगे? सत्याग्रह में अन्धे अधिकार के अत्याचार का सविनय विरोध, उसकी सविनय अवज्ञा शामिल है, मगर विरोध करने की शक्ति में ही आत्म-शुद्धि और रचनात्मक काम छिपे हुए हैं। अगर मैं आपसे पूछने बैठूँ कि सन् १९२१ से आपने अब तक रचनात्मक काम और आत्म-शुद्धि के सम्बन्ध में क्या काम किया है, तो मैं जानता हूँ कि आपको और मुझको, दोनों को रोना पड़ेगा।

"आपको कहना चाहता हूँ कि मैं वही गाँधी हूँ, जो सन् १९२१ में था। जिस शान्ति, समृद्धि, स्वराज्य, रामराज्य या धर्मराज्य के लिए हम कोशिश कर रहे हैं, उसके लिए मेरे पास अब भी वे ही अनिवार्य शर्तें हैं जो तब थीं। सूरत के आरामतलब हिन्दू-मुसलमानों को तब तक स्वराज्य का नाम लेने का क्या हक़ है, जब तक कि वे ख़ुदा के नाम पर एक-दूसरे का गला काटने को दौड़ते हैं और फिर न्याय के लिए अदालतों का दरवाज़ा झाँकते हैं? अगर सचमुच बहादुर हो तो भले ही बराबरी की लड़ाई लड़ो, मगर अदालतों की शरण में रक्षा के लिए दौड़े न जाओ। अङ्गरेज़ों और जर्मनों ने लड़ाई के मैदान में लड़ाई की, मगर वे अदालतों में दौड़े नहीं गए। खुलकर न्यायपूर्वक लड़ने में कुछ बहादुरी है, मगर अदालतों में दौड़ जाने में कुछ भी बहादुरी नहीं है। अगर लड़ना है तो हिन्दू-मुसलमान जमकर, खुलकर लड़ लेवें और अपने झगड़े फ़ैसले कर लेवें, तब उनके नाम इतिहास में लिखे जायँगे। मगर अदालतों में लम्बे मुक़दमे चलाकर लड़ना कुछ बहादुरी नहीं है। हमारे वर्त्तमान तरीक़े बहादुरी के नहीं, बल्कि कायरता के हैं। सच्ची बहादुरी तो धर्म के लिए जान देने में, और जो बातें धार्मिक दृष्टि से परमावश्यक नहीं हैं, उन्हें अपने आप ही छोड़ देने में है। यही बारदोली का पाठ है। और अगर हम विजयोल्लास में अपने आपको भूल जायँ तो बारदोली का यह पाठ भी हम भूल जायँगे। जब तक हम लोग, जो एक ही ज़मीन से पैदा हुए हैं, एक ही मातृभूमि की सन्तान हैं, एक दूसरे को सगा भाई समझना नहीं सीखते, बारदोली के समान विजयों से कुछ नहीं होगा।

"दूसरा काम है हिन्दू-धर्म की शुद्धि करनी। क्या आपने उसका सबसे बड़ा कलङ्क धो लिया है? मैं फिर

भी कहता हूँ कि आत्म-शुद्धि के बिना सच्चा स्वराज्य असम्भव है। मुझे कोई दूसरा नहीं मालूम है। भले ही आप मेरी इसे मर्यादा, मेरी निर्बलता कहें, मगर तब यह सत्याग्रह की मर्यादा, सत्याग्रह की निर्बलता कही जायगी। अगर दूसरा कोई रास्ता है तो मैं उसे नहीं जानता हूँ और आत्म-शुद्धि के सिवाय, दूसरे उपायों से जीती गई कोई वस्तु, और चाहे जो कुछ हो, मगर स्वराज्य नहीं हो सकती।

"हमारे कार्यक्रम की तीसरी और अन्तिम वस्तु है, जो करोड़ों भुक्खड़ों को रोज़ी देता है, भागने के क्या मानी हैं? मेरा दावा है कि ख़ास बात में चर्ख़े की सम्भवता छिपी हुई है। वे इसकी टीका कर सकते थे, इसका मज़ाक़ भी उड़ा सकते थे, इसे हँसी में भी उड़ा दे सकते थे, मगर नहीं, वे शान्त चित्त से इसकी अनन्त सम्भवताओं पर विचार भी कर सकते थे।"

यह बात तो साफ़ ज़ाहिर है कि इस सम्बन्ध में सरकार ने सरासर बेईमानी की। अफ़सर-बन्दोबस्त ने हिसाब लगाने और बातें देखने में काफ़ी भूलें की थीं,
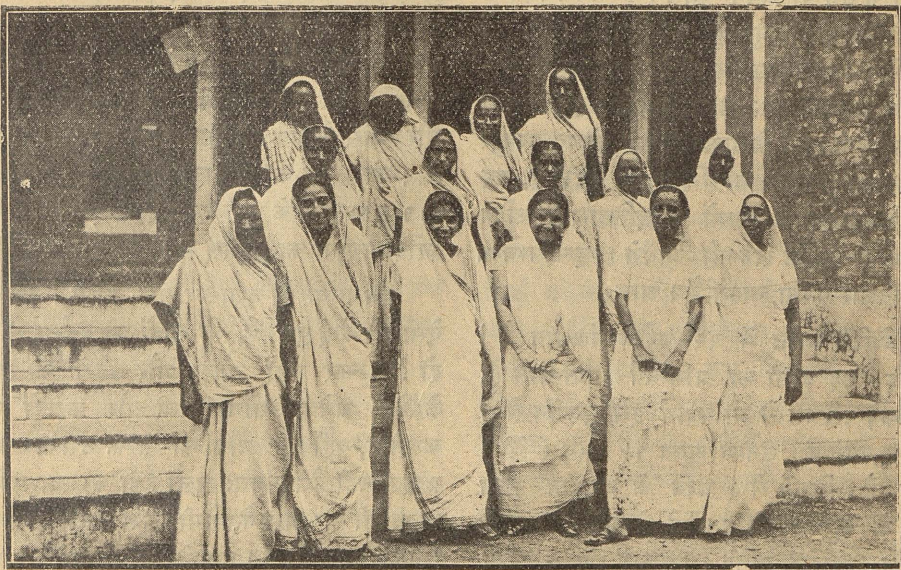
बम्बई पारसी-सोसाइटी की महिलाएँ

जिन्होंने अपना घर-बार त्याग कर बारदोली-सत्याग्रह-आन्दोलन में शरीक होकर उसे सफल बनाया और किसानों की सेवा की। सभी महिलाएँ गुजराती वेष-भूषा में हैं।

इस देश के नर-कङ्कालों के प्रति हमारे कर्त्तव्य का पालन। चाहे सुनते-सुनते कोई भले ही ऊब जाय, मगर मैं फिर भी कहूँगा कि इसकी एकमात्र दवा चर्ख़ा ही है। अभी मुझे चर्ख़े की उपयोगिता का एक विचित्र प्रमाण मिला। सर लल्लूभाई सामलदास ने कृषि-कमीशन की रिपोर्ट को अपनी आलोचना में दिखलाया है कि अपनी रिपोर्ट के सहायक धन्धों वाले अध्याय में कमीशन के सभ्यों ने चर्ख़ा शब्द तक से अछूते रहने की कोशिश की है। मैं पूछता हूँ कि उस एकमात्र धन्धे का नाम लेने से भी,

दूसरे उनकी ग़लत रिपोर्टों के लिए ख़ुद सेटिलमेण्ट-कमिश्नर ने उन्हें आड़े हाथों लिया था। एक तो आपकी पहली रिपोर्ट से यह भी पता नहीं लगता कि बन्दोबस्त के क़ायदों के अनुसार वाक़ई कुछ जाँच की भी गई थी या नहीं। फिर दूसरी रिपोर्ट, जिसमें लगान बढ़ाया गया था, वह भी इन क़ायदों के मुताबिक़ नहीं थी और ग़लत आँकड़ों के आधार पर बनी थी। इसके सिवा बन्दोबस्त भी ग़लत क़ायदे से हुआ था। इन्हीं आरोपों के लिए दुबारा जाँच करने को किसानों का आग्रह था।

प्रथम तो महकमे-माल के कोड के बन्दोबस्त के क़ायदों के बनाने में अभागे किसानों का हाथ ही नहीं था, फिर उनके अनुसार चलने में भी सरकार की सरासर अन्धाधुन्ध नीति रहना निस्सन्देह बेईमानी ही थी।

बारदोली-युद्ध शान्त हो गया अवश्य, पर यह सवाल सिर्फ़ बारदोली का ही नहीं है—यह सवाल तमाम हिन्दुस्तान के किसानों का है। सिर्फ़ किसानों का ही क्यों कहा जाय, यह सवाल भारतवर्ष के सर्वनाश का कारण है। किसानों के इस कर ने—जो भारत-सरकार ने उन पर अपने शासन के प्रथम दिन से ही लगाया है, भारत को चूर-चूर कर दिया है। करोड़ों मनुष्य रात-दिन पसीना बहा कर भी पेट नहीं भर पाते—करोड़ों मनुष्य अकालों में भूखे मर गए हैं। इन तमाम मरे हुओं और मरते हुओं के हलक़ से यह जल्लाद-सरकार कैसी निर्दयता से अपना कर निकालती रही है, यह बात यदि सरकार के कारनामों के इतिहास से खोज निकाली जाय तो रोंगटे खड़े हो जायँगे। इस सम्बन्ध में हम कुछ विचार करना चाहते हैं। अस्तु—

समस्त ब्रिटिश-भारत में २२ करोड़ किसान हैं! जो ३१ करोड़ एकड़ धरती को प्रति वर्ष जोतते-बोते हैं, और अपने कड़े परिश्रम से जो पदार्थ इस ज़मीन से ये किसान उत्पन्न करते हैं, उनका मूल्य १५ अरब (??) रुपया होता है। जिनमें से ५ अरब के अनुमान रक़म सरकार कर के ख़ूनी पञ्जे से छीन लेती है और बाक़ी ज़मींदार और सूदख़ोर बनिए। सरकार इन ५ अरब रुपयों में से किसानों के हित के लिए सिर्फ़ २४ लाख रुपए ख़र्च करती है। शेष सब उसकी जेब में भर कर चाय-बिस्कुट के काम में आता है। एक विद्वान् का कथन है :—

"जो देश केवल साधारण खेती में लगे रहते हैं, उनमें मन की मन्दता, शरीर का भद्दापन, पुराने अन्ध-विश्वासों और रीति-रिवाजों पर प्रेम, और सभ्यता, वैभव और समृद्धि का तथा स्वतन्त्रता का अभाव पाया जाता है। दूसरी ओर जो देश व्यापार में लगे हैं, उनमें मानसिक और शारीरिक गुणों की उन्नति के, निरन्तर उद्योगी बने रहने के, मुक़ाबला करने के और स्वतन्त्रता के भाव पाए जाते हैं।"

शिल्प और व्यापार ही में जहाज़ी बेड़ों का उपयोग होता है। व्यापारिक बेड़ों की रक्षा के लिए सैनिक बेड़े बनते हैं। तैयार माल बेचने तथा कच्चा माल प्राप्त करने के अभिप्राय से उस देश के निवासी को नए देशों की यात्रा, युद्ध और बहुत-कुछ पराक्रम करने पड़ते हैं, इसलिए वे देश, जहाँ शिल्प और व्यापार उच्च है, उन्नत हो जाते हैं।

यह बात स्पष्ट है कि ये वीर-महान् किसान, जो १५ अरब रुपए प्रति वर्ष पैदा करते हैं, सब अलग-अलग गाँवों में रहते हैं। तमाम ब्रिटिश-भारत में ८ लाख गाँव हैं, इनमें उपरोक्त २३ करोड़ किसानों के साथ ५ करोड़ उपजीवी, कुल मिलकर २८ करोड़ मनुष्य रहते हैं, शेष ३ करोड़ स्त्री-पुरुष क़स्बा-शहरों और नगरों में रहते हैं। ब्रिटिश-भारत में २२ हज़ार क़स्बे, शहर और २ लाख और उससे अधिक की आबादी के शहर १० हैं। १ लाख से २ लाख तक की आबादी के शहर ३० और ५० हज़ार से १ लाख तक के ७७ शहर हैं। इन्हीं में उपरोक्त ३ करोड़ मनुष्यों का निवास है।

अब गाँवों की दशा पर ग़ौर करिए! क्या भारत का ऐसा भी कोई पुरुष है, जो गाँवों की दुर्दशा से नावाक़िफ़ हो? सरकार जहाँ नगरों और शहरों की स्वास्थ्य-रक्षा के लिए अनेक उद्योग करती और करोड़ों रुपए ख़र्च करती है, वहाँ इन गाँवों की तरफ़ उसका रत्ती भर भी ख़्याल नहीं है। फलतः खुली हवा का स्वाभाविक सुयोग पाकर भी ये अभागे, रोगी, कुरूप और महामारियों के शिकार बने रहते हैं। उनकी इतनी बड़ी आय का लगभग ३० फ़ी सैकड़ा सरकार, ३० सै० सूदख़ोर बनिया और ३० सै० ज़मींदारों के पेट में चला जाता है। हैज़ा, प्लेग, मलेरिया और चेचक इनके घरों में घर किए सदा विराजमान रहते हैं और इनसे बचने का इनके पास कोई उपाय, कोई प्रतिकार नहीं है—वे लोट-पोट कर, मरना होता है तो मरते हैं, जीना होता है तो जीते हैं !!

किसी भी गाँव में आप जाइए—बिलकुल घर की दीवारों से मिला हुआ मैले और सड़े हुए पानी का गढ़ा आपको दीख पड़ेगा। बरसात में यह ख़ूब बड़ा हो जाता है और रास्ता बन्द कर देता है। कभी-कभी बरसात में गलियों और दरवाज़ों तक कमर-कमर पानी चढ़ आता है। इन बेचारों को—स्त्री-पुरुषों को—महीनों खड़े-खड़े शौच-क्रिया करनी पड़ती है!

गाँव में घुसकर देखिए, मैले, टूटे-फूटे, कच्चे, बेडौल, बिना सरोसामान छोटे-छोटे घेरे, एक तरफ़ छप्पर, उसी में एक कोने में चूल्हा है, दूसरे में सोने के गुदड़े! सामने पशु बँधे हैं। गोबर और पेशाब का बीच में ढेर लगा है। स्त्री, बच्चे, पुरुष, बूढ़े, जवान—सभी कुछ न कुछ जीवन के उद्योग में लगे हैं। घर में यदि दूध का पशु है तो वह बनिए से रुपया उधार लेकर लिया गया है। उसका रत्ती-रत्ती दूध जमाकर घी उसकी दूकान पर जाता है। सिर्फ़ छाछ पीने को मिल जाती है! सारी फ़सल बनिए के घर सीधी जाती है। साल भर के खाने को मोटा अन्न और कपड़े बराबर उसी से उधार आते रहे हैं। रात को कोई विनोद नहीं, कोई जीवन नहीं, चुपचाप पड़े-पड़े हुक्का पिए जाना, प्रातःकाल अँधेरे में उठकर हल-बैल कन्धे पर रखकर खेत में जा पिलना—धरती की छाती में ८ अङ्गुल गहरी जुताई करनी, कड़ी धूप या भयानक वर्षा उसमें बाधा नहीं डाल सकती। कभी-कभी घुटनों-घुटनों पानी में १६-१६ घण्टे तक खड़े होकर नराई करना!! ऐसी भयानक मिहनत और ऐसा निकृष्ट पोषण! तत्व से रहित अन्न खाकर क्या कोई भी मनुष्य सुन्दर, बलवान् या मनुष्य ही बना रह सकता है?

ये गाँव छोटे-छोटे अलग-अलग बसे होते हैं। इनके निवासियों को बन-पर्वत, घाटी और मैदानों में जीवन व्यतीत करना पड़ता है। वे गाँव से बाहर नहीं जाते, बाहर की बात नहीं जानते, नहीं समझते, वे अपने पैतृक खेतों में जोंक की तरह चिमटे रहते हैं। फ़ुरसत में दिन-रात काहिल की तरह सोते हैं। उत्साह, साहस, नवीनता, ज्ञान, वीरता उनमें कहाँ से आवे? न्याय-शासन, अधिकार की गूढ़ बातें वे इस परिस्थिति में कैसे समझें?

१९ अरब रुपए की महान् रक़म में से सरकार को लगभग साढ़े चार अरब रुपए मिलते हैं। परन्तु सरकार इन अभागों के लिए क्या करती है, इस पर भी विचार करना आवश्यक प्रतीत होता है।

सन् १८६६ में बङ्गाल और उड़ीसे के अकाल के अनन्तर सरकार ने सबसे प्रथम कृषि-विभाग खोलने की बात सोची थी, पर उस समय कुछ नहरों की वृद्धि करके ही बात वहीं रहने दी गई। इसके बाद फिर सन् १८६९ में लॉर्ड मेयो ने कृषि-विभाग स्थापित करने की चेष्टा की। इस बात पर मैनचेस्टर की 'रुई-सभा' भी सहमत थी, क्योंकि उसे रुई की बड़ी ही ज़रूरत थी। कृषि-विभाग क़ायम हुआ, परन्तु सन् १८७९ में रुपए की तङ्गी से वह स्वराष्ट्र-विभाग में मिला लिया गया। १८८० के अकाल में फिर वह बात चली और प्रान्तीय कृषि-डाइरेक्टर नियत किए गए। इसके बाद सन् १८८९ में भारत-सचिव ने डॉक्टर भीलकर को भारतवर्ष भेजा। उन्होंने घूम-घूमकर भारतवर्ष की खेती का पता लगाया। उन्होंने रिपोर्ट में भारतीयों की कृषि-विज्ञान की सराहना की। उन्होंने कहा कि उन्हें सिर्फ़ साधनों की कमी है।

अन्त में कृषि-विभाग में दो प्रकार के मनुष्य रक्खे गए—एक वे, जो कृषि-सम्बन्धी शिक्षा दें, दूसरे जो वैज्ञानिक अनुसन्धान करें, परन्तु प्रान्तीय डाइरेक्टरों ने भारी भूलें कीं और कुछ लाभ न हुआ। फिर शिकागो के दानवीर हेनरी फ़िलिप ने साढ़े चार करोड़ रुपया लॉर्ड कर्ज़न को भारत की भलाई में ख़र्च करने को दिया। उसी से पूसा का कृषि-कॉलेज खोला गया, जहाँ अब सिर्फ़ बड़े-बड़े प्रयोग होते हैं। आजकल सरकार २४ लाख (???) रुपए कृषि-शिक्षा के लिए ख़र्च करने की उदारता कर रही है। अब किसानों को कुछ चुने हुए बीज, कुछ नए-नए खाद, कुछ विलायती ढङ्ग के हल-औज़ार आदि देने के अतिरिक्त किसानों का सरकार से कुछ भी भला नहीं हो रहा है। उनके जीवन को उन्नत करने, उन्हें सुखी, समृद्धिशाली बनाने, उन्हें स्वावलम्बी बनाने, उन्हें सभ्य और नागरिक बनाने में सरकार की ज़रा भी चेष्टा नहीं है। जिनकी गाढ़ी पसीने की कमाई में से साढ़े चार अरब रुपया सरकार खाती है, उनके लिए २४ लाख का नाममात्र ख़र्च करना सरकार की इन सीधे-सादे ग़रीबों के प्रति पूरी-पूरी नमकहरामी है।

ब्रिटिश-भारत में खाने की चीज़ों में धान, गेहूँ, ज्वार, बाजरा, चना सब लगभग सवा दो लाख एकड़ ज़मीन में तथा ईख ढाई हज़ार एकड़ में, तेलहन, कपास, जूट, नील, पोस्त, चाय, ये लगभग ४५ हज़ार एकड़ में बोए जाते रहे हैं।

कुल खेती के सैकड़े पीछे ६ में कपास बोई जाती है, गत बीस वर्षों में कपास की खेती सैकड़ा पीछे ६७ बढ़ गई है। देश में भी कपास की बहुत माँग है। फिर जापान, चीन, अफ़्रीका, और मध्य एशिया वाले भी बराबर ख़रीदने के

इच्छुक हैं। गत २५ वर्षों में मद्रास में १० लाख, बम्बई में १५ लाख, पञ्जाब में ६ लाख और मध्य-प्रदेश में १५ लाख एकड़—वृद्धि कपास की उपज में हुई है। गेहूँ पश्चिमोत्तर भारत का प्रधान खाद्य द्रव्य है। इस कारण पञ्जाब, संयुक्त-प्रदेश, मध्य-प्रदेश इसकी बड़ी खेती करता है। कुल खेती का दशमांश गेहूँ होता है। इधर १२ वर्षों में प्रायः ८५ लाख एकड़ गेहूँ की खेती बढ़ी है। उपज का फ़ी सैकड़ा ७०-८० तो देश में रह जाता है, शेष इङ्गलैण्ड, बेलजियम, फ़्रान्स, मिश्र और इटली चला जाता है।

धान—गेहूँ की तरह चावल भी पूर्वीय देशों का प्रधान खाद्य है। इसी कारण यह वहाँ अधिक होता है। कोई ८ करोड़ एकड़ धरती में इसकी खेती होती है। यह कुल खेती का सैकड़ा पीछे ३५ हिस्सा है।

ईख—विलायती खाँड ने देशी खाँड को गिरा दिया है। विशेषकर जावा की खाँड ने देशी खाँड के बाज़ार को चौपट कर दिया। इधर २५-३० वर्षों में जावा की खाँड की आमदनी लगभग १६½ लाख मन से बढ़ते-बढ़ते अब सवा दो अरब मन होगई है! बङ्गाल, बम्बई और मध्य-प्रदेश की ईख की फ़सल बहुत घट गई है। परन्तु मद्रास, आसाम और युक्त-प्रदेश में बढ़ी है। कुल २४, २५ लाख एकड़ ज़मीन में ईख बोई जाती है। जूट की तिजारत रेशेदार पदार्थों में सबसे ज़्यादा है। कोई तीस लाख एकड़ में इसकी पैदावार होती है।

नील—नील की अब पहले सी इज़्ज़त नहीं है। २०-२२ वर्ष पहले २०-२२ लाख एकड़ ज़मीन में नील बोया जाता था। परन्तु लड़ाई के बाद फिर ६-७ लाख एकड़ में बोया जाने लगा है।

तमाखू—इसकी उपज बढ़ती जा रही है। लगभग ६० करोड़ के मूल्य का तमाखू देश में प्रति वर्ष बोया जाता है।

तेलहन—२५ करोड़ रुपयों के लगभग तेल और तेलहन हर साल बाहर जाता है। और कई करोड़ का देश में जलाने, खाने, लगाने आदि के काम आ जाता है।

चाय—इसकी खेती बराबर उन्नति पर है। गत २० वर्षों में इसकी खेती तिगुनी हो गई है।

रबर, कॉफ़ी, फल और रेशम—कॉफ़ी के बग़ीचे मद्रास-इलाक़े में हैं। ब्रह्मा और मद्रास में रबर के बग़ीचे हैं। क्वेटा और पेशावर में फलों की उन्नति का थोड़ा-बहुत प्रयत्न किया जा रहा है। पूसा, बर्मा, बङ्गाल और आसाम में रेशम की अभी उन्नति की जा रही है।

इस प्रकार इतना माल, इतनी काम की वस्तुएँ जो किसान उत्पन्न कर रहे हैं, उनकी दशा वास्तव में बहुत ही शोचनीय है, जैसा कि ऊपर बताया गया है।

हम इस बात पर अब पाठकों का ध्यान आकर्षित करना चाहते हैं कि किसानों को कभी न पनपने देने वाली भूमि-कर सम्बन्धी सरकारी नीति है। जो समूह केवल परिश्रम से ही १५ अरब रुपया कमाता है, वह इतना दरिद्र क्यों है, इसकी सबसे अधिक ज़िम्मेदारी भूमि-कर-सम्बन्धी क़ानून की ज़िम्मेदारी है। राजा भूमि का स्वामी होता है, यह बात सत्य है। और अत्यन्त प्राचीन काल से राजा भूमि-कर लेते आए हैं; यह बात भी सत्य है। भारतवर्ष में पृथ्वी के इतिहास के प्रारम्भ से राज्य-सत्ता रही है और राजाओं ने भूमि-कर लिया है। पर हम यह कह सकते हैं कि इस सम्बन्ध में अङ्गरेज़ी सरकार जो अनीति और बेईमानी की चाल चली है, वह तो कभी पृथ्वी पर किसी ने की ही न थी।

प्राचीन काल में यूनान, फ़ारस, चीन और रोम में उपज का $\frac{१}{१०}$ भाग; डायोक्लीशियन के काल में—रोम में $\frac{१}{५}$ या $\frac{१}{६}$; भारतवर्ष में गौतम धर्म-सूत्र (अ० १,४२) के मत से $\frac{१}{१०}$; वशिष्ठ धर्म-सूत्र (अ० १, ४२) के मत से $\frac{१}{६}$; मनुधर्म-सूत्र (अ० ७, १३०) के मत से $\frac{१}{१२}$ राज-कर लिया जाता था। इससे अधिक कर कभी हिन्दू-राज्य-काल में नहीं बढ़ाया गया।

मुसलमान-सम्राटों ने यद्यपि भौमिक सम्पत्ति को अपने अधीन कर लिया था, किन्तु लगान उनका भी इतना भयानक न था।

बादशाह अकबर ने अधिक से अधिक जो कर लिया था, वह $\frac{१}{३}$ था। पर उसे वास्तव में जो मिलता था वह $\frac{१}{६}$ से अधिक न था। आईने-अकबरी में लिखा है:—

"बहुत से प्रान्तों में भूमि का माप नहीं किया गया था, वहाँ पर लगान अन्दाज़ से ही लिया जाता था। जहाँ माप भी किया गया था, वहाँ भी उसकी ठीक विधि न होने से गाँव के ज़मींदार तथा चौधरियों पर ही निर्भर करना पड़ता था। × × × बादशाह लगान के अधिक से अधिक रुपए नियत करते थे, परन्तु वास्तव

में उतने रुपए राज्य-कोष में कभी न आते थे। और प्रजा कम लगान देकर मज़े में दिन काटती थी।"

स्वर्गीय रमेशचन्द्र दत्त ने लिखा है कि अकबर के समय में निम्नलिखित ८ प्रान्तों का कल्पित लगान यह था :—

बङ्गाल	१,४९,६१,४८२
बिहार	५५,४७,९८५
इलाहाबाद	५३,१०,६९५
अवध	५०,४३,६५४
आगरा	३६,५६,२५७
दिल्ली	१,५०,४०,३८८
लाहौर	१,३१,८६,४६०
मुलतान	३७,८५,०६०
कल्पित लगान ...	७,७३,३२,३११

इन आठ प्रान्तों को अब अङ्गरेज़ी राज्य में तीन प्रान्तों में बाँट दिया गया है—(१) बङ्गाल (२) संयुक्त-प्रान्त और (३) पञ्जाब।

इन तीनों प्रान्तों से सन् १८९५-९६ में—

बङ्गाल से ...	... ३,९०,५२,२१०
युक्त-प्रान्त से ...	... ६,०१,६६,४४०
पञ्जाब से ...	... २,३९,६६,९९०
वसूल किया कर	१२,३१,८८,६४०

उपरोक्त हिसाब बताता है कि अङ्गरेज़ों ने भारत पर अधिकार करने के बाद ही मुग़ल-राज्य से ३५ वर्ष बाद, मुग़लों से लगभग दूना लगान नक़द वसूल कर लिया था। आजकल तो यह रक़म तिगुने से भी कुछ अधिक हो गई है। भारत में सदैव से किसान ही भूमि के स्वामी होते थे। अब भी यूरोप में किसान भूमि के मालिक हैं, परन्तु वे ही यूरोपियन हिन्दुस्तान में किसानों की ज़मीन के स्वामी बन बैठे हैं। प्रायः यह दस्तूर हुआ करता है कि १०-१५ वर्षों में लगान बढ़ा दिया जाता है। पञ्जाब, मद्रास, बम्बई, युक्त-प्रान्त आदि देशों का लगान बारम्बार बढ़ते-बढ़ते यहाँ तक पहुँच गया है कि लगान दे चुकने पर किसान के पास खाने को कुछ भी नहीं बच रहता। यही कारण है कि किसान भयानक क़र्ज़ें में नाक तक डूबे हुए हैं!

सन् १७९३ में बङ्गाल में कुल उपज का ९०) सैकड़ा लगान सरकार ने स्थिर किया था। यह कितना भयानक था, यह बात विचारने की है। परन्तु अब साढ़े पचीस प्रति सैकड़ा है। इतना लगान मुग़लों के राज्य में केवल युद्ध-काल ही में लिया जाता था!

बङ्गाल के अत्यन्त प्राचीन इतिहास से पता लगता है कि बङ्गाल की समस्त ज़मीन छोटे-बड़े ज़मींदारों में विभक्त थी। ये ज़मींदार भूमियों के अन्तरीय शासक तथा राजा थे। अफ़ग़ान-काल में इन्हें कुछ धक्का लगा था, किन्तु राज्य में उनकी स्थिति वैसी ही बनी रही। एक ज़मींदार ने सन् १२८० में दिल्ली के पठान-बादशाह को मदद दी थी। पठानों के बाद १६ वीं सदी में अकबर ने बङ्गाल को फिर विजय किया, परन्तु ज़मींदारों की दशा में कुछ भेद न हुआ। बङ्गाल के ज़मींदार प्रायः कायस्थ थे। अकबर के ज़माने में तमाम बङ्गाल का लगान २ करोड़ रुपए राज्य की ओर से नियत था। अङ्गरेज़ों ने आरम्भ ही में इन ज़िलों से ४ करोड़ रुपए लगान वसूल किया!

१८ वीं सदी के प्रारम्भ में अङ्गरेज़ों ने अन्य प्रदेशों की तरह बिना वहाँ के ज़मींदारों की दशा को ठीक-ठीक समझे समस्त भूमि को अपनी समझ लिया और ५ वर्ष के लिए मनमाना लगान लगा दिया, पर जब वह वसूल न हुआ तो ज़मीनें नीलाम होने लगीं, इसका बड़ा भयानक परिणाम हुआ।

१७८० में दीनाजपुर का राजा मर गया। इस प्रान्त का लगान २१ लाख रुपया था। राजा का पुत्र ५ वर्ष का था और उसकी विधवा स्त्री अपने उस शिशु-पुत्र की संरक्षिका थी। अङ्गरेज़ों ने उस दयनीय दशा पर ज़रा भी तरस न खाकर, देवीसिंह नामक एक अति क्रूर आदमी को रियासत के प्रबन्ध के लिए भेज दिया। यह आदमी पूर्निया और दीनाजपुर में अत्याचार और क्रूरता के लिए दोषी ठहराया गया था। पर लगान वसूल करने में वह एक ही था। इसने जमींदारों तक को कोड़े लगवाए, स्त्रियों के साथ अमानुषी अत्याचार किए। अन्त में किसान इससे तङ्ग आकर गाँव छोड़-छोड़ कर भागने लगे। उन्हें सिपाहियों से पकड़वा-पकड़वा कर ज़मीन जोतने पर लाचार किया गया। अन्त में दीनाजपुर तथा रङ्गपुर में विद्रोह हो गया। इस विद्रोह को जिस अमानुषी क्रूरताओं से दबाया गया, वह बङ्गाल में कभी भी न भूलने की घटनाएँ हैं।

बर्दवान का राजा तिलकसिंह सन् १७६७ में मर गया। उसका पुत्र छोटी उम्र का था। अङ्गरेज़ों ने व्रजकिशोर को राज्य-प्रबन्ध के लिए भेज दिया। यह अत्याचार में देवीसिंह से कम न था। तेजसिंह की माता ने इस पापी को राज्य की मोहर न दी। उसके लिए इसने रानी को बहुत तङ्ग किया और अन्त में कुमार को क़ैद कर लिया। लाचार, रानी को मुद्रा देनी पड़ी। फिर गङ्गा गोविन्दसिंह ने बर्दवान पर इतना लगान बढ़ाया कि जो सीमा से बाहर है। आज तक बर्दवान की प्रजा अङ्गरेज़ी राज्य भर में सबसे अधिक लगान दे रही है। राजशाही की रानी भवानी एक पूज्य देवी थीं। प्लासी-युद्ध

सन् १५८२	...	अकबर के राज्य में
सन् १६५८	...	अकबर के राज्य में
सन् १७२२	...	मुग़ल-राज्य में
सन् १८२२	...	”
सन् १९१७	...	अङ्गरेज़ी राज्य में
सन् १९१८	...	अङ्गरेज़ी राज्य में
सन् १९१९	...	अङ्गरेज़ी राज्य में

इस सारिणी से अङ्गरेज़ी राज्य के प्रवेश के साथ-साथ ही लगान-वृद्धि का पूरा ज्ञान हो जाता है। लॉर्ड कॉर्नवालिस ने हेस्टिंग्स के अत्याचारों के बाद बुद्धिमानी से ज़मींदारों के साथ स्थिर लगान का समझौता कर लिया। पर यह लगान ९०) सैं० तक पहुँच गया था। फिर भी स्थिर-लगान से वहाँ के किसानों में सन्तोष हुआ।

संयुक्त-प्रान्त के भिन्न-भिन्न भागों में, भिन्न-भिन्न काल में, अङ्गरेज़ों का अधिकार हुआ। सन् १७७५ में अवध के नवाब से बनारस तथा उसके साथ के ज़िले ले लिए गए और १७९५ में उनमें बङ्गाल के समान स्थिर लगान प्रचलित कर दिया गया। इलाहाबाद तथा आगरा के प्रान्त १८०१ तथा १८०३ में इनके हाथ आए। इन पर अधिक से अधिक लगान लगाया गया। १८०२ में एक घोषणा द्वारा यह प्रकट किया गया कि दो बार त्रैवार्षिक बन्दोबस्त और तीसरी बार चतुर्थ वार्षिक बन्दोबस्त कर देने के अनन्तर स्थिर लगान-विधि प्रचलित कर दी जायगी। पर इस पर अमल नहीं किया गया। १८२२ के बाद समय-समय पर लगान बढ़ाया गया। १८३७ में भयानक अकाल

के समय सम्पूर्ण उत्तरीय बङ्गाल इन्हीं के राज्य में था। वे जैसी प्रबन्धक थीं, वैसी ही दयावती भी। अङ्गरेज़ों ने इन पर बुरी तरह लगान बढ़ा दिया, पर यह प्रजा से वसूल न कर सकीं, क्योंकि यह उन पर ज़ुल्म करना नहीं चाहती थीं, तब दुलालराय को सरकार ने लगान एकत्र करने को भेज दिया। इस नीच ने रियासत को तहस-नहस कर दिया और रानी को बड़ा ही कष्ट दिया।

इन सबका परिणाम यह हुआ कि तमाम जङ्गल बियाबान हो गया और किसान छोड़-छोड़कर भाग गए। मि० शोर ने बङ्गाल के लगान की एक सारिणी दी थी, जो निम्नाङ्कित है :—

टोडरमल के बन्दोबस्त से		...	१,०७,९३,१५२)
सुल्तान शुजा	,,	...	१,३१,२५,९०६)
जफ़रख़ाँ	,,	...	१,४२,८८,१८६)
शुजाख़ाँ	,,	...	१,४२,४५,५६१)
अङ्गरेज़ों	,,	...	३,०८,८४,१८४)
अङ्गरेज़ों	,,	...	२,९९,२५,०००)
अङ्गरेज़ों	,,	...	२,९८,५४,०००)

पड़ा और इलाहाबाद से देहली तक का देश उजड़ गया। आगरे पर इसका बुरा प्रभाव था। तब भी लगान आधा वसूल किया गया था।

१८५६ में अवध को सरकार ने प्राप्त किया और १८५७ में भारत में ग़दर हुआ। ग़दर के बाद सरकार ने १८५८ में समस्त भूमि छीन ली और उनका फिर से विभाग करके ५० राज-भक्त तालुक़ेदारों के तालुक़ेदारी में स्थिर लगान-विधि प्रचलित की गई; और अन्यों में ३० वर्ष के अनन्तर बन्दोबस्त करने का निश्चय किया गया।

१८४६ में पहले सिक्ख-युद्ध के पश्चात् रावी तथा सतलज के मध्य का एक भाग सरकार ने अपने राज्य में मिला लिया। १८४९ में पञ्जाब का शेष भाग भी सरकार के हाथ में आ गया। दिल्ली और कुछ अन्य ज़िलों को युक्त-प्रान्त से अलग करके १८५८ में पञ्जाब में जोड़ दिया गया। और फिर वही अधिक से अधिक लगान लगा दिया गया।

यह दुखदाई डाकेज़नी और अत्याचार की कहानी है। इसका तो अब एक ही उपाय है और वह यह कि इस

विषय में समस्त भारत में भयानक सत्याग्रह किया जाय और प्राण रहते एक पाई भी अधिक लगान सरकार को न दिया जाय।

बम्बई में सन् १८१७ में जिस भूमि पर ८० लाख लगान था, उस पर १८१८ में—एक ही वर्ष में—१ करोड़ १५ लाख और कुछ ही वर्षों में डेढ़ करोड़ हो गया। इस भयानक प्रहार से पञ्चायतें टूट गईं और सन् १८२५ में मि० प्रिङ्गल ने मद्रास की विधि पर बम्बई में भी लगान का निश्चय किया, जो भूमि की उपज से भी बहुत अधिक था।

१८३६ में मि० गोल्ड स्मिथ तमाम बन्दोबस्त की जाँच के लिए नियत हुए। इनकी मदद के लिए कैप्टिन विङ्गर और लेफ़्टिनेण्ट वाश को भी भेजा गया। इन्होंने सरकार से एक नवीन विधि की ही सिफ़ारिश की। उसकी शर्तें ये थीं :—

१—प्रत्येक किसान से अलग-अलग उसकी ज़मीन का लगान लिया जाय।

२—प्रत्येक बदोबस्त ३० वर्ष बाद हुआ करे।

३—लगान भूमि के मूल्य के अनुसार नियत हुआ करे, न कि उपज के अनुसार।

यह बन्दोबस्त १८३६ से शुरू हुआ और १८७२ में समाप्त हुआ। इसका भयानक परिणाम यह हुआ कि जहाँ लगान १५ लाख ३० हज़ार रुपए था, वहाँ २० लाख ३१ हज़ार हो गया। अर्थात् ३० सैं० वृद्धि हो गई।

१८६६ में फिर बन्दोबस्त बदला और १३,३६१ गाँवों का, जिनका लगान पहले १४ लाख ४६ हज़ार रुपया था, १८ लाख ८६ हज़ार कर दिया गया। अर्थात् ३० फ़ीसदी फिर बढ़ा दिया गया। इसके ३ वर्ष बाद १८६९ में फिर ३० सैं० लगान में वृद्धि कर दी गई। इस समय बम्बई के प्रान्त के लगान की रक़म साढ़े पाँच करोड़ रुपयों के लगभग है!!

किसी भी जाति और देश के ग़रीब अभागे किसानों पर इससे अधिक क्या मुसीबत पड़ सकती है!! सन् १८७९ में बड़े लाट की काउन्सिल में सर विलियम हण्टर ने कहा था—"दक्षिणी किसानों के कष्ट कम करने में सबसे अधिक कठिनाई तो यह है कि उनका लगान इतना बढ़ा हुआ है कि उनके पास खाने को अन्न और पहनने को वस्त्र तक नहीं है।"

इस लूट और निर्दय अत्याचार की फ़र्याद अङ्गरेज़ी अदालतों में नहीं है। इसका एक निर्लज उदाहरण यह है कि सन् १८७३ में बम्बई-हाईकोर्ट में सेटेलमेण्ट ऑफ़िसर के विरुद्ध प्रजा ने एक अभियोग खड़ा किया था, जिसमें हाईकोर्ट ने प्रजा-पक्ष में फ़ैसला दे दिया था। इसका परिणाम यह हुआ कि बम्बई-गवर्नर की काउन्सिल में एक क़ानून बन गया कि "आगे से लगान-सम्बन्धी कोई भी अभियोग कर्मचारियों के विरुद्ध नहीं किए जा सकेंगे।" अब कहिए, इन अन्नदाता किसानों का जो परिश्रम करके १५ अरब रुपए धरती माता के पेट से निकालते हैं, सहायक कौन है—और ये कैसे पृथ्वी पर जीवित रह सकते हैं?

सब से—सर्व-प्रकार चूसा जाने वाला भारत किस प्रकार यह चोट पर चोट सह सकता है? धरती माता के पेट से १५ अरब रुपया निकालने वाले वीर, साहसी और परिश्रमी किसान कहाँ तक इस लगान-वृद्धि से छुटकारा पा सकते हैं। वे तो कमाते-कमाते मर जाते हैं। मरने तक उनके पास एक पैसा भी अपना नहीं जुट पाता है। और उसकी अन्त्येष्टि-क्रिया भी उधार कफ़न लाकर की जाती है! यह है इन प्रजा-पालक अभागे किसानों का अन्त!!

अब हमें देखना चाहिए कि अङ्गरेज़ी सरकार जब से भारत में आई है, तब से देश में कर-वृद्धि का क्या परिणाम हुआ है। सन् १७७० ई० से लेकर सन् १९०० ईसवी तक भारत में २३ बड़े भयङ्कर अकाल पड़े हैं, जिनमें प्रायः ३ करोड़ मनुष्य मर गए। और १९०० से १९२८ तक छोटे-छोटे अकाल तो प्रायः समाचार-पत्रों में पढ़ने को नित्य मिल जाते हैं। ये २३ अकाल पड़े तो समस्त भारत में हैं, पर अधिकतर इनमें मद्रास और बङ्गाल के अकालों की संख्या है। इन कुल अकालों का मूल कारण सरकार का समय-समय पर लगातार कर-वृद्धि है। इन अकालों से कितना नुक़सान हुआ, सो तो पाठक स्वयं सोच सकते हैं। इन भयानक रोंगटे खड़े करने वाले अकालों का ब्यौरा भी सुनिए :—

१—१७७० का बङ्गाल का अकाल—ईस्ट-इण्डिया कम्पनी के भयानक अत्याचारों और बुरी तरह मालगुज़ारी बढ़ाने से यह अभूतपूर्व भयानक अकाल पड़ा था। इसमें १ करोड़ से अधिक बङ्गाली तड़प-तड़प कर

मर गए थे। यह मानों समस्त बङ्गाल के एक तिहाई आदमी थे। कोर्ट ऑफ़ डाइरेक्टर्स ने अपने १७ मई सन् १७६६ के पत्र में अपने नौकरों के अत्याचार पर शोक प्रकट किया था।*

२—१७८३ का मद्रास का अकाल—इस अकाल का कारण मैसूर के साथ वारन हेस्टिंग्स का युद्ध था। मृत्यु-संख्या अज्ञात।

३—१७८४ का उत्तर भारत का अकाल—इस बड़े अकाल में गाँव के गाँव उजड़ गए थे। इसका कारण अङ्गरेज़ों का अवध पर दख़ल करना और भयानक कर वसूल करके अपनी जेबें भरना था। बलात्कार से विद्रोह हो गया था, जिसे अत्यन्त क्रूरतापूर्वक दबाया गया। कैप्टन एडवर्ड का कथन है कि, "जब मैं १७७४ में अवध में गया था तब वह बड़ा हरा-भरा था, परन्तु १७८३ में वह बिलकुल उजाड़ था।" वारन हेस्टिंग्स ने स्वयं लिखा है—"बक्सर से लेकर बिहार-प्रान्त के अन्त तक मैंने प्रत्येक गाँव उजड़े देखे हैं। इस अकाल में बनारस में एक तिहाई खेती बन्द हो गई थी।"

४—१७९२ का बम्बई और मद्रास का अकाल—लॉर्ड कॉर्नवालिस के समय में यह भयानक अकाल पड़ा था।

५—१८०३ का बम्बई का अकाल—यह अकाल मराठों और अङ्गरेज़ों के युद्ध के कारण हुआ था। होल्कर की सेनाओं ने तथा पिण्डारियों ने खेतियों को उजाड़ दिया था।

६—१८०४ का उत्तर भारत का अकाल—यह युद्ध और कुशासन से हुआ था। १८०१ में अवध के कुछ भाग अङ्गरेज़ों ने नवाब से छीन लिए थे और मालगुज़ारी इकट्ठी करने में बड़ा ज़ुल्म किया गया था। उसी का यह परिणाम था।

७—१८०७ का मद्रास का अकाल—इस अकाल का मुख्य कारण मालगुज़ारी की अधिकता थी। वह बलात् ली गई। उसे ले लेने पर किसानों के पास कुछ न बचा। फिर १८०६ में वृष्टि बिलकुल न हुई थी।

८—१८१३ का बम्बई का अकाल—यह भी मालगुज़ारी की वृद्धि के कारण हुआ था।

९—१८२३ का मद्रास का अकाल—रय्यतवारी विधि से मद्रास में पुनः लगान लगाया गया था। इस अकाल में सरकार ने अन्य प्रान्तों से अन्न मँगाया था।

१०—१८३३ का मद्रास का अकाल—यह अकाल बड़ा भयानक था। गन्तूर ज़िले के ५ लाख मनुष्यों की आबादी में से २ लाख मनुष्य भूखे मर गए थे! मद्रास की गलियाँ और नीलोर की सड़कों पर लाश ही लाश दीखती थीं।

११—१८३७ का उत्तर-भारत का अकाल—इन दिनों अवध, आगरा, कानपुर आदि नगरों में नए सिरे से लगान निश्चित किया गया था। यह लगान $\frac{2}{3}$ हो गया था। प्रजा के पास कुछ न रहा। फिर वृष्टि भी नहीं हुई। यह अकाल इतना भीषण था कि फ़तहपुर, कानपुर और आगरा शहर में लाश फेंकने वालों का ख़ास इन्तज़ाम करना पड़ा था। फिर भी लाशें सड़कों पर ही पड़ी रह जाती थीं और उन्हें जङ्गली पशु खा जाते थे। गलियाँ मुर्दों से भर गई थीं। लॉर्ड लॉरेन्स का कहना है—"मैंने अपने जीवन में कभी ऐसा नाशकारी दृश्य नहीं देखा, जैसा पलवल और होदाद परगनों में।" इस दुर्भिक्ष में ८ लाख मनुष्य मरे थे!!

१२—१८५४ का मद्रास का अकाल—यह अकाल उत्तर मद्रास तथा हैदराबाद में पड़ा। मृत्यु-संख्या का पता नहीं। इसके कारण कई वर्ष तक मद्रास की जन-संख्या न बढ़ सकी थी।

१३—१८६० का उत्तर भारत का अकाल—सत्तावन के ग़दर के २ वर्ष बाद यह अकाल पड़ा। ग़दर के कारण स्थान-स्थान पर खेती उजड़ गई थी। इसका कारण भी लगान ही था। यद्यपि वह $\frac{2}{3}$ से घटा कर $\frac{1}{2}$ कर दिया गया था। कर्नल बेयर्ड स्मिथ ने फिर भी स्थिर लगान की सलाह दी थी। इस अकाल में ३५ हज़ार आदमियों को रिलीफ़ वर्क और ८० हज़ार को ख़ैराती मदद ६ मास तक मिली थी, फिर भी २ लाख मरे थे!!

१४—१८६६ का उड़ीसे का अकाल—यह अकाल उड़ीसा में निश्चित लगान न होने के कारण पड़ा था। इसमें ४२ हज़ार आदमियों की १६ महीने तक मदद की गई थी। फिर भी साढ़े चौदह लाख आदमी मरे थे!!

*"The corruption and rapacity of our servants."

१५—१८६६ का उत्तरी भारत का अकाल—यह अकाल राजपूताने से प्रारम्भ होकर उत्तर-पश्चिम प्रान्तों में फैल गया था। इसमें ६५ हज़ार आदमियों को रिलीफ़ वर्क से और १८,००० को ख़ैराती मदद मिलती थी, फिर भी १२ लाख आदमी मरे !!

१६—१८७४ का बङ्गाल का अकाल—इसमें ७ लाख ३५ हज़ार आदमी रिलीफ़ वर्क से और साढ़े चार लाख ख़ैराती सहायता से ६ महीने तक पले। इस अकाल में लॉर्ड नॉर्थब्रुक ने बड़े यत्न से लोगों की प्राण-रक्षा की थी।

१७—१८७७ का मद्रास का अकाल—इस अकाल का कारण सन् १८५६ की सरकारी लगान-सम्बन्धी नीति को त्याग देना था। लगान बढ़ा देने ही से यह अकाल पड़ा। इसमें ५० लाख मनुष्य मरे।

१८—१८७८ का उत्तर-भारत का अकाल—यह अकाल अत्यन्त भयानक था। इसका वास्तविक कारण लगान-वृद्धि था। इसमें १२,७५० मनुष्यों को अनाथालयों से और ५ लाख ५७ हज़ार को रिलीफ़ वर्क से सहायता दी गई। इसमें १२ लाख ५० हज़ार मनुष्य मरे।

१९—१८८९ का मद्रास का अकाल—इसमें बहुत मनुष्य मरे।

२०—१८९२ का बहुप्रान्तीय अकाल—मद्रास, बर्मा तथा अजमेर में इसका भयानक रूप था। कारण अस्थिर लगान-प्रथा थी।

२१—१८९७ का भयङ्कर भारत-व्यापी अकाल—इसका प्रभाव समस्त देश में था। और यह अत्यन्त भयानक था। इसमें ३० लाख मनुष्यों को सहायता दी गई थी। इसमें मजूर और कारीगरों की अधिक मृत्यु हुई।

२२—१९०० का भयङ्कर अकाल—जो पञ्जाब, राजपूताना, मध्य-प्रान्त और बम्बई में पड़ा। इसमें ६० लाख मनुष्यों को रिलीफ़ वर्क से सहायता दी गई। फिर भी बहुत अधिक मृत्यु हुई।

२३—१९०० से १९२८ तक के अकाल—जो हर दूसरे-तीसरे वर्ष किसी न किसी प्रान्त में पड़ते ही रहते हैं। गढ़वाल और पुरी के अकालों का इसमें विशेष उल्लेख करना उचित है। सरकार इस विषय में सहानुभूति तो क्या प्रकट करती, उलटे उसकी रिपोर्ट में सत्य बातें छिपी रहती हैं। १९१९ में नदी की भयानक बाढ़ से पुरी की खेतियाँ नष्ट-भ्रष्ट हो गईं। १९१८ में फ़सल पहले ही अच्छी न हुई थी। फिर युद्ध के कारण विदेश में बहुत अन्न गया था। बदले में सरकारी नोटों का ढेर प्राप्त हुआ था। फलतः अकाल पड़ा और लाखों मनुष्य मर गए।

एक अकाल की हानि का अनुमान एक विद्वान् ने लगाकर बताया है कि एक ही अकाल में सरकार और प्रजा की लगभग सवा अरब (?) रुपयों की हानि हुई और ५० लाख मनुष्य मरे अलग। उस हानि का हिसाब देखिए :—

१—सरकारी ख़र्च में हानि ...	१२,००,००,०००
२—मालगुज़ारी में „ ...	३,७८,००,०००
३—खेती की „ ...	४६,७०,००,०००
४—आबकारी-टैक्स की हानि ...	४२,७५,०००
५—चुङ्गी की आमदनी में हानि...	७१,८५,०००
६—नमक-टैक्स में हानि ...	४०,६५,०००
७—ज़ेवरों की हानि ...	१,४८,२०,०००
८—खाद्य पदार्थों की महँगी से हानि	१६,५०,००,०००
९—पशुओं की हानि ...	७,१२,४१,५००
१०—मज़दूरों की हानि ...	४,१२,५०,०००
११—क़र्ज़ देने वालों की हानि ...	३,००,००,०००
१२—व्यापारियों की हानि ...	१,५०,००,०००

इसमें ५० लाख मनुष्यों के प्राणों का भी कुछ मूल्य जोड़ लिया जाय और फिर इन तमाम अकालों की हानि का धन और जन-हानि की दृष्टि से विचार लगाया जाय तो निस्सन्देह पृथ्वी काँप उठेगी !!

इन अकालों के कारणों पर स्वर्गीय सर रमेशचन्द्र-दत्त लिखते हैं :—

"× × × सन् सत्तावन के ग़दर के बाद राज्य की बागडोर महारानी विक्टोरिया के हाथ में आई। तब से आज तक भारतवर्ष के भीतरी भागों में कभी लड़ाई नहीं छिड़ी—प्रजा शान्त और राज्य-भक्त रही। वह मिहनती और किफ़ायत से रहने वाली थी। फिर भी अकालों ने उग्र-रूप धारण किया। ग़दर के बाद ४० वर्षों में १७ अकाल पड़े, जिनमें डेढ़ करोड़ मनुष्य तड़प-तड़प कर भूखे मर गए। इसका कारण भयानक भूमि-कर है।"

सन् १७७० का बङ्गाल का अकाल पृथ्वी पर कभी न भूलने वाला अकाल था, जिसमें १ करोड़ मनुष्य मरे थे। ईस्ट इण्डिया कम्पनी को भी अपने नौकरों के अत्याचार के लिए लज्जित होना पड़ा था। उस भयानक दुर्दशा का आँखों देखा वर्णन स्वर्गीय चण्डीचरण सेन ने इस प्रकार किया है :—

"घोर दुर्भिक्ष समुपस्थित है। सूखे नर-कङ्कालों से मार्ग भरे पड़े हैं। × × × सहस्रों नर-नारी मर-मर कर मार्ग में गिर रहे हैं। भगवती गङ्गा अपने तीव्र प्रवाह में सूखे मुर्दों को गङ्गासागर की ओर बहाए लिए जा रही हैं। अपने अधमरे बच्चों को छाती से लगाए सैकड़ों स्त्रियाँ अधमरी अवस्था में गङ्गा के किनारे सिसक रही हैं, पर पापी प्राण नहीं निकलते। फिर भी डोम अन्य मुर्दों के साथ उन्हें भी टाँग पकड़-पकड़ कर गङ्गा में फेंक रहे हैं। जहाँ-तहाँ आदमियों का समूह हिताहित-शून्य हो, वृक्षों के पत्तों को खा रहा है। गङ्गा-किनारे के वृक्षों में पत्ते नहीं रहे हैं।"

आगे आप लिखते हैं—"कलकत्ता नगरी में एक रमणी एक मुट्ठी नाज के लिए अपने गोद के बच्चे को बेचने के लिए इधर-उधर घूम रही है।"

यह घटना प्लासी के भाग्यहीन युद्ध के समय की है। उस समय बङ्गाल में बहुत अन्न था, पर वह सब लूट-कर अङ्गरेज़ों ने सेना के लिए कलकत्ते में जमा कर रक्खा था। अगले वर्ष खेती न हुई, तिस पर कम्पनी के कर्मचारियों का भयानक अत्याचार और ६० प्रति शत भूमि-कर !! फलतः यह भयानक अकाल पड़ा था। इतिहास-कार लिखते हैं कि कलकत्ते में बहुत अन्न अङ्गरेज़ों के पास जमा है, यह सुनकर चारों ओर से—पूर्निया दीनाज-पुर, बाँकुड़ा, बर्द्वान आदि से—हज़ारों नर-नारी कलकत्ते को चल दिए। गृहस्थों की कुल-कामिनियों ने प्राणाधिक बच्चों को कन्धे पर चढ़ाकर विकट यात्रा में पैर धरा। जिन कुल-वधुओं को कभी घर की देहलीज़ लाँघने का अवसर नहीं आया था, वे भिखारिन के वेश में कलकत्ते की तरफ़ आ रही थीं। बहुमूल्य आभूषण और अशर्फ़ियाँ उनके आँचल में बँधी थीं और वे उसके बदले एक मुट्ठी अन्न चाहती थीं। इन्हें लक्ष्य करके चण्डीचरण सेन ने कहा था :—

"हे बङ्ग देश के नर-नारीगण ! तुम झूठी आशा के सहारे व्यर्थ कलकत्ते जा रहे हो। कलकत्ते में जो चावल रक्खे हैं, वे तुम्हारे भाग्य में नहीं हैं—तुम्हारे जीने-मरने में किसी को कुछ लाभ नहीं है। × × × जो शासक तुम्हारी रक्षा का भार उठा चुके हैं, वे अर्थ-गृद्ध होने के कारण तुम्हारी रक्षा का कुछ भी ख़्याल न करेंगे—वह अन्न तो उनके सैनिकों के लिए है। उनके निकट सैनिकों के प्राण तुम्हारे प्राणों की अपेक्षा अधिक मूल्यवान् हैं।"

कहाँ तक इस प्रकार के उद्धरण दिए जायँ, अङ्गरेज़ी साम्राज्य का इतिहास इन्हीं बातों से भरा पड़ा है।

पहले कहा गया है कि प्राचीन काल में भूमि-कर की कोई नियत रक़म न थी। सुकाल-अकाल का ख़्याल करके ही ज़मींदार अपना लगान लेते थे, जैसा कि रजवाड़ों में अब भी लिया जाता है। इससे किसानों और राजाओं में सम्मान-भाव रहता था। पर आज वह बात कहाँ है? किसान लोग दिन-प्रतिदिन एक नई कर-प्रणाली के भारी बोझ से नीचे को दबते चले जा रहे हैं। इसीसे किसानों के मन में खेती की उन्नति करने की उमङ्ग नहीं उठ पाती है। थोड़े-थोड़े समय के लिए कर नियत करना, उगाहने में छूट न करना और पूर्ण कठोरता दिखाना, इन कारणों से बेचारे किसान बनियों के क़र्ज़ के नीचे दब गए हैं। उन पर २५ फ़ी सदी क़र्ज़ा है !!

पर अधिक सोचने की बात तो यह है कि ब्रिटिश-सरकार इतना लगान क्यों बढ़ाती है? यह तो वही मिसाल होती है कि मकड़ी अपने जाले में मक्खी को फँसा लेती है, चूसती है और ख़ूब ख़ून चूसती है। जब वह मर जाती है तो फिर दूसरा जाला बुनकर दूसरी मक्खी की ताक में रहती है। अङ्गरेज़ों की नीति प्रारम्भ से यही है कि भारत को किसी प्रकार भी हो, चूस लेना चाहिए। हमारा धन, दौलत, हीरे, जवाहरात, अमूल्य वस्तुएँ—सब कुछ तो ये ले गए और अब हमारी ग़रीबी की गहरी परिश्रम की कमाई को ये अपने पेट में इस तरह झोंके जा रहे हैं! किसी भी गवर्नमेण्ट की यह नीति सहज डाकेज़नी है और इसकी जितनी निन्दा की जाय, थोड़ी है।

इस लगान-नीति के सम्बन्ध में सर हेनरी कॉटन कहते हैं :—

"हमारी भूमि-कर-सम्बन्धी नीति में यह बात गुप्त रीति से मान ली गई है कि भारतवर्ष की धरती के स्वामी भारत के निवासी नहीं हैं, किन्तु गवर्नमेण्ट। है

जब 'राज्य' (State) शब्द 'प्रजा' शब्द का पर्याय हो तो ऐसा कहने से कोई हानि नहीं है—विदेश की भूमि राज्य की है। परन्तु जिस दशा में कि 'राज्य' कहने से परदेशी लोगों का एक ऐसा छोटा सा समूह समझा जावे कि जो भूमि-कर की आमदनी में से लगभग एक तृतीयांश तो अपने नौकरों ही की तनख़्वाह में ख़र्च कर देता है, जिसका न तो यहाँ पर कोई स्थायी घर ही है और न जिन्हें देश की हानि-लाभ से ही कुछ काम है, तो देश की भूमि को राज्य की भूमि कहना कदापि उपयुक्त नहीं हो सकता। चिरस्थायी प्रबन्ध वाले ज़िलों के सिवा समग्र भारतवर्ष में हमने इसी सिद्धान्त के आधार पर सब प्रबन्ध किया है। इसी लिए किसान इतने ग़रीब हो गए हैं। ज़ोर के साथ इस सत्य-सिद्धान्त की दुहाई देकर थोड़े से परदेशी लोग, जो अपने को राज्य (State) कहते हैं, वास्तव में भूमि के स्वामी बन बैठे हैं। हमने तालुक़ेदार से लेकर किसान तक की जायदादों के स्वत्व छीन लिए हैं और गाँवों की, बस्तियों की पञ्चायतों के नियमों को उलट-पलट दिया है। उस एकॉनॉमिक आधार को, जिस पर देश भर की खेती करने वाली जातियों का पारस्परिक घनिष्ट सम्बन्ध जुटा हुआ था, हमने जड़ से उखाड़ डाला है और उसके स्थान पर एक बहुत ख़र्चीला और बनावटी नया ढङ्ग स्थापित कर दिया है।"

सर हेनरी कॉटन अन्यत्र लिखते हैं :—

"पुराने समय में जिन महापुरुषों के हाथों में इस देश का शासन था और जो वास्तव में हमसे अधिक बुद्धिमान् थे, वे देश-प्रबन्ध में बहुत सावधानी से हस्तक्षेप किया करते थे। ××× भूमि या भूमि-सम्बन्धी ऐसे क़ानून का जारी करना, जिसके लिए देश अभी प्रस्तुत नहीं है, इस बात को प्रमाणित करता है कि भारतवर्ष की वर्तमान अवस्था की आवश्यकताओं को ठीक-ठीक पहचानने की योग्यता हममें नहीं हैं।"

"टेनेन्सी, क़ानून के सम्बन्ध में सरकार डींग हाँकती है कि इससे किसान पहले की तरह दबे न रहेंगे और व्यक्तिगत लाभों पर ध्यान रहेगा।"

इस पर सर हेनरी कॉटन का कहना है :—

"यह किसी भी देश के लिए लाभ की बात नहीं है कि उसमें केवल ऐसे-ऐसे तुच्छ कृषक बसते हों कि जिनका कर उपज के साथ-साथ बढ़ता रहे, क्योंकि ऐसा करने से न तो वे भूमि की उन्नति के लिए उद्योग करेंगे और न खेती के बढ़ाने के लिए किसी प्रकार का उद्योग करेंगे।"

डॉक्टर बुकॉनन साहब ने लिखा है :—

"देशी लोगों का कथन है कि यद्यपि मुग़लों ने हमको ख़ूब निचोड़ा एवं दबाया; और यद्यपि उन्होंने सदा हमारे साथ बुरा व्यवहार किया, तथापि अङ्गरेज़ी राज्य की अपेक्षा तो हम मुग़लों के ही राज्य को उत्तम समझते हैं, क्योंकि मुग़लों के अत्याचार तो जैसे-तैसे सहे भी जाते थे, परन्तु अङ्गरेज़ी सरकार की यह नीति कि किसी के ज़िम्मे भूमि-कर का बक़ाया रह जाय तो उसकी भूमि सर्वथा बेच दी जाय, हमसे किसी तरह सहन नहीं होती। मुग़लों के समय में रिशवतें ख़ूब चलती थीं। पर फिर भी उस समय हमें जो कुछ देना पड़ता था, वह सब आजकल जो दिया जाता है, वास्तव में उसका आधा भी न था।"

किसानों की उन्नति की थोथी बकवादों से अब काम नहीं चल सकता। उन्हें तरह-तरह के खाद और यन्त्रों की योजना दिखाई जाती है, पर उनके पास इतना पैसा कहाँ है कि वे लकड़ी लेकर जलावें और गोबर बचाकर उसका खाद बनावें? कहाँ से वे क़ीमती कल-पुर्ज़े और औज़ार ख़रीदें? उद्योग-धन्धे नष्ट होने पर बेचारे किसानी पर झुके थे, किसानी पर यह गाज पड़ी—अब वे भाग-भागकर नैटाल, मॉरिशस और मिर्च के टापू में शर्तबन्धे कुली बनकर कुत्तों की तरह बे-मौत अपमान की मौत मर रहे हैं!! अकेले मद्रास से ही दो लाख आदमी भाग गए हैं!!!

आज सरकार हमें विश्वास दिलाती है कि हम किसानों को उन्नति का मार्ग बता रहे हैं। खेतों की सिंचाई को पानी की नहरें और बम्बे बना रहे हैं। नए-नए आविष्कार के हल चला रहे हैं। खेती अच्छी पैदा हो, ऐसे-ऐसे ढङ्ग किसानों को बता रहे हैं। पर यह सब व्यर्थ और थोथी बकवाद है। आज तक किसानों की एक भी उन्नति नहीं हो पाई है, और वे जिस अन्यायपूर्ण अत्याचार से मारे जा रहे हैं, वह सब पर प्रकट है और कोई सद्व्यक्ति उसे सह न सकेगा।

ढाका, करनाटक, तञ्जोर इत्यादि बड़े-बड़े समृद्धिशाली प्रदेश क्यों नष्ट-भ्रष्ट और ग़ारत हुए? केवल इस कर की बदौलत! तञ्जोर में मि० पैट्री सन् १७६८ में जब आप

थे तो वे लिखते हैं—"उस समय तञ्जोर भारत के उन्नतिशील प्रदेशों में से एक था। विदेशी तथा अन्तरीय व्यापार का केन्द्र था। यहाँ की वस्तुएँ अफ्रिका और दक्षिणी अमेरिका में पहुँचती थीं। तञ्जोर की उपमा इङ्गलैण्ड से देने में कोई अत्युक्ति न होगी। परन्तु १७७१ में अङ्गरेज़ों ने इस सोने की चिड़िया को फँसाने की चेष्टा की और १७७३ में इसे जीत लिया। इसके कुछ दिन बाद ही तञ्जोर उजड़ कर नष्ट-भ्रष्ट हो गया।"

मि० चेपलेन ने एक किसान का हाल बताया है। उसके पास १० एकड़ भूमि थी। और उसकी फ़सल १८०) रु० में बिकती थी :—

बैल इत्यादि का ख़र्च	२४॥)
मज़दूरी	१७)
बीज की क़ीमत	२०॥)
परिवार का भोजन-ख़र्च	२८)
वस्त्रादि	२२)
फुटकर	६)
योग ...	१२१)

अब १२१) ख़र्च करके उसके पास ५६) शेष बचते हैं, जिसमें से ६१) लगान देना है अर्थात् २) गाँठ से देने पड़ते हैं। इस दुर्दशा में ग़रीब किसान किस प्रकार पनप सकते हैं? यह बात तो कुछ गए-बीते दिनों की है, पर आजकल की जो लगान-विधि है, उससे हम किसी किसान को सुखी नहीं देख सकते। सरकार लाख प्रयत्न करेगी, तब भी वे न सँभल सकेंगे और न अब तक सँभल सके हैं!

अङ्गरेज़ कहते हैं कि हमने किसानों को ज़मींदारों के पञ्जों से छुड़ाकर मुक्त किया है और नए-नए यन्त्र खेती के लिए बना दिए हैं। पर यह सब धोखा है। भूमि-कर की नीति और उसके वसूल करने में जो कठोरता होती है, वह इतनी ज़हरीली है कि किसान की दुर्दशा हुए बिना नहीं रह सकती।

अन्त में यह सब बताकर हम पाठकों से आग्रह करेंगे कि वे इस जटिल प्रश्न को ख़ूब मनन करें। वे समझ लें कि सरकार के हथकण्डे—जो लॉर्ड क्लाइव ने फैलाने शुरू किए थे—कहाँ तक अपने शिकार को फँसाने में सफल हुए हैं। अङ्गरेज़ों की लगान-नीति दिन पर दिन बढ़ती रही है और बढ़ेगी। बारदोली ने जिस साहस से इसका दमन करने का बीड़ा उठाया है, वह वास्तव में तेजोमय कार्य है। प्रत्येक किसान को, ज़मींदार को, प्रजा को, और अन्त में राजाओं को इसमें योग देना चाहिए—देश भर में आग लग जाने का यह प्रश्न है। यदि एक सभ्य सम्राट् के शासन में उसकी प्रजा सुख, शान्ति, आनन्द और मौज में नहीं रह सकती, तो उसका ऐसे सम्राट् की प्रजा होना धिक्कारने योग्य है।

अब, जब तक देश मिलकर एक स्वर से सरकार को यह न जता दे कि तुम्हारी कर-सम्बन्धी माँग बड़ी ही अन्यायपूर्ण है और नग्न अत्याचार है, तब तक देश को चैन से बैठना नहीं चाहिए। प्रत्येक नेता को इसके लिए उत्सुक और अधीर होना चाहिए। इसी अधीरता की अग्नि में आहुति देने में हमें अपनी पूर्ण शक्ति लगा देनी चाहिए, जिससे सरकार की वह धींगा-धींगी इसमें जलकर ख़ाक हो जाय और प्रत्येक जगह का आदर्श उपस्थित हो तथा २३ करोड़ अभागे, किन्तु वीर, सीधे-सादे मनुष्य जी उठें! *

---

* यह लेख बहुत परिश्रम और खोज के साथ लिखा गया है। यदि कोई सम्पन्न सज्जन पुस्तकाकार इसकी लाख-पचास हज़ार कॉपियाँ छपाकर बिना मूल्य किसानों में बटवा सकें तो वास्तव में हमें बड़ी प्रसन्नता होगी।

सोहाग की साड़ी

[ले० श्री० विश्वम्भरनाथ जी शर्मा, कौशिक]

रात के आठ बज चुके हैं। एक साधारण मकान के एक कमरे में चारपाई पर एक नवयुवक सिर पर हाथ धरे बैठा है। उसके सामने ही भूमि पर बिछी हुई एक चटाई पर एक सुन्दर युवती सिर झुकाए बैठी है। युवती एक मामूली सफ़ेद धोती पहने है। उसके शरीर पर कोई अलङ्कार नहीं है—केवल पैरों में चाँदी की दो झाँझें और पैरों की एक-एक उँगली में एक-एक बिछुआ पड़ा हुआ है। हाथों में काँच की साधारण चूड़ियाँ हैं।

कुछ देर तक दोनों इसी प्रकार सिर झुकाए हुए बैठे रहे। हठात् युवक ने सिर उठाकर युवती की ओर देखा और बोला—क्या उपाय करें, कुछ समझ में नहीं आता? तुमने सब देख लिया है? कहीं सन्दूक़-वन्दूक़ में कोई चीज़ पड़ी रह गई हो?

युवती ने विषादपूर्ण मन्द मुस्कान के साथ कहा—कहीं कुछ नहीं है, मैंने सब देख लिया है। और मेरी तो सब गिनी हुई चीज़ें थीं। छः चीज़ें सोने की थीं और पाँच चाँदी की—कुल ग्यारह चीज़ें थीं। वह ग्यारहों बिक चुकी हैं। ख़ाली ये झाँझें और बिछुए रह गए। ये होंगे पन्द्रह-बीस रुपए के। बीस रुपए भर दोनों झाँझें हैं और चार रुपए भर दोनों बिछुए होंगे। इस प्रकार कुल चौबीस-पचीस भर चाँदी है। अगर बेची जाय तो कठिनता से पन्द्रह-सोलह की बिकेगी।

युवक—ख़ैर, पन्द्रह-सोलह ही क्या कम हैं? पन्द्रह-सोलह में तो महीना भर टल सकता है।

युवती—बिछुए तो मैं उतारूँगी नहीं, चाहे प्राण चले जायँ। हाँ, झाँझ ले सकते हो, यद्यपि झाँझ भी × × ×

इतना कह कर युवती रुक गई। उसका गला रुँध गया और आँखों में आँसू भर आए।

युवक 'हूँ' कहकर चुप हो रहा और विचार-सागर में मग्न हो गया। युवती भी आँखें पोंछकर उँगली से चटाई को खरोचने लगी।

युवक पुनः थोड़ी देर पश्चात् बोला—परन्तु आवश्यकता तो इस समय सौ रुपयों की है, बीस-पचीस से क्या भला होगा? सौ रुपए हों, तो महीने भर का खाने का गुज़र चल जाय और नौकरी भी लग जाय। यदि पन्द्रह-बीस में काम चलता तो मैं तुम्हारी झाँझें ले भी लेता, परन्तु जब काम नहीं चलेगा तब इन्हें लेकर तुम्हारा जी दुखाना व्यर्थ है! और कोई ऐसी चीज़ है नहीं, जो बेचकर सौ रुपए प्राप्त किए जा सकें।

युवती ने पुनः सिर उठाया और बोली—और कौन ऐसी चीज़ है? गहना तो सब चला ही गया।

"उसका मुझे कुछ अफ़सोस नहीं। तुम बिना गहने के भी उतनी ही सुन्दर दिखाई पड़ती हो, जितना कि पूर्णिमा का चन्द्रमा।"

कुछ क्षणों के लिए युवती के गालों पर लज्जा की हलकी लाली दौड़ गई। उसने किञ्चित मुस्करा कर कहा—हाँ, मन समझाने के लिए तो × × ×।

युवक बात काटकर बोला—मन समझाने की बात नहीं, सच्ची बात है—मेरे हृदय की बात है। मुझे गहना जाने का ज़रा भी अफ़सोस नहीं है। परन्तु यह समस्या कठिन आ पड़ी है।

कुछ क्षण के लिए पुनः दोनों उदासीनता के सागर में मग्न हो गए। हठात् युवती ने सिर उठाकर कहा—केवल एक चीज़ ऐसी है, जिससे सौ रुपए मिल सकते हैं।

युवक चौंक पड़ा। उसने उत्सुकता-भरे हुए स्वर में पूछा—है? कौन चीज़ है? लाओ—जल्दी निकालो।

"परन्तु वह मुझे प्राणों से भी अधिक प्यारी है।"

"लाओ, दिखाओ तो वह क्या है?"

युवती उठी और कोठरी में चली गई। थोड़ी देर में वह एक श्वेत कपड़े में लिपटी हुई एक वस्तु लाई। युवक ने पूछा—यह क्या है?

युवती ने कपड़ा खोलकर एक बनारसी साड़ी निकाली और उसे युवक के सम्मुख रखकर बोली—यह है।

युवक ने साड़ी को उलट-पलट कर देखा और बोला—बड़ी सुन्दर साड़ी है। कितने की होगी ?

"ढाई सौ में ख़रीदी गई थी।"

"तब तो सौ रुपए में अवश्य ही बिक जायगी।"—युवक ने प्रसन्न होकर कहा।

"परन्तु मैं इसे बेचूँगी नहीं।"

युवक ने म्लान-मुख होकर पूछा—क्यों ?

"यह मेरे सोहाग की साड़ी है।"—युवती ने गम्भीरता-पूर्वक कहा।

"ओह, इन भावुकता की बातों में क्या धरा है ? तुमने व्यर्थ ही इतना परेशान किया ! पहले से बता देती तो इतनी चिन्ता क्यों होती।"

"भावुकता नहीं। मैं इसे प्राण रहते कभी न निकालती, पर तुम्हें चिन्तित और दुखी देखकर मैंने इसे निकाला—यह समझ लो कि मैंने अपना कलेजा निकाल कर तुम्हें दिया है।"

"ओफ़ ओह ! एक साधारण साड़ी का इतना मान !"

"यह साड़ी साधारण नहीं है। इसका मूल्य समझने के लिए इसे मेरी आँखों से देखो तो पता चले।"

युवक हँसकर बोला—अच्छा ! अच्छा ! ईश्वर चाहेगा तो मैं तुम्हें इससे बढ़िया साड़ी ला दूँगा।

"मुझे यही साड़ी चाहिए—न बढ़िया न घटिया।"

"ख़ैर, इस समय तो मैं इसे बेचता हूँ, फिर देखा जायगा।"

"बेचने तो मैं दूँगी नहीं।"—युवती ने दृढ़तापूर्वक कहा।

"क्यों ? बिना बेचे काम कैसे चलेगा ?"

"ढाई सौ की साड़ी सौ रुपए में गिरवी भी रक्खी जा सकती है ?"

"अच्छा, तुम्हारा यह मतलब है ! तो यदि ऐसी बात है तो न बेचूँगा। मुझे चीज़ें बेचने का शौक़ तो है नहीं। गहना तो इसलिए बेच दिया कि गिरवी रखने में ब्याज की चपत मुफ़्त में पड़ती—ईश्वर देगा तो नया बन जायगा।"

"उस गहने की मुझे परवा नहीं, उनका तो बेचना ही ठीक था। पर यह साड़ी मत बेचना। यह साड़ी मैं नहीं जाने दूँगी।"

"अच्छी बात है, न बेचूँगा।"—यह कहकर युवक ने साड़ी को कपड़े में लपेटा और उठ खड़ा हुआ।

युवती ने युवक के कन्धे पर हाथ रखकर कहा—पहले मेरे सिर पर हाथ रखकर कहो कि बेचोगे नहीं।

युवक मुस्करा कर बोला—क्या तुम्हें विश्वास नहीं होता ?

"मुझे विश्वास है, पर तुम मेरा कहना करो।"

युवक ने युवती के सिर पर हाथ रखकर कहा—"अच्छा, नहीं बेचूँगा, बस !" यह कहकर युवक चल दिया।

घर से बाहर आकर वह द्रुतगति से एक ओर चला। थोड़ी देर में वह एक बड़े मकान के द्वार पर पहुँचा। द्वार पर एक आदमी बैठा तमाखू पी रहा था। उससे युवक ने पूछा—बाबू जी हैं ?

आदमी ने चिलम भूमि पर रखकर खड़े होते हुए कहा—हाँ, हैं ! नीचे बैठक में बैठे हैं ?

युवक भीतर चला गया। सामने ही बैठका था। बैठके में एक अर्द्धवयस्क पुरुष आराम-कुर्सी पर लेटे हुए समाचार-पत्र पढ़ रहे थे। युवक उनके सामने पड़ी हुई कुर्सी पर जाकर बैठ गया। उसकी आहट पाकर उन्होंने पत्र हटाकर युवक की ओर देखा। युवक को देखते ही उन्होंने पत्र अलग रख दिया और आँखों पर से ऐनक उतारते हुए बोले—कहो भाई बनवारीलाल, अच्छे तो हो ?

बनवारीलाल ने एक दीर्घ निश्वास छोड़कर कहा—हाँ, किसी न किसी प्रकार जीवित हूँ।

उन सज्जन ने पूछा—नौकरी लगी ?

"अभी तो नहीं, पर आशा है।"

"कहाँ ?"

"बैङ्क में एक पचास रुपए की जगह है।"

"तब तो अच्छा है।"

"हाँ, जब मिल जाय तब न—हेडक्लर्क साहब कुछ दक्षिणा चाहते हैं।"

"तो दे डालो। आजकल नौकरी मिलना बड़ा कठिन है।"

"यह तो मुझसे अधिक कदाचित् ही कोई जानता

हो। एक वर्ष चेष्टा करते हुए हो गया—पास-पल्ले जो कुछ था, सब बैठे-बैठे खा डाला, कुछ नौकरी के फेर में ख़र्च हो गया—और अभी ठिकाना नहीं है।"

वह सज्जन मुँह बनाकर बोले—बड़ा कठिन समय है।

बनवारीलाल ने कहा—इस समय आपसे कुछ सहायता चाहता हूँ। मुझे कुछ रुपए चाहिए। इसके लिए मैं यह वस्तु लाया हूँ, इसे देख लीजिए।

यह कह कर बनवारीलाल ने कपड़ा खोलकर साड़ी उनके सम्मुख रख दी। उन सज्जन ने पुनः ऐनक चढ़ाई और साड़ी को ध्यानपूर्वक देखा। देखकर बोले—कितने रुपए चाहिए?

बनवारीलाल ने कहा—मैं इसे गिरवी रखना चाहता हूँ। आप इस पर अधिक से अधिक कितने दे सकते हैं?

उन सज्जन ने पुनः साड़ी को देखा और कुछ क्षणों तक सोचकर बोले—अधिक से अधिक सौ रुपए।

बनवारीलाल ने कहा—ढाई सौ की ख़रीदी थी, कहीं कोई दाग़-धब्बा नहीं है—बिलकुल नई है।

"हाँ, यह ठीक है, पर इस समय कपड़े का भाव गिरा हुआ है।"

"कितना गिरा होगा?"

"ख़ैर, मैं आपको सौ रुपए दे सकता हूँ, इससे अधिक नहीं।"

"सवा सौ दीजिए!"

"सवा सौ! सवा सौ उस दशा में दे सकता हूँ, यदि आप इसे बेच डालिए।"

"ख़ैर, बेचूँगा तो मैं इसे हज़ार रुपए में भी नहीं।"

"अच्छा! ऐसी चीज़ है?"

"जी हाँ! आप सवा सौ दे दीजिए। मैं इसे अवश्य छुड़ा लूँगा, यह निश्चय जानिए।"

"तो ब्याज डेढ़ रुपया सैकड़ा लगेगा!"

"डेढ़ रुपया तो बहुत है—एक रुपया लीजिए!"

"इससे कम न होगा।"

"बीस आने लगा लीजिए।"

"ऊँहूँ!"

"अच्छा, तो डेढ़ ही सही, अपनी ग़रज़ है। जो आप माँगेंगे, देना पड़ेगा।"

वह सज्जन बोले—यह बात नहीं, यदि दूसरा डेढ़ ले तो मैं बीस ही आने ले लूँगा।

"मुझे दूसरे के पास जाना होता तो मैं आपके पास क्यों आता?"

उन सज्जन ने घर के अन्दर से सवा सौ रुपए लाकर दे दिए और आवश्यक लिखा-पढ़ी कर ली।

चलते समय बनवारीलाल ने कहा—इसे सुरक्षित रखिएगा, मैं अवसर मिलते ही इसे छुड़ा लूँगा।

"यदि आप ब्याज अदा करते रहिएगा तो सुरक्षित रहेगी, अन्यथा मैं बेच डालूँगा। डेढ़ सौ तक का भार इस पर हो सकता है, इससे अधिक नहीं। जिस दिन इस पर डेढ़ सौ हो जायँगे, उसी दिन बिक जायगी, इसे याद रखिएगा।"

"ईश्वर चाहेगा तो ऐसा नहीं होने पाएगा।" यह कहकर बनवारीलाल चल दिए!

(२)

उपर्युक्त घटना हुए छः मास व्यतीत हो गए। आजकल बनवारीलाल बैङ्क में नौकर हैं, पचास रुपए मासिक वेतन मिलता है। शाम का समय था। बनवारीलाल को आज ही छठे मास का वेतन मिला था। अपनी पत्नी को रुपए देते हुए उन्होंने कहा—लाओ, दो रुपए माधोलाल को ब्याज के दे आऊँ। पत्नी ने दो रुपए बनवारीलाल को दे दिए और बोली—इन छः महीनों में साठ रुपए तो जमा होगए, सत्तर रुपए और हो जायँ तो साड़ी छूट आवे।

बनवारीलाल ने कहा—छूट आवेगी, कौन जल्दी पड़ी है, उसके बिना कुछ काम अटका है?

"काम तो नहीं अटका है, पर छुड़ानी तो पड़ेगी ही।"—उनकी पत्नी ने किञ्चित् मुस्करा कर कहा।

बनवारीलाल ने इसका कोई उत्तर नहीं दिया और चल दिए।

माधोलाल ने उन्हें देखते ही कहा—आइए, अच्छे आए, मैं आपको बुलवाने ही वाला था।

बनवारीलाल ने उनके सामने ब्याज के रुपए रखते हुए कहा—कहिए, मैं तो स्वयम् हाज़िर हो गया।

"बात यह है कि आपकी साड़ी का एक गाहक लगा है। यदि आप कहें तो साड़ी बेच दी जाय—दाम अच्छे मिल रहे हैं।

"क्या दाम मिल रहे हैं?"—बनवारीलाल ने उत्सुक होकर पूछा।

"दो सौ रुपए !"

"दो सौ रुपए ? तब तो बेच देना ही ठीक है।"

"मेरी भी यही राय है। ७५) रुपए आपको अधिक मिल रहे हैं। इनमें पचीस रुपए मिलाकर सौ रुपए की एक साड़ी ले लीजिए—सौ रुपए में अच्छी साड़ी आ जायगी।"

"कहते तो आप ठीक हैं।"

"तो फिर क्या राय है—बेच दूँ ?"

"हाँ बेच दीजिए—परन्तु × × ×।"

बनवारीलाल को ध्यान आगया कि उन्होंने अपनी पत्नी के सिर पर हाथ रखकर शपथ की है कि साड़ी नहीं बेचेंगे।

माधोलाल ने पूछा—परन्तु क्या ?

"बात यह है कि मेरी पत्नी उसे बेचना नहीं चाहती।"—बनवारीलाल ने कुछ सकुचाते हुए कहा।

"क्यों ?"

"पता नहीं क्यों !"

"अजी, यह सब स्त्रियों के झगड़े हैं—स्त्रियाँ हानि-लाभ तो समझतीं नहीं, उन्हें तो अपने काम से काम है। यदि आप इसे नहीं छुड़ाएँगे तो घाटे में रहेंगे। अभी आप शायद छुड़ा न सकेंगे। साल दो साल पश्चात् छुड़ाएँगे तो काफ़ी ब्याज हो जायगा, अब छुड़ाइएगा तो सवा सौ घर से निकाल के देने पड़ेंगे। इस समय तो ७५) मिल रहे हैं और ब्याज से पिण्ड छुटा जा रहा है।"

बनवारीलाल ने सोचा—बात तो ठीक है। परन्तु शपथ ली है। उसका क्या होगा ?

एक प्रकार से शपथ का अब कोई प्रभाव नहीं रहा। उस समय बेचने की क़सम खाई थी, सो उस समय नहीं बेची। कुछ जन्म भर के लिए क़सम थोड़े ही खाई थी। इसी प्रकार कुछ देर तक बैठे बनवारीलाल विचार करते रहे।

मधोलाल ने मुस्करा कर कहा—कहिए, क्या सोच-विचार है, पत्नी के भय के मारे साहस नहीं होता—क्यों ?

बनवारीलाल शरमा गए। उन्होंने कहा—नहीं, साहस क्यों नहीं पड़ता, यही सोच रहा था कि कहीं उसे दुख न हो।

"दुख की कौन सी बात है ? उसे तो साड़ी ही चाहिए। मैं सौ रुपए की ऐसी साड़ी दे सकता हूँ, जो देखने में उससे अच्छी जँचे।"

"उससे अच्छी न हो, परन्तु यदि वैसी ही हो तो और भी अच्छा !"

"वैसी ही कैसे हो सकती है—रङ्ग वैसा हो सकता है, पर काम वैसा नहीं होगा।"

बनवारीलाल ने पुनः सोचा—ठीक तो है, इसे बेच-कर सौ रुपए की हलकी साड़ी ले लें, उसका मन भी रह जायगा और अपना काम निकल जायगा। ढाई सौ की साड़ी व्यर्थ है। उसके साथ के लिए कुछ गहना-ज़ेवर भी तो होना चाहिए, ख़ाली साड़ी पहनने से तो वह माँगे की जँचेगी। सबसे पहले तो कुछ गहना बनवाना चाहिए—साड़ी इतनी आवश्यक नहीं है, जितना कि गहना।

माधोलाल नैराश्यपूर्ण स्वर में बोले—यदि आपकी इच्छा नहीं है, तो मत बेचिए। मेरा उसमें कोई लाभ नहीं है। मैंने तो केवल आपकी शुभ-कामना करते हुए यह इसलिए कहा कि जिसमें आपको व्यर्थ ब्याज की चोट न सहनी पड़े।

बनवारीलाल कुछ सिटपिटा कर बोले—आपका विचार उत्तम है और उसके लिए मैं आपका कृतज्ञ हूँ। आप उसे बेच डालिए। मैंने तय कर लिया।

"बेच डालूँ ?"—माधोलाल ने निश्चय करने के लिए पूछा।

"हाँ, बेच डालिए।"

"अच्छी बात है। आज मैं उसे बेच दूँगा। कल आप शाम को आकर रुपए ले जाइएगा।"

"बहुत अच्छा !"—कहकर बनवारीलाल उनसे विदा हुए।

(३)

दूसरे दिन शाम को बनवारीलाल माधोलाल के यहाँ पहुँचे। उन्होंने उन्हें देखते ही ७५) रु० उनके हवाले कर दिए और बोले—सवा सौ मैंने अपने काट लिए—ब्याज इस महीने का आप दे ही गए थे। इस प्रकार ७५) बचे।

बनवारीलाल रुपए लेकर घर की ओर चले।

रास्ते में वह सोचते जा रहे थे—७५) रु० ये हैं, ६०) घर में धरे हैं। इस प्रकार कुल १३५) रु० होगए।

इसका कोई गहना बनवा देंगे ! साड़ी ससुरी में क्या धरा था; परन्तु घर में इन रुपयों की बाबत क्या कहेंगे। उँह ! इसकी क्या चिन्ता है—इसके लिए बीस बहाने हो सकते हैं। कह देंगे, एक का कुछ काम कर दिया था, उसने दिए।

यही सब सोचते-विचारते बनवारीलाल घर पहुँचे। कपड़े-वपड़े उतार कर ज़रा दम लेने के पश्चात् उन्होंने जेब से रुपए निकालकर पत्नी को दिए। उसने पूछा—यह कहाँ मिले ?

बनवारीलाल ने कहा—आज बैङ्क में एक सेठ रुपए जमा करने आया था। उसका एक हज़ार रुपए का नोट गिर गया। उसने बहुत ढूँढ़ा, पर न मिला। अन्त में जब वह निराश हो गया था तो भाग्य से मुझे मिल गया। मैंने उसे दे दिया। उसने प्रसन्न होकर इनाम के तौर पर ये रुपए दिए।

यह सुनकर उनकी पत्नी बहुत प्रसन्न हुई। उसने कहा—तो अब साड़ी छूट आवेगी। कल मैं सवा सौ दे दूँगी, साड़ी छुड़ा लाना।

बनवारीलाल अप्रसन्न होकर बोले—न जाने उस साड़ी में कौन लाल टँके हैं, जो उसकी रट लगा रक्खी है। रुपए आए हैं, धरे रहने दो—न जाने किस समय कैसा काम आ पड़े। साड़ी कौन काम आवेगी ? यदि रुपयों का कुछ उपयोग ही करना है, तो कोई गहना बनवा लो।

पत्नी गम्भीर होकर बोली—उस साड़ी की क़दर तुम नहीं जान सकते, उसकी क़दर मैं जानती हूँ। वह वह साड़ी है, जिसे मेरे पिता मेरे लिए बड़े चाव से लाए थे। वह वह साड़ी है, जो मैंने केवल एक बार उस समय पहनी थी जब मेरा विवाह हुआ था। इसलिए मेरे लिए उस साड़ी से बढ़कर दूसरा कपड़ा नहीं हो सकता, वह चाहे जितना मूल्यवान् हो। ख़ैर, यदि इस समय नहीं तो दो-तीन महीने बाद उसे छुड़ाना—पर छुड़ाना अवश्य पड़ेगा। वह साड़ी बड़ी भाग्यवान् है। उसी की बदौलत आज हम-तुम निश्चिन्तापूर्वक बैठे रोटी खा रहे हैं—वह न होती तो यह नौकरी मिलती ?

बनवारीलाल मुँह बनाकर बोले—बस, रहने दो। तुम तो उस ससुरी को बिलकुल देवी-देवता बनाए दे रही हो। छिः छिः, साड़ी न होती तो नौकरी न लगती; क्या कही है ? साड़ी न होती गहना होता, तब भी नौकरी लग जाती। आवश्यकता तो रुपयों की थी—जिस वस्तु से रुपए प्राप्त हो जाते वही यथेष्ट थी। यह कहना कि साड़ी की बदौलत नौकरी लगी, एक महा पोच और लचर बात है।

"उस समय तो साड़ी ही ने सहायता की थी। साड़ी न होती तो क्या करते ?"

"कुछ न कुछ प्रबन्ध तो होता ही, साड़ी न होती तब भी काम निकालना ही पड़ता। साड़ी की बदौलत इतना हुआ कि अधिक परेशानी नहीं उठानी पड़ी—बस !"

"उस समय तो कहीं ठिकाना नहीं था।"

"वह सब हो जाता। संसार में किसी का काम नहीं रुका करता।"

"उस समय तुम्हारे मुख पर जितनी निराशा और घबराहट थी, उसे देखकर तो यही प्रतीत होता था कि इस समय कहीं ठिकाना नहीं है।"

"ऐसा ठिकाना नहीं था, जहाँ से सरलतापूर्वक मिल जाता, यही घबराहट और चिन्ता थी। चेष्टा और प्रयत्न करते तो मिलता—मिलता कैसे न ?"

"ख़ैर, इस समय अब तुम चाहे जो कह लो, पर उस समय अवस्था बहुत बुरी थी—उस समय साड़ी ही ने सहायता की थी।"

बनवारीलाल हँसकर बोले—तुम्हारा बस चले तो तुम उस साड़ी के लिए एक मन्दिर बनवा दो।

"मेरा हृदय ही उसका मन्दिर है। मेरा हृदय उसे प्यार करता है। उसे ईंट-पत्थर के मन्दिर की क्या आवश्यकता है। फिर वह कुछ ईश्वर थोड़े ही है, जो मन्दिर बने। मन्दिर ईश्वर और देवता के लिए बनते हैं—साड़ियों के लिए नहीं।"

बनवारीलाल ने कहा—ख़ैर, यह सन्तोष की बात है कि तुम उसे ईश्वर नहीं मानतीं।

"नहीं, ऐसा कैसे हो सकता है। परन्तु मैं उसे इतना अवश्य मानती हूँ कि वह हमारे ही पास रहे। जब तक वह हमारी है, तब तक हमारा कुछ अनिष्ट नहीं हो सकता। परन्तु जब वह हमारे पास से निकल जायगी, तब के लिए मैं नहीं कह सकती कि क्या होगा।"

"क्या होगा ?"—बनवारीलाल ने व्यङ्ग से पूछा।

"यह मैं नहीं बता सकती कि क्या होगा, पर उसका

चला जाना हमारे लिए अशुभ अवश्य होगा—यह मैं ज़ोर देकर कह सकती हूँ।"

बनवारीलाल का कलेजा धक् से हुआ। आज ही तो वह साड़ी चली गई। आज तक वह हमारी थी; पर इस समय वह हमारी नहीं रही। यह विचार उनके मन में अपने आप उठा। कुछ देर तक बनवारीलाल मौन तथा गम्भीर बैठे रहे।

पत्नी ने पूछा—क्या सोच रहे हो?

"तुम्हारी रहस्यपूर्ण बातों पर विचार कर रहा हूँ। मुझे तो ऐसी बातों पर विश्वास नहीं। किसी एक विशेष चीज़ के पास न होने से अनिष्ट हो सकता है, इसे मैं नहीं मानता। और मुझी पर क्या—कोई समझदार आदमी नहीं मानेगा।"

"न माने, मुझे इसकी आवश्यकता नहीं कि कोई माने या न माने। मैं तो केवल अपने मन की बात तुमसे कह रही हूँ। तुम नहीं मानते तो न मानो—मैं यह कब कहती हूँ कि मानो।"

बनवारीलाल चुप हो रहे—कुछ उत्तर न दिया।

(४)

"आज लाला माधोलाल के यहाँ से बुलावा आया है।"—बनवारीलाल की पत्नी ने उनसे कहा।

"तो फिर?"

"जाना पड़ेगा।"

"आज क्या है उनके यहाँ?"

"उनकी लड़की के लड़का हुआ था। उसी की बरही है।"

"चली जाना।"

बनवारीलाल ऑफ़िस चले गए। वहाँ से यह समझकर कि अभी शायद उनकी पत्नी माधोलाल के यहाँ से न लौटी हो, वह बैङ्क के एक व्यक्ति के साथ, जो उनका सहकारी था और जिससे उनकी घनिष्ट मित्रता हो गई थी, चले गए। वहाँ उन्हें रात के आठ बज गए। आठ बजे जब वह घर लौटे तो देखा कि पत्नी चारपाई पर ओढ़े-लपेटे पड़ी है।

बनवारीलाल ने रज़ाई उठाकर पूछा—क्यों, पड़ी कैसी हो?

"जी अच्छा नहीं है।"—पत्नी ने कराहते हुए कहा।

बनवारीलाल ने पत्नी के माथे पर हाथ धरा तो उन्हें पता लगा कि पत्नी को ज्वर है।

बनवारीलाल ने कहा—बुख़ार है। नाहक़ वहाँ गईं।

पत्नी ने पति का वाक्य सुनकर कहा—हाँ, नाहक़ गई, न जाती तो अच्छा था।

"और क्या—वहाँ गईं, थकावट आगई, इसी से बुख़ार चढ़ आया। ख़ैर, अब तुम चुपचाप पड़ी रहो।"

"तुम्हारे लिए खाने-पीने का × × ×।"

बनवारीलाल बोल उठे—इसकी चिन्ता मत करो, मैं घनश्यामदास के यहाँ खा-पी आया हूँ। बैङ्क से उन्हीं के यहाँ चला गया था—मैंने सोचा, शायद तुम अभी न लौटी हो। घनश्यामदास न माने—खाना खिलाकर ही छोड़ा। तुम निश्चिन्त पड़ी रहो।

* * *

बनवारीलाल की पत्नी को चारपाई पर पड़े आज दसवाँ दिन है। बनवारीलाल ने बैङ्क से छुट्टी ले ली है। वे ही उसकी सेवा-शुश्रूषा करते रहते हैं। वैद्य की चिकित्सा होती है।

दसवें दिन उनकी पत्नी ने उनसे कहा—अब मेरे बचने की आशा मत करो। मैं अब बचूँगी नहीं। मेरा अन्त समय आ गया है।

बनवारीलाल व्याकुल होकर बोले—ऐसी बातें मत करो। तुम अच्छी हो जाओगी।

पत्नी ने सिर हिलाया और बोली—अब नहीं अच्छी होऊँगी—अब तो चल-चलावो है। मैं क्यों मर रही हूँ, तुम जानते हो?

"कौन कहता है तुम × × ×।" बनवारीलाल का कण्ठ भर आया और नेत्रों में आँसू छलछला आए। वह आगे कुछ न कह सके।

पत्नी ने कहा—मैं इसलिए मर रही हूँ कि मेरी साड़ी चली गई।

बनवारीलाल का कलेजा धड़कने लगा और चेहरा फ़क़ हो गया। उन्होंने तुरन्त अपने को सँभालकर कहा—चली कहाँ गई?

"मुझे सब मालूम हो गया है, अब कपट करने की आवश्यकता नहीं। जिस दिन मैं माधोलाल के यहाँ गई थी, उस दिन मुझे यह बात मालूम हुई। मैंने

माधोलाल की लड़की को वह साड़ी पहने देखा। मैंने समझा, इनके यहाँ गिरों रक्खी ही है, पहन ली होगी। मैंने हँसी में उससे पूछा—यह साड़ी तो बड़ी अच्छी है, कितने की मँगाई है ?

इस पर लड़की ने कहा—'यह हमारे यहाँ गिरों रक्खी थी। मुझे यह पसन्द आ गई। मैंने बाबू जी से कहकर इसे ख़रीद लिया।' मैंने उससे पूछा—'कितने दिन हुए ख़रीदी ?' उसने कहा—'बीस दिन हुए।' फिर मैंने दाम पूछे तो उसने दो सौ बताए। मैंने समझ लिया। बीस दिन हुए तुमने ७५) रु० लाकर मुझे दिए थे। सवा सौ पर साड़ी गिरवी रक्खी थी—सवा सौ और पछत्तर दो सौ होते हैं। बस उसी समय से मेरा चित्त बिगड़ना आरम्भ हुआ। मैं नहीं जानती कि मैं शाम तक उनके यहाँ कैसे रही और घर कैसे आई। बुख़ार मुझे वहीं चढ़ आया था। यदि वह अपने यहाँ की दासी के साथ मुझे सवारी पर न भेजते, तो मैं अपने पैरों घर नहीं आ सकती थी।

बनवारीलाल को तो जैसे काठ मार गया। वह चुपचाप सिर झुकाए मूर्ति की भाँति बैठे रहे।

पत्नी ने पुनः कहना आरम्भ किया—तुमने मुझसे छल किया, यह अच्छा नहीं किया। तुमने मेरे सिर पर हाथ रखकर उसे न बेचने की क़सम खाई थी; परन्तु फिर भी तुमने उसे बेच दिया।

"जिस समय मैंने क़सम खाई थी, उस समय तो नहीं बेचा था।" बनवारीलाल ने भर्राई हुई आवाज़ से यह बात कही, परन्तु वह पत्नी से आँखें नहीं मिला सके।

"जब तुमने क़सम खाई थी तो उसके मैंने जो अर्थ समझे थे वह यह थे कि कभी नहीं बेचोगे।"

"परन्तु मैंने जो अर्थ लगाए वह यह थे कि उस समय नहीं बेचूँगा—उस समय मैंने नहीं बेची।"

"जो चीज़ बेची जा सकती है वह हर समय बेची जा सकती है, और जो नहीं बेची जा सकती वह किसी समय भी नहीं बेची जा सकती।"

"हाँ, यह ठीक है; परन्तु × × ×।"

"परन्तु-वरन्तु कुछ नहीं, तुमने बहुत बुरा किया। मैं उस साड़ी को इतना प्यार करती थी—यह जानते हुए भी तुमने उसे बेच डाला। यदि तुम मुझे प्यार करते होते तो उसे कभी न बेचते—केवल इसीलिए न बेचते कि मैं उसे प्यार करती हूँ। इससे प्रकट है कि तुम मुझे प्यार नहीं करते। दूसरी बात यह है कि तुमने मुझे भुलावे में डालकर उसे बेचा—मुझसे छल किया। यदि मुझसे कहकर और ज़िद करके बेच देते, तब भी मुझे इतना दुख न होता।"

बनवारीलाल अत्यन्त अधीर होकर बोले—यह तुम क्या कह रही हो। मैं तुम्हें जितना प्यार करता हूँ उतना ईश्वर जानता है; पर मैं उस साड़ी को व्यर्थ समझता था, इसलिए मैंने उसे बेच डाला।

"मेरे इतना कहने-सुनने पर भी तुम उसे व्यर्थ समझते रहे—मेरी प्यारी चीज़ को व्यर्थ समझे—यह क्या कुछ कम दुख की बात है ?"

"यदि ऐसी बात है तो मुझे अपने कार्य पर हार्दिक पश्चात्ताप है और मैं तुमसे उसके लिए क्षमा चाहता हूँ।"

यह कहकर बनवारीलाल ने अश्रु बहाते हुए पत्नी के वक्षस्थल पर अपना सिर रख दिया।

पत्नी ने उनके सिर पर हाथ फेरते हुए कहा—मैंने कहा था कि साड़ी चली जाने पर कुछ अनिष्ट होगा। वही हुआ। पर इतना सन्तोष है कि मेरी ही जान पर बीती, तुम पर कुछ आँच न आई। यह बड़ी ही ख़ुशी की बात है। मुझे यही भय था कि कहीं ईश्वर न करे तुम्हें कुछ × × × ख़ैर मुझे अपने मरने का कुछ भी दुख नहीं।

"यह तुम क्या कहती हो, मेरा अनिष्ट नहीं हुआ ? यह तो सोलहो आने मेरा ही अनिष्ट हो रहा है। मेरा सर्वनाश हुआ जा रहा है, इससे अधिक अनिष्ट और क्या होगा।" बनवारीलाल ने पत्नी के वक्षस्थल पर से सिर उठाकर यह वाक्य कहा और रोते हुए पुनः वहीं सिर रख दिया।

"ख़ैर, जो होना था हो गया। अब तुम इतना व्याकुल क्यों होते हो ?" पत्नी ने अत्यन्त प्रेम से कहा।

"तुमने मुझे क्षमा कर दिया या नहीं ?"

"तुम्हें तो मैं आरम्भ से ही क्षमा किए हुए थी, मैंने तुम्हें अक्षम्य कभी समझा ही नहीं।"

हठात् बनवारीलाल सिर उठाकर आँसू पोंछते हुए बोले—तो मैं भी तुमसे वादा करता हूँ कि इसी समय जैसे बनता है, जाकर साड़ी लाता हूँ।

यह कहकर वह उठे। उनकी पत्नी बोली—अब कहीं मत जाओ, मेरा चित्त घबरा रहा है—मेरे ही पास बैठे रहो।

"मैं अभी आता और साड़ी लेकर आता हूँ।"

यह कहकर उन्होंने—कुछ दूर पर बैठी हुई एक स्त्री से, जिसे उन्होंने पत्नी की सेवा के लिए रख लिया था, कहा—तुम इनके पास आकर बैठो, मैं अभी आता हूँ।

* * *

बनवारीलाल माधोलाल के पास पहुँचे और बोले—बाबू जी, वह साड़ी आप लौटा दीजिए।

"कौन साड़ी?" माधोलाल ने आश्चर्य से पूछा।"

"वही, जो आपके यहाँ गिरों थी और जिसे आपने बहाना करके अपनी लड़की के लिए ख़रीद लिया था।"

बनवारीलाल ने आवेश से उत्तर दिया—ख़रीद लिया तो दाम भी तो दिए थे।

"हाँ दिए थे; पर मैं साड़ी बेचना नहीं चाहता था, आपने मुझे प्रलोभन में डालकर उसे ले लिया। उसकी बदौलत आज मेरी पत्नी मृत्यु-शय्या पर पड़ी है। परन्तु इस अन्त समय में मैं उसे उसकी प्यारी वस्तु से वञ्चित नहीं रखना चाहता। लीजिए, यह आपके ७५) रु० रक्खे हैं, साड़ी आप ला दीजिए।

"बिकी हुई चीज़ कैसे लौटाई जा सकती है?"

"लौटाई जा सकती है और आपको लौटानी पड़ेगी।" बनवारीलाल ने कर्कश स्वर में कहा।

"क्यों?"

"इसलिए कि आपने मुझे धोखा देकर इसे ख़रीदा।"

"जब आपको दाम दिए तब उसमें धोखा काहे का?"

बनवारीलाल ने कहा—आप यह बताइए, साड़ी दीजिएगा या नहीं? स्त्री मर ही रही है—मेरी आँखों में संसार शून्य है। यदि आप साड़ी न देंगे तो मैं भी यहीं प्राण त्याग दूँगा।

माधोलाल बनवारीलाल की रक्तवर्ण आँखें और विक्षिप्तों की सी दशा देखकर घबरा गए। उन्होंने सोचा—ऐसा न हो यह व्यक्ति जान पर खेलकर हमारा कुछ अनिष्ट कर बैठे—इस समय अपने होश में नहीं है। अतएव वह बोले—यदि यह बात है तो साड़ी मैं लाए देता हूँ। प्राण क्यों देते हो? इतनी छोटी सी बात के लिए मैं तुम्हारे प्राण नहीं लेना चाहता।

* * *

"लो, साड़ी ले आया।"

यह कहते हुए बनवारीलाल घर में प्रविष्ट हुए। उनकी पत्नी के पास बैठी हुई स्त्री ने रोककर कहा—किससे कहते हो? वह तो चली गईं।

बनवारीलाल के मुख से निकला—हैं! वह शीघ्रता-पूर्वक शय्या के पास पहुँचे और कपड़ा हटाकर देखा—पत्नी के प्राण-पखेरू उड़ चुके थे। उन्होंने कुछ क्षण तक स्थिर दृष्टि से पत्नी का मुख देखा। इसके पश्चात् उन्होंने साड़ी को खोला और पत्नी के ऊपर ओढ़ा दिया और उसके वक्षस्थल पर मुँह रखकर बालकों की भाँति फूट-फूटकर रोने लगे।

पञ्च-भूत

[रचयिता—श्री० कालीप्रसाद जी भटनागर 'विरही']

रोदन, आहें, चाहें, पीड़ा, व्याकुलता, यह हैं आधार!
इनसे ही है रचा हुआ बस, विरही का सारा संसार!!
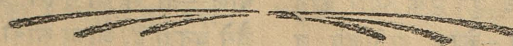
भारत में अङ्गरेज़ी राज्य

[ले० महात्मा सुन्दरलाल जी, भूतपूर्व सम्पादक 'कर्मयोगी' और 'भविष्य']

मीर क़ासिम

बङ्गाल की अवस्था
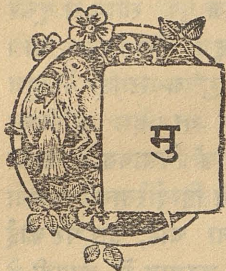
मुर्शिदाबाद के दरबार तथा बङ्गाल की प्रजा दोनों की अवस्था मीर क़ासिम के मसनद पर बैठते ही और अधिक शोचनीय होती गई। सब से पहले मीर क़ासिम ने देखा कि राज्य की आर्थिक अवस्था अत्यन्त बिगड़ी हुई थी। सरकारी मालगुज़ारी ठीक तौर पर वसूल न हो रही थी। ख़ज़ाना क़रीब-क़रीब ख़ाली था। सालाना ख़र्च आमद से बढ़ गया था और फ़ौज की कई महीने की तनख़ाहें चढ़ी हुई थीं। इसके अतिरिक्त ठीक मीर जाफ़र के समान मीर क़ासिम ने अब महसूस किया कि जो बड़े-बड़े वादे उसने अङ्गरेज़ों के साथ कर रक्खे थे, उन्हें पूरा करना इतना आसान न था। इन वादों तथा अन्य नई-नई माँगों को पूरा करने के लिए मीर क़ासिम ने अपने यहाँ के ज़मींदारों और रईसों को अङ्गरेज़ों ही के सिपाहियों की मारफ़त बुला-बुला कर ज़बरदस्ती उनसे रक़में वसूल करनी शुरू कीं। जब इससे भी काम न चल सका तो उसे जगत सेठ से क़र्ज़ लेना पड़ा और अन्त में अङ्गरेज़ों को रक़में देने के लिए रियासत के जवाहरात बेच कर और महल के सोने-चाँदी के बरतन गलवा कर सिक्के ढलवाने पड़े।

कम्पनी की टकसाल कलकत्ते में क़ायम हो चुकी थी। तथापि बावजूद मीरक़ासिम की कड़ी आज्ञाओं के, जगह-जगह प्रजा ने कलकत्ते के सिक्कों को बिना बट्टे के लेने से इन्कार किया। इस पर अङ्गरेज़ों ने उससे यह प्रार्थना की कि जो सिक्के हम कलकत्ते में ढालें उन पर भी हमें मुर्शिदाबाद का नाम और मुर्शिदाबाद ही की छाप रखने की इजाज़त दी जावे। मीर क़ासिम ने इस जाली कार-रवाई को तो मन्ज़ूर न किया, किन्तु उसने अङ्गरेज़ों को सन्तुष्ट करने के लिए कलकत्ते के सिक्कों को लेने से इन्कार करने वाले या उन पर बट्टा माँगने वाले ज़मींदारों और अन्य लोगों को कड़ी सज़ाएँ देना शुरू कर दिया। इन सख़्तियों के कारण अनेक ज़मींदार मीर क़ासिम से असन्तुष्ट हो गए, यहाँ तक कि कई जगह नए नवाब के विरुद्ध विद्रोह की तैयारियाँ होने लगीं।

कुछ वर्ष पहले कम्पनी का क़र्ज़ा चुकाने के लिए मीर जाफ़र ने बर्दमान के इलाक़े की मालगुज़ारी कम्पनी के नाम कर दी थी। उस समय से ही बर्दमान का इलाक़ा अङ्गरेज़ों के इन्तज़ाम में आ गया था और कम्पनी के सिपाहियों ने, जिनमें अधिकांश देशी सिपाही मद्रास से लाए गए थे, उस इलाक़े भर में लूट-मार जारी कर रक्खी थी। इन तिलङ्गे सिपाहियों के अत्याचारों की शिकायत करते हुए सितम्बर, सन् १७६० में बर्दमान के ज़मींदार राजा तिलकचन्द ने कलकत्ते की अङ्गरेज़-कमेटी को लिखा—

"अनेक तिलङ्गों ने मण्डलघाट, मानकर, जहानाबाद चितवर, बरसात, बलगुरी और चोमहन के परगनों तथा अन्य स्थानों में घुसकर वहाँ के बाशिन्दों को लूट लिया है और उनके साथ इस तरह के अत्याचार किए हैं जिनसे लोगों की जान तक ख़तरे में पड़ गई है। इन अत्याचारों से मजबूर होकर वहाँ के बाशिन्दे भाग गए और उन मौज़ों में लगभग दो या तीन लाख रुपए का नुक़सान हुआ है।"*

तथापि इन तिलङ्गों की लूट-मार जारी रही और राजा तिलकचन्द को कुछ समय बाद फिर लिखना पड़ा—

"तिलङ्गों के व्यवहार से रय्यत को ज़बरदस्त कष्ट हो रहा है और मजबूर होकर रय्यत अपने घर-बार छोड़-छोड़ कर भाग रही है।"*

* Long's *Records* p. 236

किन्तु कम्पनी ने इन शिकायतों की ओर कुछ भी ध्यान न दिया। लिखा है कि बर्धमान के कई परगने इस समय वीरान पड़े हुए थे।

अब मीर क़ासिम ने यह तमाम इलाक़ा हमेशा के लिए कम्पनी को दे दिया और वहाँ के ज़मींदार को अङ्गरेज़ों के अधीन कर दिया। जब यह नया परवाना राजा तिलकचन्द के पास पहुँचा तो उसे दुख होना स्वाभाविक था। उसने गवरनर वन्सीटार्ट को अपनी ज़मींदारी की शोचनीय अवस्था की फिर से सूचना दी और अपने यहाँ की मालगुज़ारी का सब हिसाब भेज दिया।

वन्सीटार्ट ने किसी तरह उसकी सहायता न की। और न कम्पनी के सिपाहियों के अत्याचार बन्द हुए। मजबूर होकर, कहा-जाता है, राजा तिलकचन्द ने बीरभूम के राजा के साथ मिलकर अङ्गरेज़ों और मीर क़ासिम दोनों के विरुद्ध लड़ने के लिए सेना जमा करनी शुरू की। इस पर कलकत्ते की काउन्सिल ने बर्धमान और मेदिनीपुर के इलाक़ों पर क़ब्ज़ा करने के उद्देश से कप्तान ह्वाइट के अधीन कुछ सेना बर्धमान भेजी। राजा तिलकचन्द के एक पत्र से मालूम होता है कि इस सेना ने भी मार्ग भर में असहाय ग्राम-वासियों पर तरह-तरह के ज़ुल्म किए, उन्हें ख़ूब लूटा और ख़ून बहाया।

२८ दिसम्बर, सन् १७६० को कप्तान ह्वाइट की सेना और बर्धमान के राजा की सेना में लड़ाई हुई, जिसमें राजा की सेना हार गई। अङ्गरेज़ी सेना का एक हिस्सा बीरभूम की राजधानी नागौर पर क़ब्ज़ा करने के लिए भेज दिया गया। वहाँ का राजा अपनी राजधानी छोड़कर पहाड़ों की ओर भाग गया और बर्धमान तथा नागौर दोनों पर कम्पनी का क़ब्ज़ा हो गया।

आए दिन के राज्य-परिवर्त्तन के कारण बङ्गाल के शासन की अवस्था अत्यन्त अस्त-व्यस्त हो रही थी कम्पनी की व्यापार-सम्बन्धी ज़बरदस्तियाँ बङ्गाल भर में ज़ोरों के साथ बढ़ रही थीं। अङ्गरेज़ों ने जो लगभग तीस हज़ार नई सेना मीर क़ासिम और सम्राट् की सहायता के लिए और साम्राज्य की रक्षा के लिए कहकर जमा कर रक्खी थी और जिसके ख़र्च के लिए मीर क़ासिम से तीन बड़े-बड़े ज़िले लिए गए थे, वह सब अब सूबे भर में इन ज़बरदस्तियों को जारी रखने के लिए काम में लाई जा रही थी।

प्राचीन भारतीय नरेशों के अधीन राज्य की आमदनी का एक बहुत बड़ा ज़रिया तिजारती माल का महसूल था। विशेषकर मुग़ल-सम्राटों के अधीन ईरान, अरब, मिश्र, इतालिया, स्पेन, पुर्तगाल, इङ्गलिस्तान, बर्मा, चीन, जापान इत्यादि अनेक बाहर के मुल्कों के साथ और स्वयं भारत के अन्दर तिजारत बेहद बढ़ी हुई थी, जिसमें हज़ारों भारतीय जहाज़ हर साल लगे रहते थे और हर व्यापारी को अपना माल एक स्थान से दूसरे स्थान ले जाने में सरकारी महसूल देना पड़ता था। केवल ईस्ट इण्डिया कम्पनी को मुग़ल-सम्राट् ने ख़ुश होकर यह महसूल माफ़ कर दिया था। इस माफ़ी का मतलब यह था कि कम्पनी जो माल विलायत से लाकर हिन्दोस्तान में बेचना चाहे या जो हिन्दोस्तान का बना माल ख़रीद कर विलायत ले जाना चाहे, उस पर कोई महसूल न लिया जावे। शाही फ़रमान में कम्पनी के मुलाज़िमों अथवा अन्य अङ्गरेज़ों को निजी तौर पर बिना सरकारी महसूल दिए तिजारत करने की इजाज़त कहीं न थी, और न कम्पनी को ही देश के भीतर की मामूली तिजारत में बिना महसूल दिए हिस्सा लेने का अधिकार दिया गया था। इतना ही नहीं, नमक, छालिया, तम्बाकू, इमारती लकड़ी, सूखी मछली इत्यादि बहुत सी चीज़ों में आरम्भ से ही बङ्गाल भर के अन्दर यूरोप-निवासियों को तिजारत करने की सख़्त मनाही थी।

सब से पहले मीर जाफ़र के समय में अङ्गरेज़ों ने ज़बरदस्ती इस नियम को तोड़ा और नमक इत्यादि की तिजारत शुरू कर दी, जिसका ज़िक्र ऊपर किया जा चुका है। मीर जाफ़र ने बहुतेरा ऐतराज़ किया, किन्तु उसकी एक न चल सकी। अङ्गरेज़ों का यह तमाम व्यापार शाही फ़रमान से बाहर और उसके विरुद्ध था। किन्तु मालूम होता है कि कुछ दिनों तक अङ्गरेज़-व्यापारी अपनी इस नाजायज़ शख़्सी और मुल्क की भीतरी तिजारत पर महसूल उसी तरह अदा करते रहे, जिस तरह तमाम देशी व्यापारी करते थे।

अब मीर क़ासिम को नवाब बनाने के बाद कम्पनी के मुलाज़िम तथा अन्य अङ्गरेज़ कम्पनी का पास (दस्तक) लेकर बिना किसी तरह का महसूल दिए देश भर में हर चीज़ का व्यापार करने लगे। और जब नवाब के कर्मचारी ऐतराज़ करते थे वा महसूल माँगते थे

तो उन्हें कम्पनी के नए सिपाहियों के द्वारा दुरुस्त कर दिया जाता था। इतिहास-लेखक मिल लिखता है—

"इस प्रकार कम्पनी के मुलाज़िमों का माल बिलकुल बिला महसूल सब जगह आता-जाता था, जबकि शेष सब व्यापारियों को अपने माल पर भारी महसूल देना पड़ता था। परिणाम यह हुआ कि देश का समस्त व्यापार तेज़ी के साथ कम्पनी के मुलाज़िमों के हाथों में आने लगा और राज्य की आमदनी का एक स्रोत बिलकुल सूखने लगा। जब महसूल जमा करने वाला कोई सरकारी कर्मचारी कम्पनी के दस्तक के इस दुरुपयोग पर ऐतराज़ करता और माल को रोकता था तो उसे गिरफ़्तार करके पास की अङ्गरेज़ी कोठी में पहुँचा देने के लिए सिपाहियों का एक दस्ता भेज दिया जाता था।"*

अङ्गरेज़ों की इस शख़्सी तिजारत के साथ जो-जो अत्याचार और ज़बरदस्तियाँ होती थीं, उनकी गवाही अनेक अङ्गरेज़-लेखकों के बयानों से मिलती है। जहाँ-जहाँ कोई अङ्गरेज़ बैठकर इस तरह व्यापार करता था, वहाँ-वहाँ ही अङ्गरेज़ी झण्डा और कम्पनी के कुछ सिपाही उसके साथ रहते थे। वारन हेस्टिंग्स २५ अप्रैल, सन् १७६२ के एक पत्र में लिखता है—

"जिन-जिन जगहों में मैं गया हूँ, वहाँ-वहाँ अनेक अङ्गरेज़ी झण्डे लहराते हुए देखकर मैं चकित रह गया हूँ × × × चाहे किसी भी अधिकार से ऐसा क्यों न कर लिया गया हो, मुझे विश्वास है कि जगह-जगह इन झण्डों की मौजूदगी से नवाब की आमदनी, देश की शान्ति अथवा हमारी क़ौम की इज़्ज़त, तीनों में से किसी को भी लाभ नहीं पहुँच सकता। × × × मार्ग में हमारे सिपाहियों के व्यवहार के ख़िलाफ़ मुझसे अनेक शिकायतें की गईं। हम लोगों के पहुँचते ही लोग अधिकांश छोटे क़स्बों और सरायों को ख़ाली छोड़कर भाग जाते थे और दुकानों को बन्द कर देते थे, क्योंकि उन्हें हमसे भी उसी तरह के व्यवहार का भय था।"*

वेरेल्स्ट नामक अङ्गरेज़ इस सम्बन्ध में हमें एक और नई बात बताता है। वह लिखता है—

"उन दिनों बहुत से हिन्दोस्तानी व्यापारी अपनी सुविधा के लिए कम्पनी के किसी नौजवान मुहर्रिर को धन देकर उसका नाम ख़रीद लेते थे और उसके नाम के 'दस्तक' के ज़रिए देश के लोगों को तङ्ग करते थे और उन पर अन्याय करते थे। इस ज़रिए से इतनी ज़्यादा आमदनी होने लगी कि कई नौजवान (अङ्गरेज़) मुहर्रिर १५ हज़ार और २० हज़ार रुपए साल ख़र्च कर सकते थे, नफ़ीस कपड़े पहनते थे और रोज़ अच्छे से अच्छा खाना उड़ाते थे।"

वह आगे चलकर लिखता है—

"बिना महसूल दिए तिजारत की जाती थी और उसके जारी रखने में अनन्त अन्याय किए जाते थे। × × × इसी बात के कारण मीर क़ासिम के साथ लड़ाई हुई।"†

---

* "The Company's servants, whose goods were thus conveyed entirely free from duty, while those of all other merchants were heavily burdened, were rapidly getting into their own hands the whole trade of the country, and thus drying up one of the sources of the public revenue. When the Collectors of these tolls, or transit duties, questioned the power of the Dustuck, and stopped the goods, it was customary to send a party of Sepoys to seize the offender and carry him prisoner to the nearest factory."

—Mill's *History of India*, Vol III, pp. 229, 230.

* "I have been surprised to meet with several English flags flying in places which I have passed; . . . By whatever title they have been assumed, I am sure their frequency can bode no good to the Nawab's revenues, the quiet of the country, or the honor of our nation . . . Many complaints against them (Sepoys) were made me on the road; and most of the petty towns and serais were deserted at our approach and the shops shut up from the apprehensions of the same treatment from us."

—Warren Hastings in a letter to the President, dated Bhagalpur 25th April, 1762.

† "At this time many black merchants found it expedient to purchase the name of any young writer, in the Company's Service, by loans of money, and under this sanction harassed and oppressed the natives. So plentiful a supply was derived from this source that many young writers were enabled to spend £s. 1,500 and £s. 2,000 per annum, were clothed in fine linen, and fared sumptuously every day."

* * *

A trade was carried on without payment of duties, in

कम्पनी के डाइरेक्टरों तक ने ८ फ़रवरी, सन् १७६४ के एक पत्र में "कम्पनी के नौकरों, गुमाश्तों, एजण्टों और दूसरों की इस निजी तिजारत" को "नाजायज़", "दस्तक का लज्जाजनक दुरुपयोग", "हर तरह से अनधिकार-युक्त" और नवाब तथा उसकी "क़ुदरती प्रजा" दोनों के साथ "डबल अन्याय" स्वीकार किया है। किन्तु डाइरेक्टरों के इस पत्र के बाद भी इस अन्याय में कोई अन्तर न पड़ा।

उन सिपाहियों के ज़रिए, जो नवाब के धन से नियुक्त किए गए थे, नवाब ही की प्रजा के ऊपर जिस-जिस तरह के अत्याचार किए जाते थे, उनका कुछ अनुमान मीर क़ासिम के नाम बाकरगञ्ज के एक राजकर्मचारी के २५ मई, सन् १७६२ के नीचे लिखे पत्र से किया जा सकता है। वह लिखता है—

"××× यह जगह पहले बड़ी तिजारत की जगह थी, किन्तु अब नीचे लिखी कारवाइयों की वजह से बरबाद हो गई। एक अङ्गरेज़ माल ख़रीदने या बेचने के लिए यहाँ किसी गुमाश्ते को भेजता है। फ़ौरन् वह गुमाश्ता यह फ़र्ज़ कर लेता है कि यहाँ के किसी भी बाशिन्दे के हाथ ज़बरदस्ती अपना माल बेचने या उसका माल ज़बरदस्ती ख़रीदने का मुझे पूरा अधिकार है, और यदि वह बाशिन्दा ख़रीदने या बेचने की सामर्थ्य न रखता हो और इन्कार करे, तो फ़ौरन् या तो उस पर कोड़े बरसाए जाते हैं या उसे क़ैद कर लिया जाता है। यदि वह राज़ी हो जावे तब भी केवल इतना ही काफ़ी नहीं समझा जाता, बल्कि एक दूसरी ज़बरदस्ती यह की जाती है कि अनेक चीज़ों के व्यापार का ठेका अपने ही हाथों में ले लिया जाता है, अर्थात् जिन-जिन चीज़ों का व्यापार अङ्गरेज़ करते हैं, उनका व्यापार किसी दूसरे को नहीं करने दिया जाता और न किसी दूसरे के पास से किसी को ख़रीदने दिया जाता है। ××× और फिर अङ्गरेज़ समझते हैं कि कम से कम जो हम कर सकते हैं, वह यह है कि दूसरा सौदागर जिस दाम पर कोई चीज़ ख़रीदता है, हम उसी चीज़ को उससे बहुत कम दाम पर ख़रीदें। अक्सर ये लोग दाम देने ही से इन्कार कर देते हैं। और मैं दख़ल देता हूँ तो फ़ौरन् मेरी शिकायत होती है।"*

१८ वीं सदी के उत्तरार्द्ध में बङ्गाल भर के अन्दर इस ज़बरदस्त और व्यापक अत्याचार के विषय में अब हम इङ्गलिस्तान के प्रसिद्ध नीतिज्ञ और वक्ता एडमण्ड बर्क के कुछ वाक्य उद्धृत करते हैं। बर्क ने इङ्गलिस्तान की पार्लिमेण्ट के सामने कहा था—

"तिजारत जो संसार के हर दूसरे देश को धनवान् बनाती है, बङ्गाल को सर्वनाश की ओर ले जा रही थी। पहले समय में, जबकि कम्पनी को देश में किसी तरह की राज्य-सत्ता प्राप्त न थी, उन्हें अपने 'दस्तक' या 'पास' के ऊपर बड़े-बड़े अधिकार मिले हुए थे; उनका माल बिना महसूल दिए देश भर में आ-जा सकता था। (धीरे-धीरे) कम्पनी के नौकर अपनी-अपनी शख़्सी तिजारत के लिए इस पास का उपयोग करने लगे। यह मामला जब तक कि थोड़ा-थोड़ा होता रहा, देश की सरकार ने कुछ हद तक इसे गवारा कर लिया; किन्तु जब सभी लोग इस तरह की तिजारत करने लगे, तब तिजारत की अपेक्षा उसे डकैती कहना ज़्यादा ठीक मालूम होता था।

"ये व्यापारी हर जगह पहुँचते थे, अपने ही दामों पर माल बेचते थे, और दूसरे लोगों को भी ज़बरदस्ती मजबूर करके उनका माल अपने ही दामों पर ख़रीदते थे। बिलकुल यह मालूम होता था कि तिजारत के बहाने एक फ़ौज लोगों को लूटने जा रही है। लोग अपनी देशी अदालतों से रक्षा की आशा करते थे, किन्तु व्यर्थ। अङ्गरेज़-व्यापारियों की यह सेना अपने कूच में तातारी आक्रमकों से बढ़कर लूट-मार और बरबादी करती थी। ××× इस प्रकार यह अभागा देश दुहरे अन्याय की भयङ्कर लूट द्वारा टुकड़े-टुकड़े किया जा रहा था।" †

the procecution of which infinite oppressions were committed. . . . This was the immediate cause of the war with Mir Cassim."

—Verelst's *View of Bengal*, pp. 8 and 46.

* Vansittart's *Narrative*, Vol. II. p. 112.

† "Commerce, which enriches every othe country in the world, was bringing Bengal to total ruin. The Company, in former times, when it had no sovereignty or power in the country, had large privileges under their Dustuck or permit; their goods passed without paying duties through the country. The servants of the Company made use of this Dustuck for their own private trade, which, while it was used with moderation, the native

सन्देह होने लगता है कि उन दिनों बङ्गाल में किसका शासन था? वास्तव में शासन न मुग़ल-सम्राट् का था, न मुर्शिदाबाद के सूबेदार का; शासन था विदेशियों की कूट-नीति, अराजकता और इस देश के दुर्भाग्य का, और यह सब परिणाम था थोड़े से भारतवासियों की लज्जाजनक देशघातकता का। हम ऊपर कह चुके हैं कि बर्दमान, मेदिनीपुर और चट्टग्राम की आमदनी से वे सब फ़ौजें रक्खी गई थीं, जिनके द्वारा बङ्गाल भर में यह भयङ्कर नादिरशाही चलाई जा रही थी। सच यह है कि इसे नादिरशाही कहना भी नादिरशाह के साथ अन्याय करना है। नादिरशाह यदि ग़ैर-मुल्क में पहुँचकर अपने सिपाहियों की शान क़ायम रखने के लिए चन्द घड़ी के लिए क़त्लेआम का हुक्म दे सकता था तो वह अपनी एक आवाज़ पर अमन क़ायम करना भी जानता था और क्षमा और उदारता की शक्ति भी उसमें अपार थी। वास्तव में अठारहवीं सदी के उत्तरार्द्ध में बङ्गाल के अन्दर अङ्गरेज़ों के अत्याचारों की तुलना संसार के इतिहास के किसी दूसरे पन्ने पर मिलना कठिन है।

बङ्गाल और बिहार भर में इस समय कम्पनी की कोठियाँ फैली हुई थीं। नमक से लेकर इमारती लकड़ी तक अनेक चीज़ों का समस्त व्यापार अङ्गरेज़ों के हाथों में आ गया था। किसानों की खड़ी खेती कम्पनी के अङ्गरेज़-नौकर जिस भाव चाहे, ख़रीद लेते थे। देश के हज़ारों-लाखों व्यापारियों की रोज़ी छिन चुकी थी और किसानों की हालत इससे भी अधिक करुणाजनक थी। कम्पनी के गुमाश्तों और एजण्टों के, नवाब के मुलाज़िमों के साथ रोज़ाना जगह-जगह झगड़े होते रहते थे। कम्पनी के गुमाश्ते अनेक झूठी-सच्ची शिकायतें रोज़ाना कलकत्ते भेजते रहते थे और वहाँ से वही फ़ौजी सिपाही नवाब के मुलाज़िमों अथवा स्वाभिमानी प्रजा को दुरुस्त करने के लिए जगह-जगह भेज दिए जाते थे। नवाब की सरकारी चौकियों में बङ्गाल भर के अन्दर कहीं पर एक पाई महसूल की वसूली न होती थी। मीर क़ासिम ने पत्रों द्वारा अनेक बार ही अत्यन्त करुणाजनक शब्दों में गवरनर वन्सीटार्ट से इन तमाम बातों की शिकायत की, किन्तु इन शिकायतों और मीर क़ासिम के प्रयत्नों का ज़िक्र और आगे चलकर किया जायगा।

Government winked at in some degree; but when it got wholly into private hands, it was more like robbery than trade. These traders appeared every where; they sold at their own prices, and forced the people to sell to them at their own prices also. It appeared more like an army going to pillage the people, under pretence of commerce, than anything else. In vain the people claimed the protection of their own Country Courts. This English army of traders, in their march, ravaged worse than a Tartarian Conqueror. . . . Thus this miserable country was torn to pieces by the horrible rapaciousness of a double tyranny."

—Burke in his impeachment of Warren Hastings.

पानीपत की तीसरी लड़ाई

इस सब अपमान से बङ्गाल की वास्तविक रक्षा करने और देश को भावी आपत्तियों से बचाने का केवल एक ही तरीक़ा हो सकता था। देश में उस समय केवल एक ही शक्ति थी, जिसके झण्डे के नीचे शेष समस्त शक्तियों का मिलना सम्भव हो सकता था। वह शक्ति दिल्ली के मुग़ल-सम्राट् की रही-सही शक्ति थी। उपाय केवल यह था कि विदेशियों के मुक़ाबले के लिए दिल्ली-सम्राट् के झण्डे के नीचे देश की समस्त हिन्दू तथा मुसलमान राज-शक्तियों को एकत्रित किया जाय और उनके सम्मिलित प्रयत्नों द्वारा विदेशियों को बङ्गाल तथा भारत से निकाल कर बाहर कर दिया जाय।

यह एक आश्चर्य की बात है कि यह उपाय उस समय उसी राजा नन्दकुमार को सूझा, जिसने सन् १७५७ में अमींचन्द के धन के लोभ में आकर अपने स्वामी सिराजुद्दौला, भारतीय प्रजा तथा फ़्रान्सीसी, तीनों के साथ विश्वासघात किया था। मालूम होता है कि नन्दकुमार अब अपने देश को अङ्गरेज़ों के हाथों बिकते हुए और प्रजा के ऊपर उनके अन्यायों को देखकर अपनी ग़लती पर पछता रहा था। राजा नन्दकुमार ने जी-तोड़ प्रयत्न शुरू किए। सम्राट् शाहआलम अभी तक बिहार में था। सम्राट् तथा मराठों से उसने पत्र-व्यवहार शुरू किया। उसके प्रयत्नों द्वारा मराठों ने मीर क़ासिम और अङ्गरेज़ दोनों के विरुद्ध सम्राट् की ओर से बङ्गाल पर हमला करने का वादा किया। बर्दमान, बीरभूम तथा अन्य अनेक स्थानों के राजा और ज़मींदार इस कार्य के लिए सम्राट् के झण्डे के नीचे आ-आकर जमा होने लगे।

ये सब प्रयत्न अभी चल ही रहे थे, इतने में एक ऐसी घटना हुई जिसका भारत के अन्दर ब्रिटिश-राज्य के क़ायम होने पर अत्यन्त महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ा, किन्तु जिसके इस महत्त्वपूर्ण प्रभाव पर भारतीय इतिहास-लेखकों ने अभी तक उचित ध्यान नहीं दिया। यह घटना ६ जनवरी, सन् १७६१ ई० की पानीपत की तीसरी लड़ाई थी।

भारत का राजशासन उस समय ख़ासी बिगड़ी हुई अवस्था में था। औरङ्गज़ेब की सङ्कीर्ण नीति और उसके अविश्वासी स्वभाव तथा बाद के दिल्ली के सम्राटों की विलास-प्रियता और अयोग्यता ने मुग़ल-साम्राज्य को अङ्ग-भङ्ग और खोखला कर दिया था। अनेक छोटे-बड़े नरेशों के अलावा अवध के नवाब और दक्षिण के निज़ाम अपने-अपने सूबों के स्वतन्त्र शासक बन बैठे थे। बङ्गाल अभी तक नाममात्र को दिल्ली के अधीन था। किन्तु कई वर्ष से बङ्गाल से भी दिल्ली ख़िराज जाना बन्द हो गया था, जिसके कारण शाहआलम दूसरे को बिहार पर चढ़ाई करनी पड़ी थी। स्वयं राजधानी के निकट भरतपुर के जाट-राजा और रामपुर के रुहेला-नवाब दोनों अपने-अपने स्वतन्त्र राज्य क़ायम कर रहे थे। मराठों की शक्ति दिनोंदिन बढ़ती जा रही थी। दिल्ली के सम्राट् अभी तक भारत के सम्राट् कहलाते थे, किन्तु बहुत दर्जे तक केवल नाम के लिए। पश्चिम में सिन्ध और पञ्जाब के सूबे अफ़ग़ानिस्तान के शासक अहमदशाह अब्दाली के अधीन हो चुके थे और पूरब में बङ्गाल और बिहार दोनों के अन्दर अङ्गरेज़ों की साज़िशें सफल हो रही थीं।

वास्तव में भारत के क्रियात्मक प्रभुत्व के लिए उस समय अफ़ग़ानों, मराठों और अङ्गरेज़ों के बीच एक प्रकार का त्रिकोनिया संग्राम जारी था, जिसमें अफ़ग़ान और मराठे अपने युद्ध-बल पर तथा अङ्गरेज़ अपनी कूटनीति के बल सफलता की आशाएँ कर रहे थे। उस समय देश को इस विपज्जाल से निकलने का केवल एक ही उपाय हो सकता था। वही उपाय राजा नन्दकुमार को सूझा, और ज़ाहिर है कि दिल्ली और पूना के कुछ नीतिज्ञ भी नन्दकुमार के इस विचार से पूरी सहानुभूति रखते थे।

सम्राट् आलमगीर दूसरे के समय में वज़ीर ग़ाज़ीउद्दीन ने मराठों को सम्राट् की सहायता के लिए दिल्ली बुलवाया। उस समय के पेशवा ने अपने भाई रघुनाथराव (राघोबा) को सम्राट् के आज्ञापालन के लिए एक बड़ी सेना-साहित दिल्ली भेजा। सम्राट् तथा पेशवा के बीच प्रेम का सम्बन्ध क़ायम हो गया। रघुनाथराव ने अपनी सेना-सहित और आगे बढ़कर अहमदशाह अब्दाली के नायब के हाथों से पञ्जाब विजय कर लिया और एक मराठा-सरदार को दिल्ली-सम्राट् के अधीन वहाँ का सूबेदार नियुक्त कर दिया। राघोबा दक्षिण लौट आया। मराठों की शक्ति इस समय शिखर पर पहुँची हुई थी। किन्तु इस अन्तिम घटना ने उनके विरुद्ध अहमदशाह अब्दाली का क्रोध भड़का दिया, और सन् १७५९ ई० में एक ज़बरदस्त सेना लेकर वह पञ्जाब पर अपना राज्य फिर से क़ायम करने और मराठों का विध्वंस करने के लिए अफ़ग़ानिस्तान से निकल पड़ा।

सदाशिव भाऊ २० हज़ार सवार, १० हज़ार पैदल और तोपख़ाना लेकर अहमदशाह के मुक़ाबले के लिए पूना से रवाना हुआ। पेशवा का पुत्र विश्वासराव भी सदाशिव के साथ था। मार्ग में होलकर और सींधिया की सेनाएँ सदाशिव से आ मिलीं। राजपूत-राजाओं ने सहायता के लिए अपने-अपने सवार भेजे। भरतपुर का जाट-राजा ३०,००० सेना लेकर स्वयं सदाशिव से आ मिला। साम्राज्य की राजधानी दिल्ली में सदाशिव का ख़ूब स्वागत हुआ। अवध का नवाब शुजाउद्दौला अपनी तथा सम्राट् की सेना-सहित सदाशिव की मदद के लिए तैयार हो गया। एक बार मालूम होता था कि भारत के समस्त हिन्दू तथा मुसलमान विदेशियों से अपने देश की रक्षा करने के लिए कमर कस कर मैदान में उतर आए।

किन्तु सदाशिव भाऊ उस ऐन परीक्षा के समय सच्चा नीतिज्ञ साबित न हो सका। गर्व ने उसकी दूरदर्शिता पर परदा डाल दिया। मार्ग में ही उसने कई मराठा-सरदारों को अपने अनुचित व्यवहार से नाराज़ कर लिया। राजा भरतपुर को भी वह सन्तुष्ट न रख सका। दिल्ली के अन्दर उसका बर्ताव और भी घृणित रहा। क़िले में घुसते ही बहुत सा शाही सामान उसने अपने क़ब्ज़े में कर लिया। दीवाने ख़ास की सुन्दर क़ीमती चाँदी की छत को उखड़वा कर और गलवा कर उसने उससे १७ लाख रुपए ढलवा लिए। यह भी कहा जाता है कि वह इस समय विश्वासराव को दिल्ली के तख़्त पर बैठाना

मीर क़ासिम

[श्रीयुत् बहादुरसिंह जी सिङ्घी, कलकत्ता, की कृपा द्वारा, एक प्राचीन चित्र से]

भारत में अङ्गरेज़ी राज्य नामक अप्रकाशित पुस्तक से

चाहता था। सदाशिव भाऊ की इस सङ्कीर्ण तथा घातक नीति का परिणाम यह हुआ कि उसके मुसलमान-मित्रों के दिल उसकी ओर से फिर गए। अवध का नवाब-वज़ीर उसकी ओर से सशङ्क हो गया और जिस उत्साह के साथ वह आक्रमक अहमदशाह के विरुद्ध मराठों की सहायता करना चाहता था, न कर सका।

६ जनवरी, सन् १७६१ को पानीपत के ऐतिहासिक मैदान में एक अत्यन्त घमासान संग्राम हुआ, जिसमें दोनों ओर के हताहतों की संख्या लाखों तक पहुँच गई। ऐन मौक़े पर सदाशिव के व्यवहार से बेज़ार होकर भरतपुर का राजा अपनी सेना सहित मैदान से हट गया। होलकर तटस्थ रहा। सदाशिव और विश्वासराव दोनों मैदान में काम आए। विजय अहमदशाह की ओर रही। नवाब शुजाउद्दौला ने मजबूर होकर विजयी अहमदशाह के साथ मेल कर लिया। किन्तु अहमदशाह को भी अपनी इस विजय की बहुत ज़बरदस्त क़ीमत देनी पड़ी। उसके इतने अधिक आदमी लड़ाई में काम आए और घायल हुए कि आगे बढ़ने का इरादा छोड़कर उसे फ़ौरन् अफ़ग़ानिस्तान लौट जाना पड़ा। लौटने से पूर्व उसने शाहआलम दूसरे को भारत का सम्राट् स्वीकार किया और ग़ाज़ीउद्दीन को हटाकर उसकी जगह नवाब शुजाउद्दौला को दिल्ली की सल्तनत का वज़ीर क़रार दिया। निस्सन्देह सदाशिवराव की सङ्कीर्णता और अदूरदर्शिता के कारण पानीपत के मैदान में मराठों की बढ़ती हुई शक्ति चकनाचूर हो गई और उसके साथ ही साथ दिल्ली के साम्राज्य तथा भारत की राष्ट्रीय स्वाधीनता दोनों की आशाएँ कुछ समय के लिए ख़ाक में मिल गईं।

प्रोफ़ेसर सिडनी ओवन ने सच कहा है—

"कहा जा सकता है कि पानीपत की लड़ाई के साथ-साथ भारतीय इतिहास का भारतीय युग समाप्त हो गया। इसके बाद से इतिहास के पढ़ने वाले को दूरवर्ती पश्चिम से आए हुए व्यापारी शासकों की उन्नति से ही सरोकार रह जाता है।"*

* "With the battle of Panipat, the native period of Indian History may be said to end. Henceforth the interest gathers round the progress of the Merchant Princes from the far west."

—*India on the Eve of the British Conquest*, by Professor Sydney Owen.

निस्सन्देह जिस त्रिकोनिया संग्राम का हम ऊपर ज़िक्र कर चुके हैं, उसकी तीन शक्तियों में से अफ़ग़ानों को अब और आगे बढ़कर दिल्ली-सम्राट् के निर्बल हाथों से भारतीय साम्राज्य की बाग छीनने का साहस न हो सकता था। मराठों की कमर टूट चुकी थी और वे अङ्गरेज़ों के बढ़ते हुए प्रभाव को रोकने के लिए अब बङ्गाल तक पहुँचने के नाक़ाबिल थे। इस प्रकार नन्दकुमार और उसके साथियों की आशाओं पर पानीपत ने पानी फेर दिया।

एक अङ्गरेज़-लेखक साफ़ लिखता है—

"पानीपत की लड़ाई से मराठा-सङ्घ को जो थोड़ी देर के लिए धक्का पहुँचा, उसके कारण मराठे बङ्गाल पर हमला करने से रुक गए। इस हमले में शायद शुजाउद्दौला और शाहआलम मराठों के साथ मिल जाते, और सम्भव है कि ये लोग अङ्गरेज़-कम्पनी की उस सत्ता को, जो अभी उस समय तक कमज़ोर थी और अनेक कठिनाइयों से घिरी हुई थी, सफलता-पूर्वक उखाड़ कर फेंक देते।"*

इसके बाद केवल अङ्गरेज़ बाक़ी रह गए और विविध सूबों के निर्बल तथा अदूरदर्शी शासकों को एक दूसरे से तोड़-फोड़कर अपने लिए अनन्य राजनैतिक प्रभुत्व का मार्ग बना लेना अब उनके लिए काफ़ी सरल हो गया।

शाहआलम और अङ्गरेज़

अब हम इस प्रसङ्ग से हटकर फिर अपने असली वृत्तान्त की ओर आते हैं। सम्राट् शाहआलम दूसरा अभी तक बिहार-प्रान्त में था। सितम्बर, सन् १७६० ही में अङ्गरेज़ शाहआलम को अपनी ओर करने का निश्चय कर चुके थे। इस समय बङ्गाल, बिहार और उड़ीसा के अनेक ज़मींदार, जो नई क्रान्ति के विरुद्ध थे, सम्राट् के भण्डे के नीचे जमा हो रहे थे। अङ्गरेज़ों ने अब जिस तरह हो, बिहार पहुँचकर सम्राट् से मामला तय कर लेना ज़रूरी समझा। करनल केलो की जगह अब मेजर कारनक बङ्गाल की सेनाओं का प्रधान सेनापति था। जनवरी, सन् १७६१ में कारनक पटने पहुँचा। कम्पनी की सेना

* H. G. Keene's *Madhava Rao Scindhia*, p. 46.

के अलावा रामनारायण की सेना और मुर्शिदाबाद की सेनाएँ भी इस समय कारनक के साथ थीं। गया मौनपुर के निकट सम्राट् की सेना और इन सेनाओं का आमना-सामना हुआ। अन्त में समझौते की बातचीत होने लगी।

सम्राट् शाहआलम कारनक को साथ लेकर पटना आया। मीर क़ासिम पटने में मौजूद था। मीर क़ासिम ने हाज़िर होकर पिछले ख़िराज के बदले में एक बहुत बड़ी नक़द रक़म सम्राट् की भेंट की और अपने यहाँ की सरकारी टकसाल में शाहआलम दूसरे के नाम के सिक्के ढलवाने का वादा किया। यही वादा कलकत्ते की टकसाल के बारे में अङ्गरेज़ों ने किया। मीर क़ासिम ने तीनों प्रान्तों की आमदनी में से २४ लाख रुपए प्रति वर्ष दिल्ली-सम्राट् की सेवा में भेजने का वचन दिया। सम्राट् शाहआलम ने मार्च, सन् १७६१ में तीनों प्रान्तों की सूबेदारी का परवाना बाज़ाब्ता मीर क़ासिम के नाम जारी कर दिया। अङ्गरेज़ों का मुख्य उद्देश पूरा हो गया। उन्होंने इस अवसर पर एक कोशिश यह भी की कि जिस प्रकार मीर क़ासिम को शाही परवाना अता हुआ, उसी प्रकार जो इलाक़े अङ्गरेज़-कम्पनी के पास थे, उनके लिए कम्पनी को अलग सूबेदारी का परवाना मिल जावे, किन्तु शाहआलम ने इसे स्वीकार न किया। एक और प्रार्थना इस समय अङ्गरेज़ों ने शाहआलम से यह की कि सूबेदार मीर क़ासिम को रहने दिया जावे, किन्तु तीनों प्रान्तों की दीवानी के अधिकार उससे लेकर कम्पनी को अता हो जावे। दीवानी का मतलब यह था कि सूबेदार के मातहत तीनों प्रान्तों से सरकारी मालगुज़ारी वसूल करके उसका हिसाब सम्राट् और सूबेदार दोनों को दे देना और वसूली का ख़र्च निकाल-कर शेष सब धन सूबेदार के सुपुर्द कर देना कम्पनी का काम रहे; और उस धन से सरकारी फ़ौजें रखना अपने प्रान्तों के शासन का शेष समस्त कार्य चलाना और सम्राट् को सालाना ख़िराज भेजना सूबेदार का काम रह जाय।

शाहआलम स्वभावतः इस समय दिल्ली लौटने के लिए उत्सुक था। राजधानी के अन्दर सिंहासन के लिए किसी दूसरे हक़दार के खड़े हो जाने की भी सम्भावना थी! सम्राट् ने चाहा कि अङ्गरेज़ अपनी सेना-सहित मेरे साथ दिल्ली चलें। इसके बदले में वह कम्पनी को तीनों प्रान्तों का दीवान बना देने के लिए भी तैयार था। किन्तु अङ्गरेज़ों के पास उस समय इस कार्य के लिए काफ़ी फ़ौज न थी। स्वयं बङ्गाल के अन्दर वे अपने अनेक शत्रु पैदा कर चुके थे। इसलिए वे सम्राट् की इस इच्छा से उस समय लाभ न उठा सके। और जून, सन् १७६१ में सम्राट् शाहआलम पटने से दिल्ली की ओर लौट गया।

राजा रामनारायण से विश्वासघात

अब अङ्गरेज़ों को मराठों का डर न था। शाहआलम से किसी प्रकार निबटारा हो गया। बङ्गाल का मैदान फिर कम्पनी के मुलाज़िमों की लूट और ज़बरदस्तियों के लिए ख़ाली हो गया। इस बार उनका पहला वार राजा रामनारायण पर हुआ। अङ्गरेज़ों ही के बयान के अनु-सार रामनारायण एक अत्यन्त योग्य शासक था। वह अत्यन्त धनवान् भी मशहूर था और आरम्भ से अङ्गरेज़ों का "पक्का हितसाधक" रह चुका था। किन्तु अब मीर-क़ासिम और अङ्गरेज़ दोनों को रुपए की ज़रूरत थी। अपनी सेना के बल लोगों को पकड़-पकड़ कर मीर-क़ासिम के सामने पेश करना और उनसे रक़में वसूल करना अङ्गरेज़ों का इस समय एक ख़ास पेशा था। यह इलज़ाम लगाकर कि रामनारायण के ज़िम्मे सूबेदार की बक़ाया निकलती है, गवरनर वन्सीटार्ट ने रामनारायण को छल द्वारा गिरफ़्तार कर मीर क़ासिम के हवाले कर दिया। इसके कुछ ही समय पहले वन्सीटार्ट ने कारनक को लिखा था कि तुम्हें नवाब के हर तरह के अन्यायों से रामनारायण की रक्षा करनी चाहिए। कारनक ने सन् १७७२ में पार्लिमेण्ट की सिलेक्ट कमेटी के सामने गवाही देते हुए कहा था कि राजा रामनारायण पर बक़ाया का इलज़ाम "बेबुनियाद" था। निस्सन्देह वन्सीटार्ट और उसके साथियों का यह कार्य सर्वथा निस्स्वार्थ न था। १७ जुलाई, सन् १७६१ को करनल कूट ने गवरनर और काउन्सिल के नाम एक पत्र भेजा, जिसमें साफ़ लिखा है कि मीर क़ासिम इस कार्य के लिए साढ़े सात लाख रुपए रिशवत देने को तैयार है। गवरनर वन्सीटार्ट के इस कार्य की निन्दा करते हुए इतिहास-लेखक मिल लिखता है—

"मिस्टर वन्सीटार्ट के शासन की यह घातक भूल थी, क्योंकि इसके कारण ऊँचे दरजे के हिन्दोस्तानियों के

दिलों से अङ्गरेज़ों की रक्षा के ऊपर विश्वास बिलकुल उठ गया, और क्योंकि इस मामले में जिस ज़बरदस्त अन्याय में मि० वन्सीटार्ट ने साथ दिया, उससे लोगों की यह राय होगई कि वन्सीटार्ट अपनी कमज़ोरी से अथवा रिशवत लेकर किसी भी पक्ष का समर्थन करने को तैयार हो सकता है × × ×।"*

मुर्शिदाबाद में निर्दोष रामनारायण को हथकड़ियाँ डालकर रक्खा गया, उससे ख़ूब धन वसूल किया गया और पटने में उसकी जगह दूसरा नायब नियुक्त कर दिया गया।

मीर क़ासिम का चरित्र और शासन

मीर क़ासिम साधारण चरित्र का मनुष्य न था। उसमें और मीर जाफ़र में बहुत बड़ा अन्तर था। मीर जाफ़र अयोग्य, निर्बल, स्वार्थी, अदूरदर्शी तथा भीरु था। किन्तु मीर क़ासिम की दूरदर्शिता, उसकी योग्यता, उसके बल, उसकी वीरता और शासक की हैसियत से उसकी कार्य-कुशलता की लगभग समस्त इतिहास-लेखकों ने मुक्त-कण्ठ से प्रशंसा की है। उदाहरण के लिए इतिहास-लेखक करनल मालेसन मीर क़ासिम के "बढ़े हुए युक्ति-कौशल, उसकी योग्यता × × × उसके दृढ़ सङ्कल्प, चीज़ों का शीघ्रता से निर्णय कर सकने की क्षमता, उदार विचार × × × विमल मस्तिष्क और प्रबल चरित्र" की जगह-जगह प्रशंसा करता है।† एक दूसरा अङ्गरेज़ इतिहास-लेखक लिखता है—"मीर क़ासिम के अन्दर एक योद्धा की वीरता और एक राजनीतिज्ञ की दूरदर्शिता दोनों मौजूद थीं।"‡ करनल मालेसन के अनुसार मीर क़ासिम को मीर जाफ़र के साथ देशघातकों की श्रेणी में रखना मीर क़ासिम के साथ अन्याय करना है। यह विद्वान् इतिहास-लेखक लिखता है कि मीर क़ासिम का इरादा मीर जाफ़र के साथ विश्वासघात करने का न था, मीर क़ासिम ने अपने बूढ़े श्वसुर की निर्बलता, भीरुता और अयोग्यता को अच्छी तरह अनुभव कर लिया था; उसकी आत्मा यह देखकर अत्यन्त तप्त थी कि बङ्गाल का सूबेदार विदेशियों के हाथों की केवल एक कठपुतली रह गया था; और यह देखकर ही मीर क़ासिम ने जिस तरह हो सका, सूबेदार की सत्ता को फिर से क़ायम करने का सङ्कल्प किया।* मीर क़ासिम और अङ्गरेज़ों में जो गुप्त समझौता हुआ था, वह केवल मीर क़ासिम को मीर जाफ़र का प्रधान मन्त्री बनाने के विषय में हुआ था, और मीर क़ासिम को आशा थी कि इस हैसियत से मैं सूबेदारी की सत्ता को फिर से क़ायम कर सकूँगा, किन्तु जब एक बार यह सब मामला निर्बल और सशङ्क मीर जाफ़र पर प्रकट कर दिया गया और मीर जाफ़र को मीर क़ासिम पर विश्वास न हो सका, तो फिर मीर क़ासिम के लिए पीछे हट सकना असम्भव हो गया। इसमें भी सन्देह नहीं कि मीर क़ासिम ने मसनद पर बैठते ही बङ्गाल की अवस्था को सुधारने का जी-तोड़ प्रयत्न किया और इस प्रयत्न में बहुत दरजे तक उसे आश्चर्यजनक सफलता प्राप्त हुई।

माल और ख़ज़ाने के महकमों में उसने अनेक सुधार किए। सन् १७६२ तक उसने न केवल अपनी फ़ौज की तमाम पिछली तनख़्वाहों को अदा कर दिया और अङ्गरेज़ों की एक-एक पाई ही चुकता कर दी, बल्कि शासन का इतना सुन्दर प्रबन्ध किया कि सूबेदारी की आमदनी सालाना ख़र्च से बढ़ गई। अङ्गरेज़ों पर उसे शुरू से ही विश्वास न था, तथापि उसने अङ्गरेज़ों के साथ अपने वचन का अक्षरशः पालन किया। मुर्शिदाबाद की राजधानी में विदेशियों का प्रभाव अधिक बढ़ गया था, इसलिए मीर क़ासिम ने मुङ्गेर को अपनी नई राजधानी बनाया। उसने अधिकतर मुङ्गेर ही में रहना शुरू कर दिया। मुङ्गेर की उसने बड़ी सुन्दर

* "This was the fatal error of Mr. Vansittart's administration; because it extinguished among the natives of rank all confidence in the English protection; and because the enormity to which, in this instance, he had lent his support, created an opinion of a weak or a corrupt partiality, . . ."

—*Mill*, Vol. III, p. 224.

† " . . . a man of great tact and ability . . . of iron will, quick decision, large views, . . . of clear head and strong charactor."

—*The Decisive Battles of India*, by Colonel Malleson, pp. 127, 145.

‡ "He united the gallantry of the soldier with the sagacity of the statesman."

—*Transactions in India from 1757 to 1783.*

* *The Decisive Battles of India*, p. 128

और मज़बूत क़िलेबन्दी की। लगभग चालीस हज़ार सेना वहाँ जमा की। उस सेना को यूरोपियन ढङ्ग के अस्त्रों की शिक्षा देने के लिए अपने यहाँ अनेक योग्य यूरोपियन नौकर रक्खे। एक बहुत बड़ा नया कारख़ाना तोपें ढालने का उसने क़ायम किया, जिसकी तोपों के विषय में कहा जाता है कि उस समय की यूरोप की बनी हुई तोपों से हर तरह बढ़कर थीं। मीर क़ासिम की समस्त प्रजा उससे अत्यन्त सन्तुष्ट थी और उससे प्रेम करती थी।

मीर क़ासिम के विरुद्ध साज़िश

किन्तु ज्योंही मीर क़ासिम और उसकी प्रजा के थोड़ा-बहुत पनपने का समय आया, त्योंही मीर क़ासिम को भी मसनद से उतारने की तैयारियाँ शुरू होगईं। करनल मालेसन साफ़ लिखता है कि मीर क़ासिम ने अङ्गरेज़ों के साथ अपने समस्त वादे पूरे कर दिए, तथापि "लालची अङ्गरेज़ों को अपनी अर्थ-पिपासा के शान्त करने का सर्वोत्तम उपाय यही दिखाई दिया कि मीर क़ासिम को नाश करके उसके उत्तराधिकारी के साथ नए सिरे से सौदा किया जावे।"*

जिस प्रकार मीर जाफ़र के विरुद्ध अङ्गरेज़ों ने मीर क़ासिम को अपनी साज़िशों का केन्द्र बनाया था, उसी प्रकार अब उलट कर मीर क़ासिम के ख़िलाफ़ बूढ़े मीर जाफ़र को इन नई साज़िशों का केन्द्र बनाया गया। मीर क़ासिम के विरुद्ध सामग्री तैयार करने के लिए कलकत्ते की सिलेक्ट कमेटी के कुछ मेम्बरों ने ११ मार्च, सन् १७६२ को कम्पनी के डाइरेक्टरों के नाम एक लम्बा पत्र भेजा, जिसमें उन्होंने मीर क़ासिम और उसके चरित्र पर अनेक झूठे-सच्चे दोष लगाए, मीर जाफ़र की ख़ूब तारीफ़ें कीं। यह स्वीकार किया कि मीर जाफ़र के चरित्र पर इससे पूर्व जो दोष लगाए जा चुके थे वे सब झूठे थे, और मीर जाफ़र को मसनद से उतारना एक भूल और अन्याय था, और लिखा—

"जब से वह (मीर क़ासिम) सूबेदार बना है, तब से उसके ज़ुल्मों और लूट-खसोट की हम अगणित मिसालें आपको दे सकते हैं। किन्तु उससे यह पत्र बेहद लम्बा हो जायगा × × ×। हम केवल एक रामनारायण का विशेषकर वर्णन करते हैं, जिसे उसने पटने की नायबी से अलग कर दिया है। यह बात मानी हुई है कि रामनारायण अपने वचन का सच्चा है, इसीलिए उसकी नायबी का समर्थन करना हम सदा अपने लिए हितकर नीति समझते रहे। आजकल मीर क़ासिम रामनारायण को उस समय तक हथकड़ी डाल कर रक्खे हुए है, जब तक कि वह हद दर्जे उससे धन न चूस ले। इसके बाद इसमें कोई सन्देह नहीं कि रामनारायण का काम तमाम कर दिया जायगा। जिन-जिन लोगों ने अङ्गरेज़ों का साथ दिया था, उनमें से सब नहीं तो अधिकांश से भारी-भारी रक़में वसूल की जा चुकी हैं। उनसे रुपए वसूल करने के लिए जो-जो पीड़ाएँ उन्हें दी गई हैं, उनसे कई के प्राण निकल गए। दूसरों को या तो कमीनेपन के साथ क़त्ल कर दिया गया और या (जो हिन्दोस्तानियों में अक्सर होता है) बेइज़्ज़ती से बचने के लिए उन्होंने आत्म-हत्या कर ली × × ×।"

मीर क़ासिम के चरित्र को कलङ्कित करने में अब इन लोगों ने कोई कसर उठा न रक्खी। अङ्गरेज़ों को रुपए देने के लिए ही मीर क़ासिम को अपने अनेक आश्रितों पर ज़ुल्म करने पड़े। इतिहास से ज़ाहिर है कि अङ्गरेज़ ही इस तरह के अनेक अभागों को ला-लाकर मीर क़ासिम के हवाले करते थे। अङ्गरेज़ों ही ने साढ़े सात लाख रुपए अथवा कुछ अधिक के बदले में अपने सच्चे मित्र निर्दोष रामनारायण को छल से पकड़ कर मीर क़ासिम के हाथों में दिया और अब अङ्गरेज़ ही मीर क़ासिम को इन सब अन्यायों के लिए दोषी ठहराते थे।

एक इलज़ाम मीर क़ासिम पर यह भी था कि वह अपनी फ़ौज बढ़ा रहा था, उन्हें यूरोपियन ढङ्ग की क़वायद और यूरोपियन शस्त्रों का इस्तेमाल सिखा रहा था और नई क़िलेबन्दियाँ कर रहा था (!)।

इसी पत्र में इन लोगों ने लिखा कि मीर जाफ़र के चरित्र के विरुद्ध जितने इलज़ाम गवरनर वन्सीटार्ट ने लगाए थे वे सब झूठे हैं, उनका उद्देश केवल "लोगों के चित्तों को मीर जाफ़र की ओर से फेर देना था," और

---

* "Mir Kassim performed his covenant. But . . . men greedy of gain, . . . deeming that the shortest road to their end lay in compassing the ruin of Mir Kassim, in order to make a market of his successor."

—*The Decisive Battles of India*, p. 134.

यह कि मीर जाफ़र को मसनद से उतारने और मीर क़ासिम को उसकी जगह बैठाने से समस्त प्रजा अत्यन्त असन्तुष्ट है। कमेटी के छः मेम्बरों के इस पत्र पर दस्तख़त हैं। निस्सन्देह इस पत्र को पढ़ने के बाद कम्पनी के उस समय के अङ्गरेज़-मुलाज़िमों के किसी भी पत्र अथवा बयान पर कुछ भी विश्वास कर सकना सर्वथा असम्भव है।

तिजारत और सरकारी महसूल-सम्बन्धी अङ्गरेज़ों के अत्याचार इस समय तक समस्त बङ्गाल में फैल चुके थे, और बढ़ते जा रहे थे। इन अत्याचारों के विषय में करनल मालेसन लिखता है—

"इस लज्जास्पद और अन्यायपूर्ण पद्धति का परिणाम यह हुआ कि इज़्ज़त वाले देशी व्यापारी बरबाद हो गए, ज़िले के ज़िले निर्धन हो गए, देश का समस्त व्यापार उलट-पुलट हो गया, और उस ज़रिए से नवाब को जो आमदनी होती थी, उसमें धीरे-धीरे किन्तु लगातार कमी आती गई। मीर क़ासिम ने बार-बार कलकत्ते की काउन्सिल से इन ज़्यादतियों की शिकायत की, किन्तु व्यर्थ।"*

अन्त को इन अगणित शिकायतों के जवाब में इस सब मामले का निबटारा करने के लिए ३० नवम्बर, सन् १७६२ को गवरनर वन्सीटार्ट और वारन हेस्टिंग्स नवाब से भेंट करने के लिए मुङ्गेर पहुँचे। मीर क़ासिम ने जो शिकायतें इस समय वन्सीटार्ट के सामने पेश कीं, उनमें से एक यह भी थी—

"जब सूबेदार (मीर क़ासिम) बिहार की ओर गया हुआ था और बङ्गाल में कोई शासक न रहा था, उस समय अङ्गरेज़ों ने अपने अत्याचारों द्वारा इस सूबे के हर ज़िले और हर गाँव को तबाह कर डाला था, प्रजा से उनकी रोज़ की रोटी तक छीन ली गई थी और सरकारी महसूलों और मालगुज़ारी का जमा होना बिलकुल बन्द हो गया था, जिससे सूबेदार को क़रीब एक करोड़ रुपए का नुक़सान हुआ × × ×।"*

१५ दिसम्बर, सन् १७६२ को वन्सीटार्ट और मीर क़ासिम के बीच एक सन्धि हुई, जो 'मुङ्गेर की सन्धि' के नाम से प्रसिद्ध है। और बातों के साथ इस सन्धि में यह भी तय हुआ कि अङ्गरेज़-व्यापारी आयन्दा से नमक, तम्बाकू, छालिया इत्यादि सब चीज़ों के ऊपर ९ फ़ीसदी महसूल दिया करें और हिन्दोस्तानी व्यापारी इन्हीं तमाम चीज़ों पर २५ फ़ीसदी महसूल दिया करें। निस्सन्देह यह सन्धि भारतीय व्यापारियों के साथ न्यायोचित न न थी, तथापि मीर क़ासिम ने शान्ति की इच्छा से विवश होकर उसे स्वीकार कर लिया।

वन्सीटार्ट और हेस्टिंग्स दोनों ने सन्धि-पत्र पर हस्ताक्षर किए और दोनों ने कलकत्ता-काउन्सिल के नाम अपने १५ दिसम्बर के पत्र में इस सन्धि की 'न्याय्यता' और 'उदारता' और मीर क़ासिम की 'सच्चाई' तीनों की स्पष्ट शब्दों में तारीफ़ की है। वन्सीटार्ट ने मीर क़ासिम से यह वादा किया कि कलकत्ते पहुँचकर मैं कम्पनी और सरकार के बीच के सब मामले तय कर दूँगा। किन्तु कलकत्ते वापस पहुँचते ही बजाय 'सब मामला तय' करने के गवरनर वन्सीटार्ट ने कम्पनी और उसके आदमियों की धींगाधींगी को पूर्ववत् जारी रखने के लिए जगह-जगह नई फ़ौजें रवाना कर दीं। इसके साथ-साथ कलकत्ते की अङ्गरेज़-काउन्सिल ने अपनी बाज़ाब्ता इजलास करके फ़ौरन् तमाम अङ्गरेज़ी कोठियों और उनके गुमाश्तों के पास यह स्पष्ट सूचनाएँ भेज दीं कि मुङ्गेर की शर्तों पर हरगिज़ कोई अमल न करे और यदि नवाब के कर्मचारी अमल कराने पर ज़ोर दें, तो उनकी ख़ूब गत बनाई जावे। इसी इजलास में यह भी कहा गया कि मुङ्गेर की सन्धि पर हस्ताक्षर करने के लिए वन्सीटार्ट ने नवाब मीर क़ासिम

* "The results of this shameful and oppressive system were that the respectable class of native merchants were ruined, whole districts became impoverished, the entire native trade became disorganised and the Nawab's revenue from that source suffered a steady and increasing declension. In vain did Mir Kassim represent, again and again these evils on the Calcutta Council."

—*The Decisive Battles of India*, p. 137.

* "When His Excellency went to Behar, Bengal being left without a ruler, every village district in that province was ruined through the oppression of the English, the subjects of the Sarkar were deprived of their daily bread, and the collection of the revenues was entirely stopped, so that His Excellency lost nearly a crore of rupees . . . ."

—*Calendar of Presian Correspondence*, p. 194, No. 1695.

से सात लाख रुपए रिशवत ली थी। जो हो, सन्धि-पत्र की स्याही अभी सूखने भी न पाई थी कि सन्धि तोड़ दी गई। नवाब के कर्मचारी यदि कोई बोलते थे या महसूल माँगते थे तो पूर्ववत् उन पर मार पड़ती थी। मीर क़ासिम ने वन्सीटार्ट को ९ मार्च, सन् १७६३ के पत्र में फिर लिखा कि—"तीन साल से सरकार को अङ्गरेज़ों से एक भी पाई वा एक भी चीज़ नहीं मिली। इसके विपरीत सरकार के कर्मचारियों से अङ्गरेज़ बराबर जुरमाने और हरजाने वसूल कर रहे हैं।"

मीर क़ासिम ने बार-बार शिकायत की, किन्तु कोई फल न हुआ। विदेशी व्यापारियों का बिना महसूल व्यापार करना और देशी व्यापारियों से भारी महसूल वसूल किया जाना दोनों बराबर जारी रहे। इस घोर अन्याय द्वारा देशी व्यापारियों का अस्तित्व ही मिटता जा रहा था। अन्त को मजबूर होकर और देशी व्यापारियों को जीवित रखने का और कोई उपाय न देख, २२ मार्च, सन् १७६३ को मीर क़ासिम ने अपनी सूबेदारी भर में चुङ्गी की तमाम चौकियों को उठवा दिए जाने का हुकुम दे दिया और सूबे भर में एलान कर दिया कि आज से दो साल तक किसी तरह के तिजारती माल पर किसी से किसी तरह का भी महसूल न लिया जाय। निस्सन्देह मीर क़ासिम की सालाना आमदनी को इससे ज़बरदस्त धक्का पहुँचा, किन्तु देशी व्यापारियों को अन्याय से बचाने और उन्हें ज़िन्दा रखने का मीर क़ासिम को और कोई उपाय न सूझ सकता था। इस आज्ञा से मीर क़ासिम की बेबसी और उसकी प्रजापालकता दोनों प्रकट होती हैं।

असंख्य हिन्दोस्तानी व्यापारियों को इस आज्ञा से लाभ हुआ। वे अङ्गरेज़ों से कम ख़र्च में ज़िन्दगी बसर कर सकते थे और अपना माल सस्ता बेचकर भी लाभ कमा सकते थे। तिजारत का द्वार एक बार बिलकुल खुल गया, जिसके कारण चारों ओर से आ-आकर बङ्गाल में व्यापारियों की संख्या बढ़ने लगी और देश की तिजारत और कृषि दोनों फिर ज़ोरों के साथ उन्नति करने लगीं। स्वार्थपरायण अङ्गरेज़ों को यह कब सहन हो सकता था। फ़ौरन् कलकत्ते में काउन्सिल का फिर इजलास हुआ। तय हुआ कि नवाब की नई आज्ञा नाजायज़ है, और नवाब को मजबूर किया जाय कि अपनी इस आज्ञा को वापस लेकर देशी व्यापारियों से पूर्ववत् महसूल वसूल करे। ऐमयाट और हे नामक दो अङ्गरेज़ मुङ्गेर जाकर नवाब से मिलने और ये सब बातें नए सिरे से तय करने के लिए नियुक्त हुए।

बङ्गाल की प्रजा के साथ अत्याचारों और बङ्गाल के शासक के साथ ज़बरदस्तियों का प्याला अब लबालब भर चुका था। मीर क़ासिम को यह भी मालूम था कि बङ्गाल के तीनों प्रान्तों की दीवानी के अधिकार प्राप्त करने के लिए दिल्ली-सम्राट् के साथ अङ्गरेज़ों का गुप्त पत्र-व्यवहार बराबर जारी है। मीर क़ासिम और वन्सीटार्ट के दरमियान इस समय जो पत्र-व्यवहार हुआ, वह पढ़ने के योग्य है। मीर क़ासिम ने बार-बार अपने कर्मचारियों और अपनी प्रजा के ऊपर अङ्गरेज़ों के अत्याचारों की शिकायतें कीं। अत्यन्त करुण शब्दों में उसने लिखा है कि—"कम्पनी के जो तिलङ्गे सिपाही सम्राट् और सूबेदार की सहायता के लिए कह कर रक्खे गए थे और जिनके ख़र्च के लिए मैं कम्पनी को पचास लाख रुपए की ज़मींदारी दे चुका हूँ, वे अब देश भर में मेरे और मेरे आदमियों के विरुद्ध काम में लाए जा रहे हैं।" अन्त को एक पत्र में उसने साफ़-साफ़ लिखा कि—"मुझे मालूम हुआ है कि बहुत से अङ्गरेज़ एक दूसरा सूबेदार खड़ा करना चाहते हैं। × × × हर शख़्स पर ज़ाहिर है कि यूरोप वालों का एतबार नहीं किया जा सकता।"

मीर क़ासिम के साथ अङ्गरेज़ों के इस समय के व्यवहार की आलोचना करते हुए मालेसन लिखता है—

"किसी भी क़ौम के इतिहास में उनसे अधिक अनुचित, अधिक नीच और अधिक शर्मनाक काररवाइयों की मिसालें नहीं मिलतीं, जो काररवाइयाँ कि मीर जाफ़र को मसनद से हटाने के बाद तीन वर्ष तक कलकत्ते की अङ्गरेज़-गवर्नमेण्ट ने कीं।"*

मालेसन यह भी लिखता है कि—"मीर क़ासिम का एकमात्र क़ुसूर यह था कि उसने यूरोप-निवासियों के अत्याचारों से अपनी प्रजा की रक्षा करने का प्रयत्न

* "The annals of no nation contain records of conduct more unworthy, more mean, and more disgraceful, than that which characterised the English Government of Calcutta during the three years which followed the removal of Mir Jaffar."

—*The Decisive Battles of India*, p. 133.

किया।"* इस पर भी "मीर क़ासिम अपनी स्वाधीनता और प्रजा के सुख का नाश किए बिना किसी क़ीमत पर भी अङ्गरेज़ों के साथ अमन से रहने के लिए उत्सुक था।"†

किन्तु मीर क़ासिम के विरुद्ध साज़िश अभी पूरी तरह पकने न पाई थी, इसलिए उसके अन्तिम पत्र के उत्तर में वन्सीटार्ट ने मीर क़ासिम को लिख दिया—"यह क़िस्सा कि अङ्गरेज़ दूसरा नाज़िम खड़ा करना चाहते हैं, चालबाज़ लोगों की मनगढ़न्त है × × ×।"

इसके बाद जब वन्सीटार्ट ने मीर क़ासिम को लिखा कि ऐमयाट और हे एक नई सन्धि करने के लिए मुङ्गेर भेजे गए हैं, तो मीर क़ासिम ने उत्तर में लिखा कि—"हर साल नई सन्धि करना क़ायदे के ख़िलाफ़ है, क्योंकि इनसान की सन्धियों की कुछ उमरें होती हैं।" उसने यह भी लिखा कि—"एक ओर आप चारों तरफ़ फ़ौजें भेज रहे हैं और दूसरी ओर मुझसे बातचीत करने के लिए आदमी भेज रहे हैं?"

वास्तव में ऐमयाट और हे का मुङ्गेर भेजना केवल एक चाल थी। बङ्गाल के अन्दर तीसरी क्रान्ति के लिए अङ्गरेज़ों की तैयारी ज़ोरों के साथ जारी थी।

मीर क़ासिम को इतने में पता चला कि मेरे विरुद्ध साज़िशों का जाल स्वयं मेरी राजधानी के अन्दर पूरा फैल चुका है। वही जैन जगतसेठ, जो ६ वर्ष पूर्व सिराजुद्दौला के पतन में अङ्गरेज़ों का सहायक हुआ था, अब फिर इस नई साज़िश में शामिल था। पता चलते ही मीर क़ासिम ने जगतसेठ और उसके भाई स्वरूपचन्द दोनों को मुङ्गेर बुलाकर नज़रबन्द कर दिया। ये दोनों भाई मीर क़ासिम की प्रजा थे। अङ्गरेज़ों को इस पर एतराज़ करने का कोई अधिकार न था। किन्तु वन्सीटार्ट ने इस पर भी एतराज़ किया।

इस बीच ऐमयाट और हे दोनों दूत मुङ्गेर पहुँच गए। २४ मई, सन् १७६३ को इन दोनों ने कम्पनी की ओर से ग्यारह नई माँगें लिखकर मीर क़ासिम के सामने पेश कीं—(१) यह कि अङ्गरेज़-काउन्सिल ने तिजारती महसूल और एजण्टों के विषय में जो कुछ तय किया है, नवाब उसे ज्यों का त्यों लिखकर स्वीकार करे, (२) यह कि नवाब अपनी प्रजा अर्थात् देशी व्यापारियों पर नए सिरे से महसूल लगावे और अङ्गरेज़ों की बिना महसूल तिजारत जारी रहे, (३) यह कि अङ्गरेज़ों और उनके जिन-जिन आदमियों को नई आज्ञा के कारण व्यापारिक नुक़सान हुआ है, नवाब उन सबका हरजाना पूरा करे, (४) यह कि नवाब अपने उन सब कर्मचारियों को, जिन्हें अङ्गरेज़ कहें, दण्ड दे। इत्यादि, इत्यादि।

निस्सन्देह कोई स्वाभिमानी शासक इन शर्तों को स्वीकार न कर सकता था। ऐमयाट का व्यवहार भी नवाब के साथ अत्यन्त रूखा और धृष्टतापूर्ण था। यहाँ तक कि उसने मीर क़ासिम की शिकायतें सुनने तक से इन्कार कर दिया। वास्तव में अङ्गरेज़ युद्ध चाहते थे और युद्ध की पूरी तैयारी कर चुके थे। १४ अप्रैल, सन् १७६३ ही को अङ्गरेज़ों ने अपनी सेना को तैयार हो जाने की आज्ञा दे दी थी। पटने में एलिस नामक एक अङ्गरेज़ कम्पनी के एजण्ट की हैसियत से रहता था। एलिस ने वहाँ के नायब नाज़िम को दिक़ करना और बात-बात में उसकी आज्ञाओं का उल्लङ्घन करना शुरू कर दिया था। मीर क़ासिम ने अनेक बार वन्सीटार्ट से एलिस के व्यवहार की शिकायत की, किन्तु व्यर्थ। अब कलकत्ते से एलिस को लिख दिया गया कि तुम आज्ञा पाते ही पटने पर क़ब्ज़ा करने के लिए तैयार रहो। कम्पनी की काफ़ी सेना पहले ही पटने पहुँचा दी गई थी। उधर ऐमयाट साहब सुलह के लिए मुङ्गेर में ठहरे हुए थे और इधर हथियारों से भरी हुई कई किश्तियाँ एलिस की मदद के लिए कलकत्ते से पटने की ओर जा रही थीं। जब ये किश्तियाँ मुङ्गेर के पास से निकलीं, नवाब उन्हें देखकर चौंक गया। उसने किश्तियों को आगे बढ़ने से रोक दिया और २ जून, सन् १७६३ को वन्सीटार्ट को लिखा कि—"कम्पनी की नई माँगें बेजा और पहली सन्धियों के विरुद्ध हैं × × × पटने की अङ्गरेज़ी फ़ौज या तो कलकत्ते वापस बुला ली जावे और या मुङ्गेर में रक्खी जावे, नहीं तो मैं निज़ामत छोड़ दूँगा।"

* "Whose only fault . . . was his endeavour to protect his subjects from European extortion."

—*Ibid*, p. 136.

† "Mir Kassim, still anxious for peace at any price short of sacrificing his own independence and the happiness of his people."

—*Ibid*, p. 140.

इसके जवाब में ऐमयाट ने मीर क़ासिम से साफ़-साफ़ कहा कि बजाय वापस बुलाने के पटने में अङ्गरेज़ी फ़ौज बढ़ाई जायगी। हथियारों की किश्तियाँ मुङ्गेर में रुकते ही कलकत्ते की काउन्सिल ने, जो केवल एक बहाने के इन्तज़ार में थी, ऐमयाट और हे को वापस बुला लिया और एलिस को आज्ञा दे दी कि तुम फ़ौरन् पटने पर हमला करके नगर पर क़ब्ज़ा कर लो।

युद्ध का प्रारम्भ

युद्ध का प्रारम्भ हो गया। २४ जून की रात को अचानक हमला करके एलिस ने पटने पर क़ब्ज़ा कर लिया। मीर क़ासिम की बरदाश्त की कोई हद न थी। इतिहास-लेखक ऐल्फ़िन्सटन लिखता है कि—"अगणित कोप-कारणों के होते हुए भी उसने धैर्य और बरदाश्त से काम लिया।"* किन्तु अब मजबूर होकर उसे एलिस के विरुद्ध सेना भेजनी पड़ी। मीर क़ासिम की सेना ने पटने पहुँचकर फिर से नगर अङ्गरेज़ों से विजय कर लिया। इस बार की लड़ाई में कम्पनी के लगभग ३०० यूरोपियन और ढाई हज़ार हिन्दोस्तानी सिपाही काम आए। एलिस और उसके कई यूरोपियन साथी १ ली जुलाई को क़ैद करके मुङ्गेर पहुँचा दिए गए।

ऐमयाट चुपके से किश्ती में बैठकर कलकत्ते के लिए रवाना हो गया। मीर क़ासिम ने हे को मुङ्गेर में रोक लिया। मालूम होता है कि मीर क़ासिम ने अपने आदमियों को हुकुम भेज दिया कि ऐमयाट को भी रोक कर वापस मुङ्गेर भेज दिया जाय। क़ासिमबाज़ार के निकट नवाब के एक कर्मचारी मुहम्मद तक़ी ख़ाँ ने अपने एक आदमी को भेजकर ऐमयाट से खाना खाने के बहाने किनारे पर आने की प्रार्थना की। ऐमयाट ने इनकार किया और उसकी किश्तियाँ बीच धार से चलती रहीं। एक दूसरा उच्च कर्मचारी भेजा गया, जिसने किनारे से फिर कहा कि खाना तैयार है और यदि आप सेनापति मुहम्मद तक़ी ख़ाँ की प्रार्थना स्वीकार न करेंगे तो उन्हें दुख होगा। ऐमयाट ने फिर इनकार कर दिया। इसके बाद किनारे के अफ़सरों ने किश्तियों को रुकने का स्पष्ट हुकुम दिया। जवाब में ऐमयाट ने वहीं से किनारे की ओर गोलियों की बौछार शुरू कर दी। नवाब के आदमियों ने अब बाज़ाब्ता किश्तियों पर पहुँचकर बदला लिया। उस हत्याकाण्ड में ऐमयाट का भी वहीं पर काम तमाम हो गया।

२८ जून को मीर क़ासिम ने वन्सीटार्ट और उसकी काउन्सिल के नाम इस प्रकार पत्र लिखा—

"× × × रात के डाकू की तरह मिस्टर एलिस ने पटने के क़िले पर हमला किया, वहाँ के बाज़ार को और तमाम व्यापारियों और नगर के लोगों को लूटा और सुबह से तीसरे पहर तक लूट और क़त्ल जारी रक्खी। × × × चूँकि आप लोगों ने बेइन्साफ़ी और ज़ुल्म के साथ शहर को रौंद डाला है, लोगों को बरबाद किया है और कई लाख का माल लूट लिया है, इसलिए अब इन्साफ़ यह है कि कम्पनी ग़रीबों का नुक़सान भर दे, जैसा पहले कलकत्ते में हो चुका है। आप ईसाई लोग विचित्र दोस्त निकले। आपने सन्धि की, उस पर ईसामसीह के नाम से क़सम खाई। इस शर्त पर कि आपकी सेना सदा मेरा साथ देगी और मेरी सहायता करेगी, आपने अपनी सेना के ख़र्च के लिए मुझसे इलाक़ा लिया। असलियत में मेरे ही नाश के लिए आप फ़ौज रख रहे थे, क्योंकि उसी फ़ौज के हाथों ये सब कार्य हुए हैं। × × × इसके अलावा कई साल से अङ्गरेज़-गुमाश्तों ने मेरी निज़ामत के अन्दर जो-जो ज़ुल्म और ज़्यादतियाँ की हैं, जो बड़ी-बड़ी रक़में लोगों से ज़बरदस्ती वसूल की हैं और जो नुक़सान किए हैं, मुनासिब और इन्साफ़ यह है कि कम्पनी इस समय उस सबका हरजाना दे। आपको सिर्फ़ इतनी ही तकलीफ़ करने की ज़रूरत है कि जिस तरह से बर्धमान और दूसरे इलाक़े आपने लिए थे, उसी तरह मुझ पर इनायत करके आप उन्हें वापस लौटा दीजिए।"*

निस्सन्देह सर्वथा मजबूर होकर मीर क़ासिम ने अब कड़ाई करने का पक्का निश्चय कर लिया।

७ जुलाई को यह पत्र कलकत्ते पहुँचा। उसी रोज़ कलकत्ते की अङ्गरेज़-काउन्सिल की ओर से मीर क़ासिम के साथ युद्ध का एलान प्रकाशित हुआ, जिसमें प्रजा को यह सूचना दी गई कि मीर क़ासिम की जगह मीर

---

* ". . . he conducted himself under innumerable provocations with temper and forbearance, . . ."
—*Rise of the British power in India* by Elphinstone, pp. 390, 391.

* Long's *Selections*, pp. 325, 326.

जाफ़र को अब फिर से बङ्गाल की मसनद पर बैठा दिया गया है। नवाब मीर जाफ़र ही के नाम पर बङ्गाल भर से सेना जमा की गई और मीर जाफ़र ही के नाम पर प्रजा से अङ्गरेज़ी सेना का साथ देने के लिए कहा गया। किन्तु इस बाक़ायदा एलान से पहले ही पटना विजय भी हो चुका था और फिर से छिन भी चुका था। यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि कलकत्ते के अङ्गरेज़-व्यापारियों की काउन्सिल को बङ्गाल के सूबेदार को मसनद से उतारने या दूसरा सूबेदार नियुक्त करने का अधिकार कभी किसी ने न दिया था।

कम्पनी की सेना मेजर एडम्स के अधीन ६ जुलाई को अर्थात् युद्ध के एलान से दो दिन पहले कलकत्ते से मुर्शिदाबाद की ओर रवाना हुई। मीर क़ासिम की सेना सिपहसालार मुहम्मद तक़ी ख़ाँ के अधीन मुङ्गेर से चली। तक़ी ख़ाँ एक वीर और योग्य सेनापति था। किन्तु लिखा है कि उसकी तमाम तजवीज़ों में बात-बात में मुर्शिदाबाद का नायब नाज़िम सय्यद मुहम्मद ख़ाँ, जो ज़ाहिर है, अङ्गरेज़ों से मिला हुआ था, रुकावटें डालता रहता था। स्वयं उसकी सेना के अन्दर अङ्गरेज़ काफ़ी सफलता के साथ विश्वासघात के बीज बो चुके थे। तीन स्थानों पर दोनों ओर की सेनाओं में कई छोटी-बड़ी लड़ाइयाँ हुईं। इन लड़ाइयों का विस्तृत वृत्तान्त "सीअरुल मुताख़रीन" नामक ग्रन्थ में दिया हुआ है। उस ग्रन्थ में मुसलमान-सेना के अन्दर के एक ख़ास देशघातक मिर्ज़ा ईरज ख़ाँ का ज़िक्र आता है, जिसने भीतर ही भीतर अङ्गरेज़ों से मिलकर मीर क़ासिम और मुहम्मद तक़ी ख़ाँ के साथ दग़ा की। क़रीब दो सौ यूरोपियन और दूसरे ईसाई, जो नवाब की सेना में विविध पदों पर और ख़ासकर तोपख़ाने में नौकर थे, ऐन मौक़े पर शत्रु की ओर जा मिले। सारांश यह कि इन लड़ाइयों में से एक में मुहम्मद तक़ी ख़ाँ भी मार डाला गया। इन्हीं लड़ाइयों के सम्बन्ध में मालेसन लिखता है कि—"अङ्गरेज़ों की सफलता में जितनी सहायता भारतीय नेताओं और नरेशों की परस्पर ईर्ष्या से मिली है, उतनी दूसरी किसी भी चीज़ से नहीं मिली।"*

ऊदवानाला की लड़ाई

मीर क़ासिम की सेना ने अब ऊदवानाला नामक ऐतिहासिक स्थान पर अपना अन्तिम पड़ाव किया। प्राकृतिक स्थिति और मीर क़ासिम की दूरदर्शिता दोनों ने मिलकर इस स्थान को अत्यन्त सुरक्षित और अभेद्य बना रक्खा था। एक ओर गङ्गा थी, दूसरी ओर ऊदवानाला नाम की गहरी नदी, जो गङ्गा में गिरती थी, तीसरी ओर राजमहल की दुरारोह पहाड़ियाँ और चौथी ओर मीर क़ासिम की बनवाई हुई ज़बरदस्त खाड़ियाँ और क़िलेबन्दी, जिसके ऊपर सौ से ऊपर मज़बूत तोपें लगी हुई थीं। पहाड़ियों की तलहटी में खाड़ियों से ऊपर की ओर एक झील और एक लम्बी-चौड़ी दलदल थी। इस दलदल के अन्दर से एक अत्यन्त पेचदार रास्ता दुर्ग से बाहर आने-जाने का था, जिसका अङ्गरेज़ी सेना को किसी तरह पता न चल सकता था। एक महीने तक मीर क़ासिम की सेना इस दुर्ग के अन्दर और कम्पनी की सेना, जिसके साथ बूढ़ा मीर जाफ़र भी था, ऊदवानाला के बाहर पड़ी रही, किन्तु न अङ्गरेज़ अपनी तोपों के गोलों से सङ्गीन क़िलेबन्दी पर किसी तरह का असर पैदा कर सके और न भीतर की सेना को ज़रा भी हानि पहुँचा सके। दूसरी ओर मिरज़ा नजफ़ ख़ाँ नामक एक साहसी और परहेज़गार मुसलमान सेनापति प्रतिदिन रात के पिछले पहर उसी दलदल के रास्ते आकर अङ्गरेज़ी सेना पर धावा करता और अनेकों को ख़त्म कर तथा लूट का माल लेकर उसी रास्ते लौट जाता। अङ्गरेज़ी सेना किसी तरह उसका पीछा न कर पाती थी। युद्ध की सामग्री भी अङ्गरेज़ों की निस्बत मीर क़ासिम की सेना के पास कहीं अधिक उत्तम थी। अङ्गरेज़ इतिहास-लेखक ब्रूम लिखता है कि भारत की बनी हुई जो बन्दूक़ें इस समय मीर क़ासिम की सेना के पास थीं, वह अङ्गरेज़ी सेना की, इङ्गलिस्तान की बनी हुई बन्दूक़ों से धातु, बनावट, मज़बूती, उपयोगिता इत्यादि सब बातों में कहीं बढ़िया थीं।* ज़ाहिर था कि ईमानदारी के साथ अङ्गरेज़ किसी तरह मीर क़ासिम पर विजय न प्राप्त कर सकते थे।

मीर क़ासिम की सेना का एक ख़ास दोष, जो उसके

---

* "Few things have more contributed to the success of the English than the action of jealousy of each other of the native princes and leaders of India."

—*Ibid*, p. 150.

* *History of the Bengal Army*, by Broome, p. 351.

लिए घातक सिद्ध हुआ, यह था कि उसने अनेक यूरोपियन और आरमीनियन ईसाइयों को अपनी सेना के अनेक बड़े-बड़े ओहदों पर नियुक्त कर रक्खा था। ईसा की ११ वीं सदी से लेकर, जब कि यूरोप की कई ईसाई-शक्तियों ने मिलकर पहली बार मुसलमानों से जैरूसेलम (बैतुलमुक़द्दस) छीनना चाहा, आज पर्यन्त हज़रत ईसा और हज़रत मुहम्मद के अनुयायियों के बीच प्रायः लगातार संग्राम होते रहे हैं। ईसाई-ताक़तों ने अनेक मुसलमान-राज्यों के स्वतन्त्र अस्तित्व को मिटाकर अनेक बार अपना जुआ मुसलमान-क़ौमों के कन्धों पर रक्खा है। ईसाइयों और मुसलमानों के इस सदियों के विरोध के अतिरिक्त यूरोपियनों का ख़ासकर किसी यूरोपियन क़ौम के विरुद्ध अपने किसी एशियाई स्वामी के साथ वफ़ादारी कर सकना लगभग असम्भव है। इस सचाई को न समझ सकना अनेक भारतीय तथा अन्य एशियाई शासकों के लिए घातक साबित हुआ है।

कलकत्ते में इस समय आरमीनिया का एक मशहूर ईसाई-सौदागर ख़ोजा पेतरूस रहता था। इस सौदागर का एक भाई ख़ोजा ग्रिगरी मीर क़ासिम की सेना में एक अफ़सर था। और भी कई आरमीनियन ईसाई इस समय मीर क़ासिम की सेना में नौकर थे। मेजर एडम्स ने ख़ोजा पेतरूस की मारफ़त गुप्त पत्र-व्यवहार द्वारा इन सब लोगों को अपनी ओर फोड़ लिया।

इनके अलावा मीर क़ासिम की सेना में एक अङ्गरेज़ सैनिक भी था, जो कुछ समय पहले अङ्गरेज़ी सेना को छोड़कर नवाब के यहाँ भरती होगया था। इस अङ्गरेज़ को अपनी सेना में भरती कर लेना मीर क़ासिम के नाश का मूल कारण साबित हुआ। उसने मिरज़ा नजफ़ ख़ाँ के आने-जाने के मार्ग को धीरे-धीरे अच्छी तरह देख लिया और एक दिन, जबकि मालूम होता है दुर्ग के भीतर के अन्य ईसाई तथा ग़ैर-ईसाई विश्वासघातकों के साथ समस्त योजना पक्की की जा चुकी थी, ४ सितम्बर की रात को क़रीब दस बजे यह शख़्स नवाब की सेना से निकल कर अङ्गरेज़ों की ओर चला आया और वहाँ से शत्रु की सेना को साथ ले, उसी मार्ग से रातोंरात अचानक नवाब की सेना पर आ टूटा। क़िले के अन्दर के अनेक अफ़सर शत्रु से मिले हुए थे और अनेक के विषय में "सीअरुल-मुताख़रीन" से पता चलता है कि वे अपने स्थान की अभेद्यता और शत्रु की अशक्तता पर अत्यधिक भरोसा करके अपने कर्त्तव्य से असावधान हो गए थे। ऐसी स्थिति में सेना का कर्त्तव्य-विमूढ़ हो जाना स्वाभाविक था। परिणाम यह हुआ कि मीर क़ासिम के पूरे पन्द्रह हज़ार सैनिक उस रात की लड़ाई में काम आए।

इस अङ्गरेज़ विश्वासघातक के कार्य के विषय में करनल मालेसन लिखता है कि—"केवल एक व्यक्ति के इस कार्य ने अङ्गरेज़ों के नैराश्य को विश्वास में बदल दिया; और इस कार्य के परिणाम ने मीर क़ासिम की सेना के आत्म-विश्वास को नैराश्य में बदल दिया। अङ्गरेज़ी सेना के लिए इस व्यक्ति ने इस मौक़े पर ईश्वर का काम किया।"*

"जनरल एडम्स ने मीर क़ासिम की सेना को केवल विजय ही नहीं किया, बल्कि उसका संहार कर डाला।"† मीर क़ासिम की लगभग चार सौ तोपें इस युद्ध में अङ्गरेज़ों के हाथ आईं।

ऊदवानाला ही विदेशी व्यापारियों के विरुद्ध बङ्गाल के भारतीय सूबेदारों की आशा का अन्तिम आधार था। ४ सितम्बर, सन् १७६३ की रात को वह आशा सदा के लिए टूट गई। जो चीज़ सिराजुद्दौला के लिए प्लासी साबित हुई, वही मीर क़ासिम के लिए ऊदवानाला साबित हुआ, और दोनों स्थानों पर लगभग एक ही से उपायों द्वारा अङ्गरेज़-व्यापारियों ने बङ्गाल की सरकारी सेना पर विजय प्राप्त की।

ऊदवानाला की पराजय का एक कारण यह भी बताया जाता है कि उस रात मीर क़ासिम स्वयं अपनी सेना के साथ दुर्ग के अन्दर मौजूद न था। अङ्गरेज़ इतिहास-लेखक बोल्ट्स की राय है कि यदि मीर क़ासिम स्वयं अपने अफ़सरों को सावधान रखने और अपने सैनिकों को प्रोत्साहित करने के लिए मौजूद होता तो—"शायद ही नहीं, वरन् बहुत ज़्यादा सम्भव है कि उस

---

* "It was the act of a single individual which converted the despair of the English into confidence; it was the consequence of that act which changed the confidence of Mir Kassim's army into despair. The individual on this occasion performed the divine function for the English army."

—*Ibid*, p. 157

† *Ibid*, p. 160.

दिन से अङ्गरेज़-कम्पनी के पास इन प्रान्तों में एक फ़ुट ज़मीन भी न रह जाती।"*

मीर क़ासिम के शासन का अन्त

ऊद्वानाला की पराजय मीर क़ासिम के लिए एक बहुत बड़ा धक्का था। तथापि उसने विदेशियों की अधीनता स्वीकार न की और न वह इतनी जल्दी हिम्मत हारा। ऊद्वानाला के बाद उसने मुङ्गेर के क़िले को सँभाला। यह क़िला भी अत्यन्त मज़बूत था। उसकी रक्षा का उचित प्रबन्ध कर मीर क़ासिम अज़ीमाबाद (पटना) के लिए रवाना हो गया। "सीअरुल-मुताख़रीन" से पता चलता है कि मीर क़ासिम के जाते ही मुङ्गेर के क़िलेदार अरबअली ख़ाँ ने नक़द रिशवत लेकर अपना क़िला चुपचाप अङ्गरेज़ों के सुपुर्द कर दिया। अङ्गरेज़ों ने मुङ्गेर पर क़ब्ज़ा जमाकर अब मीर क़ासिम का पीछा किया। महाराजा कल्यानसिंह की पुस्तक "ख़ुलासतुल तवारीख़" में लिखा है कि अज़ीमाबाद-क़िले के संरक्षक मीर मुहम्मदअली ख़ाँ ने अपने लिए पाँच सौ रुपए मासिक पेन्शन कम्पनी से मञ्ज़ूर कराकर बिना विरोध के वहाँ का क़िला भी शत्रु के हवाले कर दिया।

असहाय मीर क़ासिम को इस समय अपने चारों ओर सिवाय दग़ा के और कुछ नज़र न आता था। अङ्गरेज़ों को अब केवल दो बातों की चिन्ता थी। एक एलिस इत्यादि जो अङ्गरेज़ मीर क़ासिम के पास अभी तक क़ैद थे, उन्हें छुड़ा लेना और दूसरे किसी प्रकार मीर क़ासिम को गिरफ़्तार करना। १६ सितम्बर, सन् १७६३ को एडम्स और कारनक ने मीर क़ासिम के एक फ़्रान्सीसी मुलाज़िम जाँती (Gentil) को इस मज़मून का एक पत्र लिखा—

"मुसलमान जब कभी बेख़ौफ़ ऐसा कर सकते हैं, सदा हमारे सहधर्मियों और यूरोप-निवासियों के साथ क्रूर से क्रूर पाशविकता का व्यवहार करते हैं। किसी ईसाई के लिए मुसलमानों की नौकरी करना बड़ी ज़िल्लत का काम है। हमारा यह भी अनुमान है कि किसी बहुत ही ज़बरदस्त ज़रूरत से मजबूर होकर ही आपने इतनी ज़िल्लत की नौकरी स्वीकार की होगी। अब ऐसी कष्टकर ग़ुलामी से बच निकलने का और हमारी क़ौम की फिर से मित्रता लाभ करने का आपके लिए अच्छा मौक़ा है। आप इससे इनकार नहीं कर सकते कि हमारी क़ौम के साथ आपने बहुत बेजा सुलूक किया है (जबकि आजकल हमारी और आपकी क़ौमों में सुलह है।) यदि आप हमारे आदमियों को क़ासिमअली ख़ाँ के हाथों से निकाल कर हमारे पास भेजने की तदबीर कर सकें, तो आप अङ्गरेज़ों की कृतज्ञता पर पक्का भरोसा रखिए; और हम आपको पचास हज़ार रुपए फ़ौरन् देने का वादा करते हैं।"*

"सीअरुल-मुताख़रीन" में लिखा है कि इसके बाद मीर क़ासिम को किसी तरह गिरफ़्तार करने की अङ्गरेज़ों को चिन्ता हुई। वन्सीटार्ट और वारन हेस्टिंग्स ने कलकत्ते के ईसाई-सौदागर ख़ोजा पेतरूस से, जिसे आग़ा बेदरूस भी कहते थे, ख़ोजा ग्रिगरी के नाम, जिसे गुरगिन ख़ाँ भी कहते थे, इस सम्बन्ध में एक पत्र लिखवाया। अचानक एक दिन रात को एक बजे मीर क़ासिम के एक विश्वस्त जासूस ने उसे जगाकर ख़बर दी—"आप बिछौने पर पड़े क्या कर रहे हैं, आपका सेनापति गुरगिन ख़ाँ आपको साफ़ फ़िरङ्गियों के हाथों में बेच रहा है!

* ". . . it is more than probable that, the English Company would have been left, from that day, without a single foot of ground in these Provinces."

—*Consideration on Indian Affairs*, by Bolts, p. 43.

* "We are persuaded also that it must have been the most absolute necessity only which could have engaged you in so dishonourable a service to a Christian as that of the Moors, who always treat with the grossest brutality those of our religion and Europeans when it is in their power to do it with impunity. A favourable opportunity now offers to enable you to rid yourself of so irksome a slavery and to reconcile yourself with our nation, towards which you can not deny but you have acted very improperly (and which is now at peace with yours). If you can contrive means for the delivery of our gentlemen from the power of Cossim Ally Khan and will convey them to us, you may place a firm reliance on the gratitude of the English; and we promise you fifty thousand Rupees immediately."—Letter dated 19th September 1763, from Adams and Carnac to one Monsieur Gentil in the employ of Meer Kassim.

—Long's *Records*, pp. 332, 333.

कुछ बाहर के लोगों के साथ और मालूम होता है कि भीतर के लोगों, यानी आपके क़ैदियों के साथ भी उसकी साज़िश हो चुकी है।"

अभी तक एलिस और उसके अङ्गरेज़-साथियों के साथ मीर क़ासिम ने बड़ी उदारता का व्यवहार किया था। इन खुले राजद्रोहियों को ख़त्म कर देने के बजाय वह तीन महीने से बराबर उन्हें आदरपूर्वक अपने साथ रक्खे था और खिला-पिला रहा था। किन्तु "सीअरुल-मुताख़रीन" के अनुसार जब उसने देखा कि ये सब लोग अब भी मेरे विरुद्ध एक गहरी साज़िश कर रहे हैं, और बाहर से शस्त्रों वग़ैरह का भी गुप्त प्रबन्ध कर चुके हैं, तो उसने मजबूर होकर पटने में ख़्वोजा ग्रिगरी को, एलिस और उसके तमाम साथियों को—केवल एक अङ्गरेज़-डॉक्टर फ़ुलरटन को छोड़कर—जगतसेठ और उसके भाई महाराजा स्वरूपचन्द को यानी उन सबको, जो इस साज़िश में शामिल थे, क़त्ल करवा दिया। कहा जाता है कि ख़्वोजा ग्रिगरी इस साज़िश का सरग़ना था।

इसके बाद जब अङ्गरेज़ पटने की ओर बढ़े तो मीर क़ासिम ने कर्मनासा नदी को पार कर कुछ सेना और तोपख़ाने सहित ४ दिसम्बर, सन् १७६३ को अपनी सरहद से निकल कर नवाब शुजाउद्दौला के सूबे अवध में प्रवेश किया। तीन वर्ष तक वह बङ्गाल का सूबेदार रहा। उसका सारा शासन-काल आपत्तियों से भरा हुआ था। अब इस प्रकार उसके शासन का अन्त हुआ। निस्सन्देह वह योग्य, वीर तथा अपने देश और प्रजा दोनों का सच्चा हितचिन्तक था। सिराजुद्दौला के समान वह विश्वासघात का शिकार हुआ। उसके शासन-काल और पतन के समस्त वृत्तान्त को पढ़कर और उसके विरोधियों की समस्त करतूतों की तुलना कर प्रत्येक निष्पक्ष मनुष्य के चित्त में उसकी ओर दया, प्रेम तथा सहानुभूति का उत्पन्न होना स्वाभाविक है। वास्तव में बहुत दरजे तक वह अन्तिम वीर था, जिसने बङ्गाल की स्वाधीनता की रक्षा के लिए एक बार जी-तोड़ प्रयत्न किया और इसी प्रयत्न में अपने आपको मिटा डाला। *

* भारत में अङ्गरेज़ी राज्य नामक अप्रकाशित पुस्तक का एक अध्याय, जो शीघ्र ही प्रकाशित होने वाली है।

—स० 'चाँद'

याचना

[रचयिता—श्रीमती पार्वती देवी जी शुक्ला]

(१)

इस अभिलाषी आकुल चित को,
सुखद-सान्त्वना दे-देकर।
रक्खा है विश्वास-गोद में,
शान्ति-सुधा से, से-से कर।

(२)

बहुत समय हो गया दीनता—
के दुख में दहते-दहते।
बहुत विषम-विपदाओं के—
घातक-प्रहार सहते-सहते!

(३)

यों करते साधन-आराधन,
वन्दन-अभिनन्दन तेरा।
बहुत हुआ अब भला इधर भी,
नाथ! लगा दो फिर फेरा॥
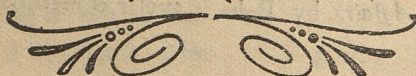
प्रणय-कल्पना

कपड़े के इन दो भागों को सीती हूँ भगवन् जैसे !
सी जाता जो मेरे मन से ! प्रियतम का भी मन वैसे !!

मूर्खराज

चतुर्वेदी जी की घासलेट-चर्चा

"अबलाओं का इन्साफ़" की निष्पक्ष आलोचना

[ले० श्री० जनार्दन भट्ट जी, एम० ए०]

"विशाल भारत" के सुयोग्य और श्रद्धेय सम्पादक पं० बनारसीदास जी चतुर्वेदी ने कुछ दिनों से हिन्दी-संसार में एक नया शब्द गढ़ डाला है, जो हिन्दी की अख़बारी दुनिया में "घासलेटी साहित्य" के नाम से मशहूर हो रहा है। जहाँ तक मुझे मालूम हुआ है, चतुर्वेदी जी का मतलब "घासलेटी साहित्य" से अश्लील साहित्य का है। पर घासलेट से अश्लीलता का अर्थ कैसे निकला तथा अश्लीलता का भाव प्रकट करने के लिए चतुर्वेदी जी को इसी शब्द का सहारा क्यों लेना पड़ा, यह मेरी समझ में न आया। आगे चलकर हिन्दी का कोष लिखने वालों को यह शब्द ज़रूर एक बड़ी भारी पहेली या बला साबित होगा। कोई इसकी उत्पत्ति शायद "घास" से निकालेंगे और कोई "लीद" से और कोई "घास-लीद" दोनों से। उनकी मेहनत को हलका करने और उन्हें इस झंझट से बचाने के लिए मैं "घासलेट" शब्द की उत्पत्ति यहाँ पर लिखे देता हूँ। "घासलेट" अङ्गरेज़ी शब्द "गैस-लाइट" (Gas Light) से निकला है और वह केरोसिन या मिट्टी के तेल के लिए बम्बई में इस्तेमाल होता है। अस्तु, मिट्टी के तेल और अश्लीलता के बीच क्या रिश्ता है, यह चतुर्वेदी जी ही बतला सकते हैं! शायद उनको ऐसे शब्द की तलाश थी जो वज़न में पूरा "चॉकलेट" की तरह उतरे और साथ ही अश्लीलता का अर्थ भी प्रकट कर सके। सचमुच "चॉकलेट" और "घासलेट" में वज़न ख़ूब बैठता है, "लेट" दोनों में समान है, ख़ाली "चॉक" और "घास" का फ़र्क़ है।

आजकल जैसे हर बात में अराजकता का भूत सरकार को दिखाई पड़ा करता है, उसी तरह हिन्दी के कुछ लेखकों को बहुत सी पुस्तकों और लेखों में गन्दगी का परनाला बहता नज़र आता है। वे हर बात में अश्लीलता की बू सूँघा करते हैं। ऐसे लोगों में हमारे श्रद्धेय मित्र पं० बनारसीदास जी चतुर्वेदी भी हैं। मेरा चतुर्वेदी जी से नम्र निवेदन है कि यदि उन्हें अश्लीलता की इतनी तलाश है, तो उनको वेद और पुराण से शुरू करना चाहिए; क्योंकि जितना इन ग्रन्थों का प्रचार और प्रभाव जनता के बीच है, उतना "चॉकलेट" जैसी पुस्तकों का नहीं। ख़ैर, वेद को जाने दीजिए, क्योंकि उसके मन्त्रों के भिन्न-भिन्न अर्थ हो सकते हैं। पुराण को लीजिए। पुराण अश्लीलताओं से भरे पड़े हैं। नमूने के तौर पर ब्रह्मा का अपनी लड़की के पीछे भागना, महादेव का मोहनी के पीछे दौड़ना, इन्द्र का गौतम ऋषि की पत्नी का धर्म भ्रष्ट करना, तथा चौर-जार-शिरोमणि भगवान् कृष्ण का गोपियों के साथ विहार करना, आदि पुराणों में पढ़िए और अश्लीलता की बानगी का मज़ा चखिए। संस्कृत के महाकाव्यों और नाटकों को भी पढ़िए जो श्रृङ्गार-रस से भरे हुए हैं। ढूँढ़ने से उनमें बहुत सी अश्लीलता की सामग्री मिल जायगी। परन्तु अश्लीलता के पीछे लाठी लेकर न पड़ने वालों को उनमें कविता का अलौकिक आनन्द प्राप्त होगा और अनेक उपयोगी शिक्षाएँ भी मिलेंगी। मिसाल के तौर पर महाकवि भवभूति का "उत्तर रामचरित" लीजिए। संस्कृत के कवियों में भवभूति सबसे अधिक पवित्र चरित्र और उनका "उत्तर रामचरित" सबसे अधिक अश्लीलता-रहित ग्रन्थ माना जाता है। पर वह भी कुछ अश्लीलतान्वेषी सज्जनों की दृष्टि में अश्लीलता से ख़ाली नहीं है। उत्तर रामचरित का वह श्लोक, जो अश्लील समझा जाता है, यह है:—

> किमपि किमपि मन्दं मन्दमासत्ति योगात्,
> अविरलित कपोलं जल्पतोर क्रमेण।
> अशिथिल परिरम्भव्यापृतैकैकदोष्णो,
> रविदितगतयामा रात्रिरेव व्यरंसीत्॥

अर्थात्—रामचन्द्र जी सीता से कहते हैं—"प्रिये,

यह वही प्रस्रवण पर्वत है, जहाँ बनवास के समय हम लोग रहते थे और जहाँ हम दोनों एक दूसरे का गाढ़ आलिङ्गन किए हुए तथा एक दूसरे के गाल से गाल सटाए हुए रात की रात बिता देते थे, पर हम लोगों की बात ख़तम न होती थी। रात बीत जाती थी, पर बात न बीतती थी।"

यह श्लोक कुछ लोगों की राय में अश्लील माना जाता है और भवभूति की लेखनी से न लिखा जाना चाहिए था। एक लिहाज़ से देखा जाय तो सचमुच इसमें अश्लीलता की पुट मिली हुई मालूम पड़ती है। परन्तु जिनका ध्यान अश्लीलता की ओर नहीं, बल्कि कवित्व की ओर है वह इसमें अश्लीलता नहीं, बल्कि कविता का अनोखा आनन्द पाते हैं। यही हाल हिन्दी के बहुत से काव्य-ग्रन्थों का भी है। दो-एक को छोड़कर, शायद कोई हिन्दी का काव्य ऐसा न होगा जिसमें कुछ न कुछ अश्लीलता न पाई जाती हो। पर अश्लीलता उनके लिए है जो अश्लीलता की खोज के लिए उन्हें पढ़ते हैं। बाक़ी काव्य का और भक्ति का वही स्वाद उनमें मिलता है, जो संस्कृत के काव्यों और ग्रन्थों में मिलता है। यही बात "चॉकलेट" जैसी पुस्तकों के लिए भी कही जा सकती है। किसी पुस्तक के सम्बन्ध में कुछ फ़ैसला करने के पहले हमें यह देखना चाहिए कि वह किस उद्देश्य से लिखी गई है। पुस्तक लिखने में लेखक का उद्देश्य क्या है—अश्लीलता फैलाना या किसी व्यभिचार, अत्याचार या कुरीति की ओर समाज का ध्यान खींचकर उसे सुधारना? उसके कुछ फ़िक़रे इधर से और कुछ फ़िक़रे उधर से लेकर अपनी पहले ही से मान ली हुई राय के मुताबिक़ फ़ैसला न करना चाहिए, बल्कि कुल पुस्तक पढ़ लेने के बाद देखना चाहिए कि उसका क्या असर हम पर पड़ता है।

यही नहीं, जिस कुरीति की ओर जनता का ध्यान खींचने के लिए वह पुस्तक लिखी गई है, उसकी ओर ध्यान खींचने में वह सफल हुई या नहीं, या जिस किसी अच्छे उद्देश्य से लिखी गई है उसको 'अन्ततो गत्वा' कुछ न कुछ पूरा करने में सफलता प्राप्त की है या नहीं। "चॉकलेट" को ही लीजिए। मैंने इस पुस्तक को पढ़ा नहीं है, पर जहाँ तक चतुर्वेदी जी की आलोचना से पता चला है, यह पुस्तक सदभिप्रायपूर्ण उद्देश्य से लिखी गई है, न कि जनता को अश्लीलता की ओर ले जाने के उद्देश्य से। जहाँ तक मुझे ज्ञात हुआ है, लेखक का उद्देश्य समाज का ध्यान एक ऐसे महाघृणित और अस्वाभाविक पाप की ओर खींचने का है, जो समाज में महाभयङ्कर रूप से फैला हुआ है और जिसका पर्दा फ़ाश करने की हिम्मत, झूठी लज्जा या अश्लीलता के डर से बड़े-बड़े अगुआ, उपदेशक या लेखक की भी नहीं पड़ती। पर यह एक ऐसा व्यभिचार है, जो समाज को घुन की तरह खोखला बना रहा है। न जाने कितने सुकुमार, सुन्दर और कोमल-वयस्क बालक, जो आगे चलकर देश की भावी आशाओं को सफल बना सकते थे, विषय-लम्पट तथा अस्वाभाविक पापाचार में रत, नर-पिशाचों की घृणित काम-तृष्णा के शिकार बनकर प्रति दिन शारीरिक, मानसिक और नैतिक पतन के गढ़े में गिर रहे हैं और समाज अपने आसन से ज़रा भी नहीं डिगता। विधवाओं के ऊपर जो अत्याचार होते हैं, उनसे कहीं बढ़कर ये अत्याचार हैं जो समाज के नवयुवक बालकों के ऊपर हो रहे हैं। इस अप्राकृतिक पाप के अपराधी यदि साधारण, असभ्य और अपढ़ लोग ही होते तो भी ग़नीमत थी, परन्तु पढ़े-लिखे, सभ्य और शिष्ट लोगों में भी यह पाप उसी भयङ्कर रूप में फैला हुआ है जैसा कि अशिक्षित और असभ्य लोगों में। कोई फ़िर्क़ा ऐसा नहीं, कोई समाज ऐसा नहीं, कोई पेशा ऐसा नहीं, जो इन नर-पिशाचों से ख़ाली हो। अध्यापकों में ये पाए जाते हैं, वकीलों में ये देखे जाते हैं, डॉक्टरी पेशा इनसे ख़ाली नहीं, सम्पादकों में भी कई इस फ़न के उस्ताद मिलते हैं। कहाँ तक कहें, कोई समुदाय ऐसा नहीं, जहाँ इन नर-पिशाचों का जाल न बिछा हो! मैं एक ऐसे सज्जन को जानता हूँ, जो देखने में बहुत ही सभ्य और शिष्ट, बातचीत करने में निहायत आला दर्जा के शाइस्ता-ख़्याल; सरकारी नौकरी में बहुत ऊँचा ओहदा पाए हुए, शायद रायबहादुर भी हैं, दो-एक प्रतिष्ठित पत्रों के सम्पादक भी रह चुके हैं, दोनों वक़्त सन्ध्या ज़रूर करते हैं, उम्र भी ४०-४५ से कम न होगी; पर हज़रत इस फ़न में पूरे उस्ताद हैं। अब तक सैकड़ों नहीं तो कई दर्जन कोमल-वयस्क, गुलाब के समान सुन्दर बालकों और नवयुवकों को अपनी अस्वाभाविक काम-तृष्णा को शान्त करने के लिए सदाचार से भ्रष्ट कर चुके हैं और अपने पीछे एक

दो नहीं, बल्कि अनेक अपने सिखलाए हुए इस सम्प्रदाय के मुरीद छोड़ जाने वाले हैं। अभी थोड़े दिनों की बात है कि कलकत्ते का एक विद्यालय अपने एक ऐसे ही अध्यापक के कारण काफ़ी बदनाम हो चुका है। कहा जाता है कि उस नराधम अध्यापक ने, न जाने कितने छात्रों को अपनी अस्वाभाविक काम-तृष्णा का शिकार बनाया था। मैं चतुर्वेदी जी से पूछता हूँ कि इस भयङ्कर दुराचार और पापाचार को रोकने का समाज ने क्या प्रयत्न किया है? मैं एक हेडमास्टर की हैसियत से कह सकता हूँ कि यह अस्वाभाविक व्यभिचार कितनी भयङ्करता के साथ समाज में फैला हुआ है। पर समाज के सिर पर जूँ तक नहीं रेंगती और अगर कोई हिम्मत करके अपने ढङ्ग पर इस गन्दे पाप का पर्दा फ़ाश करता है और इसकी ओर समाज का ध्यान खींचना चाहता है, तो अश्लीलता की गुहार दी जाती है और यह कहा जाता है कि लिखने वाला "ज़िम्मेवार" शख़्स नहीं है और उसका मस्तिष्क "सभ्य और सुसंस्कृत" नहीं। परन्तु यह निश्चय करना ज़रा टेढ़ी खीर है कि कौन "ज़िम्मेवार" है और किसका मस्तिष्क "सभ्य और सुसंस्कृत" गिना जा सकता है? अगर कोई शख़्स "ज़िम्मेवारी" का और "सभ्यता तथा सुसंस्कृतता" का दावा करता है और यह कहता है कि फ़लाँ शख़्स "ज़िम्मेवार" नहीं है तो वह महज़ हिमाक़त करता है। ख़ैर, हमारे मित्र चतुर्वेदी जी एक लिस्ट ऐसे सज्जनों की बना देते जो उनकी राय में "ज़िम्मेवार" हों और दूसरी लिस्ट ऐसे आदमियों की छपा दें जो उनकी पाक राय में "ग़ैर-ज़िम्मेवार" समझे जायँ तो बहुत अच्छा होता, ताकि हम ऐसे लोग अगर "ज़िम्मेवार" न समझे जायँ तो अनधिकार चर्चा से बरी रहें।

ख़ैर, अगर ख़ाली "चॉकलेट" ही पर चतुर्वेदी जी की नाराज़गी होती तो कोई बात न थी, परन्तु उन्होंने बहुत सी ऐसी पुस्तकों को भी अश्लील पुस्तकों की सूची में शामिल कर दिया है, जो एकमात्र समाज-सुधार के पवित्र उद्देश्य से लिखी गई हैं। ऐसी एक पुस्तक "अबलाओं का इन्साफ़" है। पुस्तक क्या है, हिन्दू-समाज के अत्याचार की भट्टी में जलते हुए अबलाओं के दिल का दर्द भरा तराना है, या अन्धे हिन्दू-समाज की आँखों में फिर से ज्योति पैदा करने वाला ममीरे का सुर्मा है, या मौत के मुख में पड़ी हुई हिन्दू-जाति को फिर से जिलाने वाला सञ्जीवन लटका है। परन्तु चतुर्वेदी जी को उसमें सिवा अश्लीलता के और कुछ भी नहीं सूझा। उस पुस्तक को आदि से लेकर अन्त तक ध्यान के साथ पढ़ने के बाद मुझे तो उसमें अश्लीलता की बू तक न मिली। हाँ, स्वार्थी और अत्याचारी हिन्दू-समाज के प्रति घृणा और अत्याचारों की चक्की में पीसी जाती हुई हिन्दू-अबलाओं के प्रति दया और सहानुभूति का स्रोत हृदय में अवश्य उमड़ आया। हिन्दू-बालिका के पैदा होने पर कैसे शोक और मातम के साथ उसका स्वागत किया जाता है, कैसे गुड़िया की तरह शादी कर दी जाती है, विधवा हो जाने पर कैसे-कैसे अत्याचार उस पर होते हैं, किस तरह समाज अपने अन्यायों के द्वारा विधवाओं को व्यभिचार करने, गर्भ गिराने और वेश्या बनने के लिए मजबूर करता है—यह सब दुख-भरा दास्तान अबलाओं की ज़बानी अगर आप सुनना चाहते हैं तो इस किताब को पढ़िए। हाँ, यह ज़रूर है कि इन सब अत्याचारों और व्यभिचारों की जीती-जागती तसवीर घुमा-फिरा कर नहीं, बल्कि स्पष्ट और नङ्गे शब्दों में खींची गई है। इसी से वे लोग जो पर्दे का फ़ाश होना अच्छा नहीं समझते, इस पुस्तक से बिगड़े हैं और इसे अश्लील कहकर इसके महत्व को घटाना चाहते हैं। जो लोग पर्दा फ़ाश होने के ख़िलाफ़ हैं, उनका कहना यह है कि भाई, सामाजिक कुरीतियों के बारे में लिखो, पर खुले शब्दों में नहीं, क्योंकि इससे हमारे आत्माभिमान को या सञ्जीदा दिल को धक्का पहुँचता है। यह कहना वैसा ही है जैसा कोई कहे कि सड़े-गले मवाद से भरे हुए पुराने नासूर को चीरो, पर देखना मवाद न गिरने पावे, क्योंकि उससे मेरे नाज़ुक दिल को सदमा पहुँचेगा, क्योंकि मैं चीर-फाड़ और मवाद देखना बरदाश्त नहीं कर सकता। या कोई यह कहे कि देखो, अपने ग़म से भरे हुए दिल के बोझ को रोकर हलका कर सकते हो, पर ख़बरदार, एक क़तरा आँसू न गिरने पावे! क्यों भाई? इसलिए कि तुम्हारे आँसू देखकर मेरे शान्त हृदय में बेचैनी पैदा हो जाती है।

पुस्तक के सम्बन्ध में इतना कह देने के बाद मैं इसके लेखक के बारे में भी कुछ कह देना चाहता हूँ। मैंने सुना है, इस अत्यन्त उत्तम और उपयोगी पुस्तक के लेखक कोई "ग़ैर-ज़िम्मेवार" नहीं, बल्कि बहुत ही "ज़िम्मेवार"

शख़्स हैं। कोई भुक्खड़ हिन्दी के लेखक नहीं, बल्कि एक करोड़पती असामी हैं, जो लक्ष्मी के कृपापात्र होकर भी लक्ष्मी-वाहन नहीं, वरन् अच्छे विद्वान् हैं। नए विचारों के होते हुए भी, धर्मशास्त्र और दर्शनशास्त्र के अच्छे ज्ञाता हैं, जो साधारणतया हिन्दू-समाज के और विशेषतया मारवाड़ी-समाज के एक रत्न हैं, और जिनका हृदय सामाजिक अत्याचारों और व्यभिचारों को देखकर, वैसा ही धधका करता है, जैसा कि हिन्दी में घासलेटी साहित्य के प्रचार को देखकर चतुर्वेदी जी का। इसलिए कम से कम यह तो चतुर्वेदी जी नहीं कह सकते कि यह शख़्स "ज़िम्मेवार" नहीं है। परन्तु दुर्भाग्य से इसके लेखक ने अपना नाम न देकर, और एक फ़र्ज़ी स्त्री के नाम से इसे छपवा कर चतुर्वेदी जी के व्यङ्ग का पात्र अपने को बना लिया है; क्योंकि चतुर्वेदी जी अपनी "चॉकलेट"-आलोचना के अन्त में व्यङ्ग के साथ लिखते हैं—"हमारा यह चैलेञ्ज "अबलाओं के इन्साफ़" की लेखिका श्रीमती स्फुरणा देवी (या श्रीमान् स्फुरण देव?) को भी है।" पर चतुर्वेदी जी को याद दिलाने की ज़रूरत नहीं है कि पहले कई वर्षों तक वे भी एक "भारतीय हृदय" इस फ़र्ज़ी नाम से लिखते रहे हैं। अङ्गरेज़ी का प्रकाण्ड लेखक ए० जी० गार्डनर "एल्फ़ा ऑफ़ दि प्लाउ" के नाम से लिखता है, और हिन्दी के आचार्य श्रीमान् पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी जी भी "ज्ञ" के नाम से सरस्वती में लिखा करते हैं। इसलिए "अबलाओं के इन्साफ़" का लेखक यदि किसी फ़र्ज़ी नाम से लिखता है तो वह व्यङ्ग का पात्र न होना चाहिए—सिर्फ़ देखना यह चाहिए कि जो बात लिखी गई है वह माक़ूल है या नहीं। यदि बात ठीक है तो चाहे उसे स्त्री लिखे या पुरुष, असली नाम से हो या फ़र्ज़ी नाम से, अङ्गरेज़ी में हो या फ़ारसी में, सीधी भाषा में हो या टेढ़ी, मुँदे शब्दों में हो या खुले—उसे स्वीकार कर लेना चाहिए और इसके लिए खिल्ली न उड़ानी चाहिए कि उसने अपना असली नाम नहीं दिया है।

अस्तु, अब थोड़े से अवतरण इस पुस्तक से देकर मैं यह साबित करना चाहता हूँ कि अश्लीलता फैलाना तो दूर रहा, यह पुस्तक सदाचार फैलाने और आम तौर पर हिन्दू-समाज तथा ख़ास तौर पर मारवाड़ी-समाज की कुरीतियों और व्यभिचारों के मिटाने में चिरायते काढ़े में मिली हुई रामबाण बूटी का काम दे सकती है।

देखिए, हिन्दू-समाज में स्त्रियों की शोचनीय दशा का कैसा अच्छा चित्र लेखक ने खींचा है [पेज ८-९]:—

हिन्दू के घर जिस समय कन्या का जन्म होता है, उसी समय से उससे घृणा होनी आरम्भ हो जाती है; यद्यपि उस बेचारी ने उस समय उस घर की कुछ भी हानि नहीं की; परन्तु घर के सब लोगों में शोक छा जाता है। घर वाले सब उस नवागत बालिका को गाली देते हैं—"राँड कहाँ से आ गई!" लोग उनके शोक की आश्वासना करते हैं—"इस बार पत्थर आ पड़ा तो क्या हुआ? अब की बार बधाई होगी। आँधी के बाद वर्षा आती है" इत्यादि। कहीं-कहीं तो उस नवजात बालिका के घात का भी उद्योग होता है*। यह तो अत्याचार का मङ्गलाचरण है। बालिका के पालन-पोषण के लिए इतनी बेपरवाही की जाती है कि शिष्ट लोग पशुओं के पालन में भी नहीं करते। अगर लड़का होता है, तो बड़ा आनन्द मनाया जाता है, और वह बहुत हिफ़ाज़त के साथ पाला-पोसा जाता है। बालिका जब बाल-रोगों से पीड़ित होती है, तब उसके इलाज की तरफ़ कुछ भी ध्यान नहीं दिया जाता; क्योंकि इच्छा तो यह रहती है कि किसी तरह यह मर जाय तो पीछा छूटे; परन्तु लड़के की बीमारी में घर वालों के होश उड़ जाते हैं। इलाज में बहुत धन ख़र्च किया जाता है। नींद उड़ जाती है और भूख बन्द हो जाती है। देवी-देवता और क़बरों-पीरों को मनाते नाकों दम आ जाता है। जिस घर में लड़के-लड़की साथ-साथ रहते हैं, वहाँ लड़के के

* इस सम्बन्ध की जानकारी करने के लिए पाठकों को **'चाँद' कार्यालय**, इलाहाबाद द्वारा प्रकाशित **शिशु-हत्या** अथवा **नरमेध-प्रथा** शीर्षक पुस्तक मँगा कर पढ़ना चाहिए। इस खोजपूर्ण पुस्तक के लेखक हैं श्री० शीतलासहाय जी, बी० ए० और मूल्य है चार आने।

खान-पान की तो पूरी तरह तवज्जह होती है और उसकी रुचि के माफ़िक़ मिष्टान्न बनाए जाते हैं। अगर एक समय वह कुछ कम खाए, तो सब परेशान हो जाते हैं; परन्तु लड़की को रूखा-सूखा या लड़के का जूठा भोजन मिलता है। अगर वह एक-दो दिन कुछ न खाय, तो कोई पूछता नहीं। इन अत्याचारों को सह कर भी वह कभी किसी से नाराज़ नहीं होती; किन्तु माता-पिता, भाई आदि से बहुत प्यार करती है। "राँड" शब्द से इनका सम्मान होता है। मानो राँड होना कोई साधारण बात है।

और सुनिए :—

इस समाज के मनुष्य स्त्रियों पर केवल अत्याचार ही नहीं करते, किन्तु अपने स्वार्थ और इन्द्रिय-लोलुपता के लिए बेचारी अबलाओं से कुकर्म करवाते हैं; और उन सब अत्याचारों और कुकर्मों का दोष भी इन्हीं पर मढ़ते हैं। इनका धर्मशास्त्र कहता है कि ब्रह्मदेव की आधी देह से पुरुष और आधी देह से स्त्रियाँ उत्पन्न हुई हैं (मनु० अ० १ श्लोक ३२), जिससे प्रमाणित है कि सृष्टि के लिए ईश्वर को पुरुष और स्त्री दोनों का होना एक समान अभिप्रेत है; परन्तु इन धर्मात्माओं (?) के नज़दीक तो स्त्री-जाति की आवश्यकता एक साधारण पशु के बराबर भी नहीं होती। तभी तो कन्या का उत्पन्न होना इनको इतना शोक और दुखजनक प्रतीत होता है कि उसके जीवित रहने की अपेक्षा मर जाना ही अच्छा समझते हैं। मानो वे लोग न तो स्त्रियों से पैदा हुए और न उनको जीवन-काल में स्त्रियों की कोई आवश्यकता ही रहती है। अगर उनके वश की बात होती, तो शायद वे अपनी जाति में कन्या पैदा ही न होने देते; परन्तु परमात्मा को यह बात स्वीकार नहीं। अतएव वह उनको पुरुषों से कुछ अधिक संख्या में पैदा करता है। घर वालों का अनादर तथा अपमान सहना ही इनका बाल्यकाल का सुख है। माता-पिता तो घोड़े, बैल, भेड़, बकरी आदि के पालन-पोषण और रक्षा के लिए जितनी चिन्ता करते हैं, उतनी भी कन्याओं के लिए नहीं करते। 'राँड' कह कर पुकारना कन्याओं का सम्मान समझते हैं। मानो राँड होना कोई सुख का हेतु है। इनका धर्मशास्त्र बहुत आग्रहपूर्वक आदेश देता है कि कन्या सदा-सर्वदा पूजने योग्य है। जिस कुल में वह दुखी होती है, उस कुल का नाश हो जाता है (मनु० अ० ३, श्लोक ५५ से ६०; अ० ९ श्लोक २६ से २८) परन्तु ऐसे धर्मशास्त्रों की भी इन्हें कुछ परवाह नहीं। ये स्त्री-जाति से घृणा करना और उस पर अत्याचार करने ही में अपनी उच्चता और गौरव समझते हैं।

भला जो जन्म से ही स्त्री-जाति से इतना द्वेष करते हैं, वे उनको बाल्यावस्था में सुशिक्षा एवं धर्मोपदेश देने का तथा युवा होने पर उनको सन्मार्ग पर चलाने, कुसङ्ग से बचाने और दुष्टों से रक्षा करने का कष्ट क्यों उठाने लगे? चाहे धर्मशास्त्र कितना ही चिल्लाता रहे कि स्त्रियों को सुशिक्षा देना, कुसङ्ग से बचाना और दुष्टों से रक्षा करना प्रत्येक मनुष्य का परम कर्त्तव्य है; चाहे वे पिता के आश्रित हों या पति के अथवा पुत्र के—उन सब का कर्त्तव्य सदा उनकी रक्षा करना है। जो इन कर्त्तव्यों का पालन नहीं करता, वह धर्म से विमुख होता है; क्योंकि स्त्री स्वभाव ही से चञ्चल और निर्बल होने से स्वयं अपनी रक्षा करने में असमर्थ होती है। अतएव उनकी रक्षा करने का भार स्वयं उनके ऊपर ही न रखकर, पुरुषों पर रक्खा गया है; और जो पुरुष इनकी रक्षा न करे, उसको पापी होना भी ठहराया गया है (देखिए मनु० अ० ९, श्लोक २ से १६ तक)।

परन्तु इनको धर्मशास्त्र के वचनों तथा कर्त्तव्याकर्त्तव्य के विचार से क्या प्रयोजन? इन्हें तो अपने स्वार्थ साधने और अपनी मनमानी करके धर्मध्वजी बनने का मिथ्या अभिमान करने से मतलब है। जब तक इनके स्वार्थ और बड़प्पन

में आघात नहीं पहुँचता, तब तक न तो इन्हें धर्मशास्त्र याद आता है और न किसी के भले-बुरे का विचार ही इनके ध्यान में बैठता है। जब इनके स्वार्थ में ज़रा भी बाधा आने की सम्भावना का चिन्ह इनके चित्त में पैदा होता है, तो चट धर्मशास्त्र की दुहाई देने को तैयार रहते हैं, और अपने किए हुए धर्म-विरुद्ध आचरणों का तथा कुकर्मों का फल भोगने को स्वयं तैयार न होकर, सब दोष बेचारी स्त्रियों के सिर मढ़ कर आप निर्दोष, पुण्यात्मा और धर्मध्वजी बने रहने का दावा करते हैं। [पृष्ठ २२६—२२९]

देखिए, नीचे के अवतरण में कलकत्ते में रहन-सहन का ढङ्ग कैसे सच्चे शब्दों में वर्णन किया गया है। जो कभी कलकत्ते के बड़ा बाज़ार में रहे हैं, उन्हें मालूम होगा कि मारवाड़ी लोग एक ही मकान में किस तरह अचार की तरह गँजे रहते हैं। एक ही मकान में एक-दो नहीं, कभी-कभी सौ-सौ कुटुम्ब तक रहते हैं, जिससे प्रायः बड़े-बड़े व्यभिचार हो जाते हैं। अगर एक-एक कुटुम्ब के पीछे कई कमरे हों तब भी ग़नीमत होती। सो भी नहीं; प्रायः देखा जाता है कि कितने ही लखपती या धनी क्यों न हों, पर मारवाड़ी एक ही दो कमरे में कुल कुटुम्ब सहित गुज़ारा कर लेंगे। एक ही कमरे में आप भी रहेंगे, उनकी स्त्री भी रहेगी और बाल-बच्चे भी रहेंगे। उतने ही कमरे में कचर-बचर बच्चे भी पैदा हो जाते हैं, बच्चे को नज़र लगने से बचाने के लिए मिर्चें की धूनी भी सुलगाई जाती है और क्या-क्या नहीं होता। उसी का चित्र नीचे लेखक (लेखिका ?) के ही शब्दों में दिया जाता है। इस बयान की कहने वाली राधा नाम की एक मारवाड़ी-स्त्री है, जो १० वर्ष की उम्र में ब्याही गई और १४-१५ वर्ष की उम्र में विधवा हो गई। इस तरह के उदाहरण सैकड़ों की तायदाद में पाए जाते हैं। यह तो केवल दिग्दर्शन के तौर पर लेखक ने दिया है। [पृष्ठ १५-२२]

राधा—महाराज, मेरे विवाह के तीन-चार महीने बाद मेरे माता-पिता मुझे तथा मेरे छोटे भाई-बहिन को लेकर देश से विदा होकर कलकत्ते चले गए। वहाँ बाँसतल्ला स्ट्रीट में—एक बाड़ी में कमरा किराए पर लेकर रहने लगे। हमारे यहाँ छोटू ब्राह्मण रसोइया रहता था, जिसकी आयु लगभग अट्ठारह साल की थी। वह छोटे से बड़ा हमारी नौकरी में ही हुआ था। उसके माता-पिता भी हमारे ही यहाँ नौकरी करते थे, अतः मेरी माता जी उसको अपने पुत्र की तरह समझती थीं। उसके साथ किसी बात का भेद-भाव न था। मैं उसको अपना बड़ा भाई समझती थी। उसके सिवाय एक ग्वाला (नौकर) चौका-बरतन आदि के लिए, कलकत्ते में ही रख लिया था। पिता जी दिन में अपने काम-काज के लिए दूकान चले जाते। दो बार भोजन करने आते; और रात को बारह बजे के लगभग सोने आते। कमरे में एक खट-छप्पर (लोहे की खाट) बिछा हुआ था, जो पिता जी तथा माता जी के सोने के लिए था। मैं अपने भाई-बहिनों के साथ नीचे ज़मीन पर सो जाती थी। कमरा बहुत तङ्ग था; अतः हम लोगों के बिछौने खट-छप्पर से सटे हुए ही होते थे। पिता जी सोने आते, उससे पहले हम भाई-बहिनों को नींद आ जाती और सवेरे उनके उठने के बाद हम लोग जगते। प्रायः डेढ़ साल तक कोई उल्लेख करने योग्य बात नहीं हुई।

* * *

अब रात को बारह बजे जब मेरे पिता जी सोने आते, तब मैं स्वतः ही नींद से जगने लगी, परन्तु जागती हुई भी बनावटी नींद का ढोंग करके पड़ी रहती, और अपने माता-पिता की बातें सुनती रहती। मेरे पिता की आदत थी कि पहले मेरी माँ से पूछ लेते कि बालक सब सोए हुए हैं न? जब मेरी माँ उत्तर दे देती कि ये तो सब गहरी नींद में हैं, तब वे और बातें छेड़ते। भला उन्हें क्या मालूम था कि मैं नींद का बहाना कर अन्दर से जागती हूँ, परन्तु यह ढोंग बहुत दिन तक कैसे चल सकता था? जागते आदमी से कुछ न कुछ ऐसी हलचल हो ही जाती है कि

जिससे दूसरों को मालूम हो जाय। और नहीं तो ख़ुर्राटे तो अवश्य बन्द हो जाते हैं। एक दिन मेरे पिता को शक हो गया कि मैं जागती हूँ। उन्होंने माँ से कहा—बाई जागती है। माँ ने कहा भला वह काहे को जागने लगी? वह तो सन्ध्या को सोती और सवेरा होने पर आँख खोलती है। यह दूसरों की तरह चालाक नहीं है। पिता जी ने कहा, पुकारो तो सही। माँ ने पुकारा—बाई, ये बाई, जागती है क्या? मैंने कुछ भी उत्तर न दिया। माँ ने कह दिया—यह बेचारी तो भर-नींद में है। तुम नाहक़ वहम करते हो। उस समय तो बात ख़तम हो गई; परन्तु खटका उनके दिल में पैदा हो गया। अतएव उनके चित्त में सदा सङ्कोच बना रहता था; और मैं भी इस तरह ढोंग बना कर माता-पिता के व्यवहारों को छिपे-छिपे देखना उचित नहीं समझती थी; परन्तु क्या किया जाय, दूसरी कोई जगह न थी, जहाँ मैं सोती; न कोई मेरे पास सोने वाली थी।

धर्मराज—क्या तुम्हारे पिता इस योग्य न थे कि दूसरा कमरा किराए पर ले लेते; और एक स्त्री तुम्हारे पास सोने को रख लेते?

राधा—थे क्यों नहीं; मेरे पिता धनाढ्य थे और अनेक कमरे तथा नौकर-नौकरानियाँ रख कर आराम से रह सकते थे; परन्तु इस समाज में कुछ ऐसी प्रथा सी पड़ गई है कि कष्ट सह कर भी एक ही कमरे में गुज़ारा करना। दूसरे शादी-ग़मी आदि के कामों में चाहे जितना ख़र्च कर दें और व्यापार-फाटके आदि में चाहे जितना नुक़सान दे दें; परन्तु अपने आराम के लिए और अपने बालकों की रक्षा के लिए धन ख़र्च करना वे लोग फ़ुज़ूल-ख़र्ची समझते हैं।

धर्मराज—धन्य है ऐसी समझ को।

राधा—उस बाड़ी की चार मञ्ज़िलें थीं। सब से ऊपर की छत के दो तरफ़ रसोइयों की क़तारें थीं। शेष खुली थी। इन रसोई-घरों में एक रसोई हम लोगों ने किराए पर ली थी। हमारा कमरा बाड़ी की दूसरी मञ्ज़िल में था! गर्मी के दिनों में कई लोग पहली रात में छत पर सोने चले जाते थे, और कोई-कोई तो रात भर छत पर ही सोते थे। मेरे कमरे के पड़ोस में एक वैश्य रहता था, जिसकी एक पन्द्रह वर्ष की विधवा बहिन थी। रात को वह वैश्य और उसकी स्त्री कमरे में सोते और वह विधवा बहिन 'गोमती' एक ब्राह्मणी के पास छत पर सोती थी। मैंने विचार किया कि मैं भी छत पर सोने लगूँ तो क्या हर्ज है; परन्तु मेरे पास सोने वाली कोई स्त्री नहीं है, इसलिए मेरे माता-पिता मुझे अकेली छत पर कैसे सोने देंगे। फिर मैंने विचार किया कि विधवा और ब्राह्मणी के पास मैं भी सोती रहूँगी; और छत पर और भी बहुत नर-नारी सोते हैं, सो कोई जोखिम तो है नहीं, परन्तु मेरे कहने से मेरे माता-पिता शायद न मानें, इसलिए उस विधवा और ब्राह्मणी से मैंने सहायता ली। वे तो चाहती ही थीं कि मेरी-जैसी कोई सङ्गिनी मिले। अस्तु—

ब्राह्मणी ने मेरी माँ से कहा—जवान बेटी को पास में सुलाकर तुम स्त्री-पुरुष को एक साथ सोने में शर्म नहीं आती?

माँ ने कहा—क्या करें, बाई को किसके भरोसे और कहाँ सुलावें?

ब्राह्मणी—गोमती मेरे पास सोती है, क्या उसे कोई खाता है? इसी तरह राधा भी मेरे पास सो सकती है। मैं अपनी बेटी की तरह उसकी हिफ़ाज़त रक्खूँगी।

माँ—गोमती तो होशियार है। यह बालक है। कहीं बेअदबी से सोवे तो अच्छा नहीं लगता।

ब्राह्मणी—यह बालक है तो क्या हुआ, मैं तो बालक नहीं। पचास वर्ष लिए हैं, क्या बेअदबी से सोएगी, तो मैं इसको ढाँकूँगी नहीं?

मेरी माता इस तरह का सुभीता तो चाहती ही थी, तिस पर उसने यह भी सोच लिया कि छोटू हमारी रसोई के आगे तो सोता ही है, वह

भी मेरी तरफ़ का ध्यान रक्खेगा। माँ ने ब्राह्मणी से कहा—मैं उनसे (मेरे पिता से) पूछ कर कहूँगी।

मेरे पिता ऐसे सरल प्रकृति के पुरुष थे कि मेरी माता जो चाहती, उनसे करवा लेती। फिर इस बात की मञ्जूरी लेना कौन सी बड़ी बात थी। निदान उस रात से मेरा सोना गोमती और ब्राह्मणी के पास शुरू हो गया। गोमती और ब्राह्मणी ने मेरी हर तरह से ख़ातिर की और मुझे किसी बात की शिकायत न थी।

इसके बाद राधा किस तरह माता-पिता की बेपरवाही के कारण व्यभिचार के रास्ते में लगाई गई, यह पाठक "अबलाओं के इन्साफ़" में स्वयं पढ़ सकते हैं।

प्रायः मारवाड़ी-समाज में देखा जाता है कि जब बहू-बेटियाँ परदेश जाती हैं तो घर वाले उनके साथ नहीं जाते। क्योंकि व्यापार से उन्हें इतनी फ़ुरसत कहाँ कि स्त्रियों को लाने-ले जाने में स्वयं साथ रहें। इसी का चित्र नीचे के अवतरण में खींचा गया है। बयान करने वाली वही राधा है [पृष्ठ ३३—४०]

हमारे यहाँ यह रिवाज था कि जब तक माता-पिता और सास-ससुर जीवित रहें, तब तक शाम को ससुराल जाना और दिन में पीहर चले आना। मेरा विवाह देश ही में हुआ था; और विवाह के बाद मेरा पति काम सीखने के लिए बम्बई चला गया, जहाँ मेरे ससुर की दूकान थी; और मैं अपने माता-पिता के साथ कलकत्ते चली आई थी। जब माता ने पिता से मुझे ससुराल भेजने को कहा, तो उसका मतलब यही था कि वे मुझे लेकर देश जाते और मेरा पति बम्बई से वहाँ बुला लिया जाता। निदान, पिता जी ने मेरे पति को बम्बई से देश बुलाने के लिए मेरे ससुर को पत्र दिया, जो उन्होंने स्वीकार किया और पति यथासमय बम्बई से देश आ गया, परन्तु मुझे देश ले जाने के लिए मेरे पिता को कार्यवश अवकाश न मिला; यद्यपि मेरी माता ने बहुत ही कहा-सुनी की; माता भी उन्हें छोड़-कर मेरे साथ देश आना नहीं चाहती थी, क्योंकि एक तो पिता के स्वास्थ्य के लिए खान-पान की सुव्यवस्था माता के बिना नहीं हो सकती थी, दूसरे देश में मेरी सौतेली दादी और दादा रहते थे, उनसे माँ की पटती न थी। उस समय सब कुटुम्ब शामिल ही था। अस्तु—

लाचार होकर उन्होंने केवल मुझे ही भेजना निश्चित किया; यद्यपि मैं इस बात से सख़्त नाराज़ थी। देश में मेरी नानी और मौसी मौजूद थीं, अतएव दिन में उनके पास रहने की व्यवस्था की गई। मुझे देश पहुँचाने के लिए छोटू को साथ भेजने का माता-पिता ने विचार किया। यह सुनकर मैं बहुत घबड़ाई और जाने ही से इन्कार कर दिया। माता के बहुत दबाने पर मैंने साफ़ कह दिया कि छोटू के साथ मैं न जाऊँगी; क्योंकि सफ़र के काम में वह होशियार नहीं है और न मुझे उस पर भरोसा ही है। जब माता ने यह बात पिता जी से कही, तो एक बार वे ख़ूब बिगड़े, परन्तु फिर उनके समझाने पर दूकान के एक तगादगीर रामलाल को साथ भेजना निश्चित किया। गुरुवार की दस बजे की गाड़ी से थर्ड क्लास का टिकिट लेकर हम लोग रवाना हुए। एक ब्राह्मण-युवती को उसके पति ने देश भेजने के लिए हमारे साथ कर दिया। अतएव हम दो स्त्रियाँ रामलाल के साथ रवाना हुईं। बोझ हमारे साथ टिकिटों से अधिक था; परन्तु रेलवे-बाबू को कुछ देकर बिना तौलाए ही रख दिया गया। मैंने अपना आसन प्लेटफ़ॉर्म की ओर खिड़की के पास जमाया; और जब स्टेशन पर गाड़ी खड़ी होती, तो मैं खिड़की के बाहर गर्दन निकाल कर तमाशा देखती और लोग मेरे रूप-रङ्ग, वेश और शृङ्गार को देखकर मेरी खिड़की के पास जमा होते और घूर-घूरकर मुझे देखने लगते। तीन-चार घण्टे चलने के बाद एक स्टेशन पर तीन मुसलमान हमारे कम्पार्टमेण्ट में आ बैठे; और हम लोगों को टकटकी लगाकर देखने

लगे। हम दोनों बारीक मलमल की धोतियाँ पहने हुए और उसके ऊपर मलमल के महीन "अचरवा" ओढ़ रक्खे थे। रेशमी बारीक फुलवर गाछ की अँगिया पहने थीं तथा सोने और मोतियों के गहने पहने हुए थीं। मुसलमानों को आए एक घण्टा भी व्यतीत न हुआ था कि टिकिट जाँचने वाला हमारे कमरे में आया, और हमारा टिकिट देखने के बाद असबाब की तरफ़ देखा, तो उसे शक हुआ और हाथ के काँटे से उसे तौलने लगा। जब टिकिटों से सामान ज़्यादा हुआ, तो रामलाल से सब असबाब का किराया माँगा। रामलाल किराया देने में उससे हुज्जत करने लगा। जब गाड़ी स्टेशन पर ठहरी, तो टिकिट जाँचने वाले ने रामलाल को नीचे उतारा, जिससे वह बहुत घबराया और हम दोनों स्त्रियाँ डर के मारे काँपने लगीं। सिवाय रोने के और कर ही क्या सकती थीं? यह मामला देखकर मुसलमान भी हँसने और ख़ुश होने लगे। रामलाल निरा भोंदू था। सफ़र का काम उसको बहुत ही कम पड़ा था। बात करने की तमीज़ तक न थी, तो भला वह रेल के बाबुओं से क्या सवाल-जवाब कर सकता था? जब गाड़ी छूटने की घण्टी बजी, तो पाँच-सात रुपए बाबू को देकर पीछा छुड़ाया; और गाड़ी चलने के ऐन टाइम पर कमरे में आ गया। अतएव हम दोनों के दिल में शान्ति हुई। मुसलमानों को रामलाल के भोंदूपन की ख़ातिरी हो गई। अब वे हमारे साथ ख़ूब मसख़री-ठट्ठे करने लगे। इश्क़ की अश्लील ग़ज़लें गाने लगे; और हमको सब्ज़ परी और नील परी कहकर पुकारने लगे। उन उद्दण्ड लोगों के सामने बेचारे रामलाल को बोलने की हिम्मत कहाँ? हम तीनों चुपचाप मुँह फेरकर बैठ गए और उनको मनमाना बकने दिया। शाम हो गई। हमारी छाती धड़कने लगी कि न मालूम इन दुष्टों के साथ रात कैसे गुज़रेगी। शराब की बोतलें उनके पास थीं, जिन्हें वे पी रहे थे और अखाद्य चीज़ें खा रहे थे, जिससे हम दोनों का जी घबरा गया और क़ै होने लगी। यह देख, उनका मज़ाक़ और भी बढ़ने लगा। इस समय की हम लोगों की घबराहट का अनुभव हमीं को है या है उनको, जो हमारी जैसी स्थिति में पड़ी होंगी। वे दुष्ट हम दोनों से सटकर बैठने लगे, तब हम दोनों एक कोने में बैठीं और रामलाल को अपनी दूसरी तरफ़ बैठाया। फिर वे लोग हमारे सामने वाली पटरी पर बैठ गए और छेड़-छाड़ करने लगे। उस समय हमारे धर्म और जीवन की रक्षा के लिए सिवाय उस ईश्वर के कोई दूसरा न था, जिसने द्रौपदी की इज़्ज़त दुष्ट दुःशासन के हाथ से बचाई थी। इसी तरह की आपत्तियाँ झेलने के कुछ काल पीछे गाड़ी स्टेशन पर ठहरी और एक भला आदमी स्त्री को साथ लिए हमारे कमरे में आ घुसा। हमने समझा कि इतने दुष्ट तो थे ही, यह एक और आ पड़ा; परन्तु हमारा भय ग़लत था, वह नवागत व्यक्ति बहुत ही भलेमानस कानपुर के रहने वाले थे। हमारी असहाय अवस्था पर उन्हें तरस आता था। उन्होंने हमसे पूछा—तुम लोगों का दुनिया में कोई वारिस भी है या अकेली ही हो? हमने इसका कुछ भी जवाब न दिया। तब उन्होंने पूछा कि तुम कहाँ से आती हो और कहाँ जाओगी? मैंने कहा—कलकत्ते से अपने देश को जा रही हूँ। उन्होंने पूछा—कलकत्ते में तुम्हारे कौन हैं? मैंने कहा—मेरे पिता हैं और मेरे साथ वाली का पति है। उसने कहा—क्या तुमको घर से निकाल दिया है? मैंने उत्तर दिया—नहीं, उन्होंने इस आदमी के साथ हमें देश भेजा है। उन सज्जन ने अफ़सोस ज़ाहिर करते हुए कहा—बलिहारी है तुम्हारे घर वालों की बुद्धि की, जिन्होंने तुम-जैसी सुकुमार युवतियों को ऐसे वस्त्राभूषण पहनाकर, इतने लम्बे सफ़र के लिए लावारिस माल की तरह, एक निरे भोंदू के साथ भेजते कुछ भी विचार नहीं किया। ऐसे

लोग न मालूम किस तरह बड़े-बड़े काम-धन्धे करते हैं! जिनको अपनी बहू-बेटियों की इज़्ज़त और हिफ़ाज़त का ज़रा भी ख़्याल नहीं, वे लोग भी मनुष्यों की गिनती में आते हैं—यही अचम्भा है। अगर संयोग से मैं इस कमरे में न आता, तो न मालूम रात को तुम लोगों की क्या दशा होती?

इसके बाद इन अबलाओं का क्या हाल हुआ, यह आप स्वयं "अबलाओं के इन्साफ़" में पढ़िए!

जिन लोगों को कभी दिल्ली से कलकत्ते तक सफ़र करने का मौक़ा पड़ा होगा, उन्होंने मारवाड़ी स्त्री-पुरुषों के, गाड़ी से उतर कर प्लेटफ़ॉर्म ही पर, नहाने का अश्लील और घृणोत्पादक दृश्य ज़रूर देखा होगा। उसी का सच्चा चित्र लेखक (लेखिका?) ने कैसी अच्छी तरह खींचा है। बयान करने वाली वही ऊपर कही गई राधा है [पृष्ठ ३८]

सवेरे जब गाड़ी 'मुग़लसराय' पहुँची तो हम लोग नहाने-धोने की फ़िक्र करने लगे; क्योंकि नहाए बिना हम जल भी नहीं पी सकती थीं। पानी-पाँड़े को बुला कर हम दोनों प्लेटफ़ॉर्म पर ही नहाईं। महीन कपड़े पानी से भीग जाने पर नहीं के बराबर हो जाते हैं; अतएव स्टेशन के लोग और ख़ासकर हमारे कमरे वाले मुसलमान, हमारे इर्द-गिर्द खड़े हो गए और हमको देख-देख कर हँसने और ठट्ठा करने लगे। अनेक तरह की निर्लज्जता की बातें हमें सुना-सुना कर बकने लगे; परन्तु हमने उनकी कुछ भी परवाह न की। प्लेटफ़ॉर्म पर ही धोती पहनी और भींगी धोतियों को निचोड़ कर कमरे में आ गईं। रामलाल नहाने के लिए नल पर गया हुआ था। वहाँ पर मुसाफ़िरों की इतनी भीड़ थी कि उसको नहाने का नम्बर ही न मिला; और बहुत देर तक वहाँ खड़ा रहा। गाड़ी चलने का टाइम हो गया, तब हम लोगों की उत्कण्ठा बढ़ी, पर हम कर ही क्या सकती थीं। नल पर जाकर उसको ले आने का हममें साहस न था। इञ्जन ने सीटी दी और गाड़ी चल पड़ी। रामलाल वहीं रह गया। हम लोग स्टेशन की तरफ़ झाँकती और हाथ मलती रह गईं।

हिन्दू-समाज में स्त्री कितनी ही छोटी उम्र में विधवा क्यों न हो गई हो, पर दूसरी शादी नहीं कर सकती। लेकिन पुरुष एक स्त्री के मरने के बाद दूसरी और दूसरी के मरने के बाद तीसरी-चौथी शादी तक कर सकता है—चाहे मौत के कगारे पर ही क्यों न खड़ा हो। इसी का चित्र नीचे के अवतरण में खींचा गया है। बयान करने वाली राधा की सौतेली माँ कृष्णा है [पृष्ठ ११५—११८]

मेरे पिता जी मेरी बाल्यावस्था में ही मर गए थे। मेरी माता जीवित थी; एक भाई था, जो आजीविका के निमित्त विदेश में रहता था, एक बहिन मुझसे बड़ी, सौभाग्यवती और सन्तान वाली थी। तेरह वर्ष की अवस्था में मेरी माँ और बहिन के उद्योग से मेरा विवाह राधा के पिता के साथ हो गया; और उसी समय से मेरा सांसारिक जीवन आरम्भ हुआ। विवाह के बाद दो-चार महीने तक तो मैंने पूर्णतया होश नहीं सँभाला; परन्तु फिर मैं दुनियादारी कुछ-कुछ समझने लगी। अपनी सौत की सन्तानों से मुझे बहुत घृणा रहती थी। उनको देख-देख कर मैं सदा जला करती थी। विशेषकर राधा से मुझे बड़ी नफ़रत थी; और घर पर उसका अधिकार होना मुझे सहन नहीं होता था। पति मुझे सदा इन बालकों से प्रेम रखने की शिक्षा देता था, जो मुझे बहुत बुरी मालूम होती थी। वस्त्राभूषणों के शृङ्गार से यद्यपि मैं बड़ी प्रसन्न होती थी; परन्तु पति के प्रेम का मेरे चित्त पर कुछ भी असर न पड़ता था। पीहर में, जब मैं अपनी सहेलियों में बैठती, तो उनके युवा पतियों के राग-रङ्ग की बातें सुन-सुनकर हैरान होती; क्योंकि मुझे अपने घर में उस राग-रङ्ग का अनुभव नहीं होता था। इसलिए मेरा दिल उनकी बातें सुन कर बराबर की अवस्था वाले पति-पत्नी के सहवास के आनन्द के लिए बहुत ही लालायित होता था। जब मैं

अपनी सहेलियों से सुनी हुई, उनके राग-रङ्ग की बातें अपने पति से कहती, तो वे उनको अनसुनी सी कर, अनेक प्रकार की घर-गृहस्थी की शिक्षाएँ देकर टालमटोल करते। ये बातें मुझे बहुत बुरी लगतीं। अन्त में मुझे निश्चय हो गया कि युवा-वस्था के आमोद-प्रमोद, हँसी-ख़ुशी और क्रीड़ा-कलोल की आशाएँ अपने पति से रखना व्यर्थ ही नहीं, किन्तु बहुत दुखदायक है; क्योंकि वे अपनी युवावस्था समाप्त कर चुके थे—शरीर सब शिथिल हो गया; और बीमार रहने के कारण मिज़ाज भी चिड़चिड़ा हो गया है। ऐसी अवस्था में अपनी युवावस्था के अनुकूल क्रीड़ाओं की बातें उनसे कहकर उन्हें नाहक़ तङ्ग करना है; और कलह के सिवाय उससे और कुछ न होगा। यह विचार कर मैं अपना मन मसोस कर रह गई। दिन के समय तो अपने घर तथा पीहर में ख़ूब शृङ्गार तथा सजावट से रहती; और सहेलियों के सामने अपने गहने, कपड़े तथा धन का ख़ूब अभिमान करती; (ग़रीब घर की लड़की जब धनवान् को ब्याही जाती है, तो उसके धन के अभिमान का ठिकाना नहीं रहता) परन्तु रात को जब पति के पास जाती, तब मैले-कुचैले कपड़े पहने हुए उससे पहले ही सो जाती। इस व्यवहार से पतिदेव मेरी निराशा का हाल समझ गए; और मुझे हर तरह से प्रसन्न करने का प्रयत्न करने लगे। जो बात उनके किए हो सकती थी, उसके करने में वे कुछ भी उठा न रखते थे। मेरे कहने से राधा का अधिकार छीन कर मुझे दे दिया गया; और वह अपनी ससुराल चली गई। घर पर मेरा साम्राज्य हो गया। इसके बदले में मैं भी पति से विशेष प्रेम दिखाने लगी; और जो कुछ वे कहते, मैं स्वीकार कर लेती। सौत के बालकों के साथ उनके सामने बनावटी प्रेम—उनके खाने-पीने की ऊपरी सहानुभूति—दिखाती रहती। यह सब काररवाई मैं अपनी माँ और बहिन की शिक्षानुसार करती। पतिदेव मेरे इस प्रकार के आचरण से बड़े प्रसन्न रहने लगे; और धीरे-धीरे उन पर मेरा पूरा क़ब्ज़ा हो गया; अर्थात् मैं जो नाच नचाती, वही वे नाचने लगते। घर में जो अच्छी से अच्छी खाने-पीने की सामग्री होती, वह मैं अपनी बहिन को भेजती। यदि सौत के बालक कोई चीज़ माँगते या खाने के लिए कहते, तो पति की अनुपस्थिति में मैं उनका मुँह झाड़ देती। मेरा भीतरी यही भाव रहता था कि ये बालक मेरे लिए जीते क्यों बच गए। मैंने अपनी तरफ़ से उनके साथ अत्याचार करने में कोई कसर नहीं रक्खी। थोड़े ही दिनों बाद सब से छोटे लड़के को छोटी माता निकलीं, जिसमें बदपरहेज़ी रहने से बीमारी बिगड़ गई; और वह चल बसा। उसके कुछ ही महीने बाद उससे बड़ी लड़की मियादी बुख़ार में समाप्त हो गई। राधा के ससुराल जाने के एक साल ही में दो तो समाप्त हो गए। शेष तीन में से एक विवाहित था। वह मेरे व्यवहार से दुखी होकर अपनी स्त्री-सहित कलकत्ते चला गया। अब एक लड़का ग्यारह वर्ष का और एक लड़की नौ वर्ष की अविवाहित अवस्था में मेरे पास रह गए। मैंने सोचा कि इनका विवाह कर छुट्टी कर देनी चाहिए। लड़की तो किसी दुजहे वर को दे दी जाय, ताकि विवाह होते ही अपने घर चली जाय। लड़के का विवाह होने के बाद उसकी बहू से मेरी न बनेगी, तब वह भी अलग कर दिया जायगा। निदान इन दोनों के सम्बन्ध करने की बातें चलने लगीं। लड़के के लिए एक ठिकाने की बात आई, जो हमसे बहुत अधिक हैसियत का था। लड़की मङ्गलीक थी। उसके योग्य मङ्गलीक वर नहीं मिलता था। हमारा लड़का मङ्गलीक था, इसलिए मेल बराबर खा गया। लड़की उम्र में पूरी अर्थात् बारह वर्ष की थी।

इसके बाद कृष्णा व्यभिचार में किस तरह अवतीर्ण हुई, यह "अबलाओं के इन्साफ़" में पढ़िए!

हिन्दुओं के यहाँ कन्या-जन्म कैसे मातम के साथ और पुत्र-जन्म कैसी ख़ुशी के साथ मनाया जाता है और पुत्र-प्राप्ति के लिए कैसे-कैसे जादू, टोने, टनमन और व्यभिचार कराए जाते हैं, यह किसी से छिपा नहीं है। उसी का एक चित्र नीचे दिया जाता है। बयान करने वाली वही राधा की माँ कृष्णा है [पृष्ठ १३९—१३८]

एक ब्राह्मण की सिद्धाई बहुत बढ़ी-चढ़ी थी। उसके चमत्कारों के गीत हर जगह ख़ूब गाए जाते थे। अनुष्ठान-प्रयोग कर पुत्रहीन को पुत्र, द्रव्यहीन को द्रव्य देता था, कुँवारों का विवाह करा देता था तथा रोगियों को निरोग बनाता और मुक़द्दमे वाले को मुक़द्दमा जिता देता था। मारण, मोहन, उच्चाटन और वशीकरण उसके बाएँ हाथ के खेल थे। मैं उस सिद्ध की तारीफ़ सुनकर शाम के वक़् उसके घर गई। वह अपने नित्य-नियम में बैठा हुआ था। रक्तवर्ण के सब वस्त्र पहने था। देवी की पूजा-सामग्रियों से कमरा बड़े ठाठ से सजा हुआ था। पूजा के सैकड़ों छोटे-मोटे चाँदी के बरतन अनेक प्रकार की सामग्रियों से भरे थे। अष्टाङ्ग धूप की सुगन्ध से कमरा महक रहा था। कई दीपक जल रहे थे, जिनमें से अनेक अखण्ड ज्योति के बतलाए गए। वहाँ का ढङ्ग देखकर मेरे दिल में पूर्णतया श्रद्धा हो गई। जब सिद्ध जी से बातें हुईं, तब तो मुझे निश्चय हो गया कि देवी इसके साक्षात्कार है; यह जो चाहे सो करने की सामर्थ्य रखता है। अनेक बड़े-बड़े आदमियों के कार्य भी उसने सिद्ध किए हुए बतलाए। विशेष कर पुत्र देने के तो सैकड़ों चमत्कार दिखाए। मेरी पुत्रेच्छा वह पहले ही लोगों से सुन चुका था; और जो स्त्री-दलाल मुझे यहाँ लाई थी, उसने मेरा सब हाल कह दिया था; अतः वह मुझसे इस तरह बातें करने लगा कि मानो वह मेरे दिल का सब हाल जानता हो। सारांश यह कि उसने मुझ पर पूरा प्रभाव डाल दिया। मैंने उससे कहा—आप तो दिल का हाल तो सब जानते ही हैं, अब जैसे बने मेरा मनोरथ पूर्ण कीजिए।

उसने कहा—यह कौन सी बड़ी बात है, जगदम्बा प्रार्थना सुनते ही उसे पूर्ण करेंगी। करने-कराने वाली तो सब योग-माया है, मेरा क्या अख़्तियार है।

मैंने कहा—योग-माया आपके घट में ही निवास करती है।

उसने कहा—तुम्हारी जन्म-पत्री में ग्रहों का ऐसा योग पड़ा है, जिससे पुत्र की बाधा है। उस योग का दोष मिटाने के लिए बड़ा अनुष्ठान करना होगा; और आधी रात के समय श्मशान में बलि-दान देना होगा, जो बड़ा भयानक और जोखिम का काम है। भगवती साक्षात् खप्पर लेकर सामने आ खड़ी होती हैं। यदि थोड़ी चूक हुई तो बलि देने वाले का ही बलिदान हो जाता है। देवताओं को छेड़ना कोई तमाशा नहीं है; परन्तु तुम्हारे वास्ते तो सब करना ही होगा।

मैंने कहा—महाराज, आपकी बड़ी दया होगी, मैं आपका एहसान जन्म भर न भूलूँगी।

उसने कहा—अच्छा, अनुष्ठान और बलि की सब सामग्री मैं पन्ने पर लिखकर इस स्त्री (दलाल) के हाथ भेज दूँगा। उसके अनुसार सब चीज़ भेज देना। मैं तो इस वक़् तुमसे कुछ नहीं लूँगा; जब तुम पुत्र को गोद में खेलाओगी; तब प्रसन्न होकर जो बधाई दोगी, वह ले ली जायगी। यहाँ योग-माया की कृपा से किसी बात की कमी नहीं है। जो आवश्यकता होती है, वह स्वयं भेज देती हैं। (गद्दी को बताकर) इसके नीचे से रुपए निकलते ही चले जाते हैं। भैरव जी के स्थान पर रोज़ पचास ब्राह्मणों का भोजन नियम से होता है। हमारी कुछ दूकानें तो चलती ही नहीं, सब योग-माया ही भेजती हैं।

मैंने कहा—महाराज, अनुष्ठान और बलिदान की सामग्री मैं कहाँ एकत्र करती फिरूँगी, आप

नवीन संस्करण ! संशोधित संस्करण !!

अबलाओं का इन्साफ़

नवीन संशोधित और परिवर्द्धित संस्करण के तिरङ्गे

Protecting Cover का नमूना

स्मरण रहे, यह उसी क्रान्तिकारी, पुस्तक का नया संस्करण है, जिसने मारवाड़ी-समाज को तिलमिला दिया था, और जिसके विरुद्ध इतना प्रभावशाली आन्दोलन उठाया गया था, कि पुस्तकें

ख़रीद-ख़रीद कर जला दी गई थीं !!

पर जब से गोविन्द-भवन जैसी नारकीय संस्था का इसने भण्डाफोड़ किया तब से मारवाड़ी-समाज का सारा जोश ठण्ढा हो गया और आज वह स्वयं इसका प्रचार चाह रहा है। अनेक प्रतिष्ठित मारवाड़ी-भाइयों के अनुरोध से ही यह नवीन संस्करण प्रकाशित किया गया है। इस संस्करण की विशेषता यह है कि नवीन संशोधन के बाद मारवाड़ी-समाज के लिए सीमित न कर, पुस्तक का क्षेत्र और भी विस्तृत कर दिया गया है ! प्रत्येक समाज इससे समान लाभ उठा सकता है।

मोटाई पहिले संस्करण से दूनी, मू० ३) रु०, स्थायी ग्राहकों से २।) !

व्यवस्थापिका 'चाँद' कार्यालय, इलाहाबाद

नाम ही से पुस्तक का विषय इतना स्पष्ट है कि इसकी चर्चा करना व्यर्थ है। एक-एक चुटकुले पढ़िए और हँस-हँस कर दोहरे हो जाइए, इस बात की गारण्टी है। एक विशेषता इस पुस्तक में यह है कि सारे चुटकुले विनोदपूर्ण और चुने हुए हैं। कोई भी चुटकुला पढ़कर अगर दाँत बाहर न निकल पड़ें तो मूल्य वापस। बच्चे-जवान, बड़े-बूढ़े—सभी समान आनन्द उठा सकते हैं—यह इस
विदूषक
[लेखक—श्री० कैलाशचन्द्र जी भटनागर, एम० ए०]
[लेखक—श्री० कैलाशचन्द्र जी भटनागर, एम० ए०]
चाँद प्रकाशक कार्यालय प्रयाग
पुस्तक की एक विशेष विशेषता है। पृष्ठ-संख्या लगभग १२५, काग़ज़ ४० पाउण्ड एण्टिक, छपाई-सफ़ाई दर्शनीय, पुस्तक सजिल्द है, ऊपर सुन्दर Protecting Cover चढ़ा है, फिर भी मूल्य क्या? केवल १) रु०; स्थायी तथा 'चाँद' के ग्राहकों से ॥।) मात्र !!!
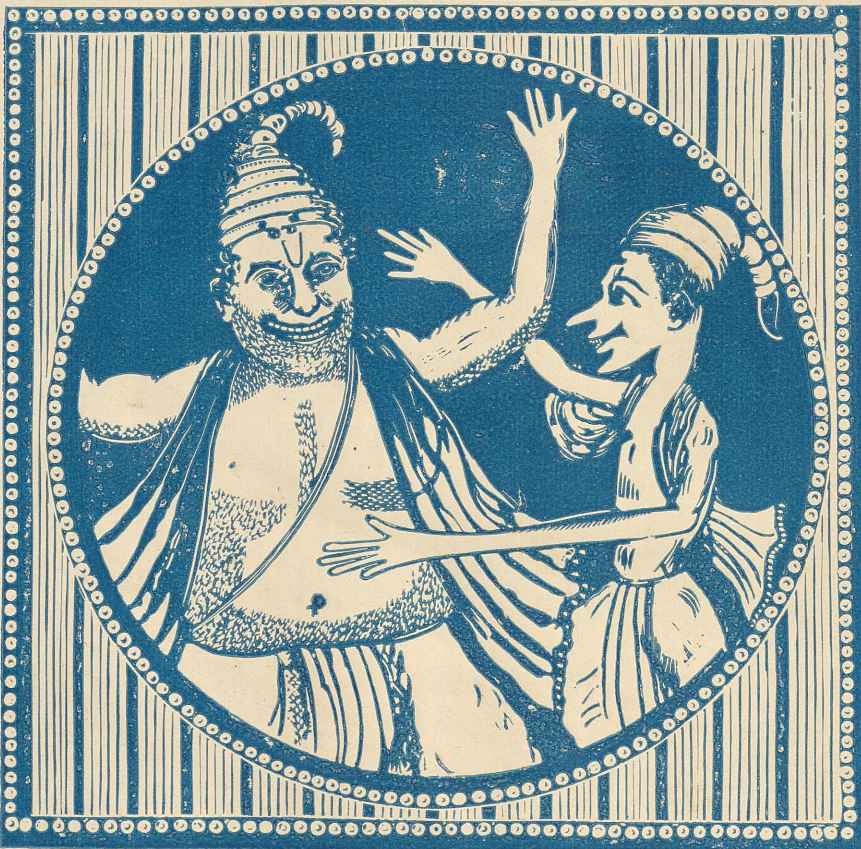
ही मँगा लें और जो ख़र्च लगे, मैं दे दूँगी। एक दिन के ब्राह्मण-भोजन का ख़र्च भी मैं दूँगी।

उसने कहा—इतने बड़े अनुष्ठान की केवल पचास ब्राह्मणों के भोजन से शान्ति नहीं हो सकती। कम से कम २०० ब्राह्मण जीमने चाहिए।

निदान अनुष्ठान, बलिदान और ब्राह्मण-भोजन के ख़र्च का तख़मीना १०००) रु० का हुआ। यह ख़र्च मैंने घर जाकर भेज दिया। सिद्ध जी ने कहा था—मैं अधिक भैरव जी के स्थान में ही रहता हूँ, जो शहर से एक मील दूर जङ्गल में झाड़ी के बीच में है। वह बहुत रमणीय स्थान है; और वहाँ एकान्त होने से मेरा जप-अनुष्ठान ठीक होता है। घर में तो मैं बहुत कम रहता हूँ। आज तुमको इत्तिफ़ाक़ से ही मिल गया। अगले रविवार को दोपहर के समय एक बजे तुम भी भैरव जी के स्थान पर आना। इतने में अनुष्ठान हो जायगा। उसका प्रसाद लेना, भैरव जी के दर्शन करना, फिर तुम्हारे सब मनोरथ योग-माया की कृपा से पूरे हो जायँगे।

सिद्ध जी की आज्ञानुसार रविवार को मैं इक्के पर सवार होकर भैरव जी के स्थान पर गई। वह स्थान बिलकुल एकान्त में था। उस समय वहाँ सिद्ध जी के सिवा और कोई न था। यदि सिद्ध जी वहाँ न होते, तो मुझे वहाँ जाते बहुत भय लगता, क्योंकि एक तो स्थान एकान्त का था, दूसरे भैरव जी की मूर्त्ति ऐसी विकट थी कि दर्शन करने से ही भय के कारण रोंगटे खड़े हो जाते थे।

इसके बाद का हाल "अबलाओं के इन्साफ़" में पढ़िए!

हिन्दू-समाज में बहुत सी जातियाँ ऐसी हैं, जिनमें लड़कियों की कमी के कारण बड़े-बड़े व्यभिचार होते हैं। ऐसी ही राजपूताना की एक ब्राह्मण-जाति का चित्र नीचे के अवतरण में दिया गया है। बयान करने वाली उसी जाति की भानमती नाम की एक स्त्री है। [पृष्ठ १४६]

मेरा नाम भानमती है। मेरा जन्म एक साधारण-स्थिति के ब्राह्मण के घर में हुआ था। हमारी जाति में लड़कियों की कमी के कारण लड़कों का विवाह होना बहुत कठिन होता है। इसलिए लड़के-लड़की का "सट्टा" हुआ करता है, अर्थात् अपनी लड़की किसी को देकर उसके बदले में अपने लड़के के लिए लड़की लाते हैं। जिनके घर में केवल लड़के उत्पन्न होते हैं—लड़कियाँ नहीं, उनके लड़के प्रायः कुँवारे ही रहते या किसी की सामर्थ्य हो, तो हज़ारों रुपए लड़की के लिए देने पर लड़के का विवाह नसीब होता है; और यदि किसी के लड़का न होकर लड़की ही होती है, तो वह रुपए लेकर मालामाल हो जाता है। अस्तु—

अपने माता-पिता के चार लड़कों के बाद मैं एक लड़की हुई थी। जिस समय मैं दो-तीन वर्ष की थी, उस समय मेरे बड़े भाई की अवस्था बारह वर्ष की हो गई थी। अतः उसका विवाह करने की मेरे माता-पिता को बहुत फ़िक्र हो गई। इसलिए उन्होंने मेरे साथ उसका सट्टा करने की कोशिश की। बहुत दौड़-धूप करने के बाद वह सट्टा पार पड़ा; अर्थात् मैं दस वर्ष के एक बालक को दी गई। उस बालक की आठ वर्ष की बहिन एक तीसरे सात वर्ष के लड़के को दिलाई गई, उस तीसरे लड़के की पाँच वर्ष की बहिन एक चौथे पैंतीस वर्ष के दुजहे वर को दिलाई गई, और उस चौथे की दो वर्ष की बेटी मेरे भाई को मिली !! वे चारों ही विवाह एक साथ हुए; क्योंकि एक-दूसरे का विश्वास किसी को नहीं होता था।

देवता लोग—राम ! राम !! कैसा घोर अन्याय है! विवाह क्या है, मानो कोई कठपुतलियों का खिलवाड़ है। ऊँट-छछूँदर का मेल, भैंस-चूहे का मेल !

भानमती—मेरा विवाह कब और कैसे हुआ, मुझे पता नहीं, परन्तु जब मैं बड़ी हुई, तो सुना

कि मेरा विवाह तीन वर्ष की अवस्था में मेरी माता की गोद में ही हुआ था; और विवाह के दस दिन बाद ही मेरा पति शातला की बीमारी से मर गया। मेरे माता-पिता उस समय रोए-पीटे होंगे; पर मुझे कुछ मालूम नहीं।

उत्तरी भारत में और विशेषकर राजपूताना में होली का त्योहार कैसे वीभत्स ढङ्ग से मनाया जाता है और उसके द्वारा अश्लीलता का कैसा प्रचार होता है, यह सब जानते हैं। उसी का चित्र नीचे उद्धृत किया जाता है। बयान करने वाली वही ऊपर कही गई भानमती है। [पृष्ठ १५१—१५३]

इस घटना के थोड़े दिनों बाद ही होली का त्योहार आ गया। फाल्गुन शुक्ला अष्टमी से ही इस समाज में खुले-आम अश्लीलता ही अश्लीलता हो जाती है। छोटे-छोटे बालक भी गलियों में अश्लील गालियाँ बकते और अश्लील तथा वीभत्स गायन गाते फिरते हैं, जिसके सुनने से लज्जा को भो लज्जा आती है, पर उनके माता-पिताओं को नहीं आती। छोटे बालक उन अश्लील गालियों और गायनों का मर्म तो समझते नहीं, अपने घर में माता तथा बहिनों के सामने भी उसी तरह बकते और गाते हैं, जिनको सुन-सुनकर सब हँस देती हैं। मुहल्ले-मुहल्ले में व्यभिचार-पूर्ण तमाशे आरम्भ हो जाते हैं। साधु-फ़क़ीरों का अपनी चेलियों के साथ व्यभिचार; गुरु, पुरोहितों और ज्योतिषियों का अपनी यजमानि-नियों के साथ व्यभिचार; मुसलमानों का हिन्दू-स्त्रियों से तथा हिन्दुओं का मुसलमान-स्त्रियों से कुत्सित प्रेम, अनजान विदेशियों से पनघट से पानी भरते समय कुल-ललनाओं का प्रेम; देवर-भौजाई, जेठ-भौजाई, चाची-जेठवता, मामी-नानदा, साली-बहनोई का, सौतेली माँ से बेटे का प्रेम, इस तरह के व्यभिचारपूर्ण दृश्य इन तमाशों में अश्लील गायन, अश्लील हाव-भाव और अश्लील बोल-चाल द्वारा दिखाए जाते हैं। तमाशा जितना ही अधिक अश्लीलतापूर्ण शब्दों में किया जाता है, उतनी ही अधिक उसकी तारीफ़ होती है। अश्लीलता में कसर केवल इतनी ही रहती है कि इनमें स्त्री का स्वाँग भी पुरुष ही करते हैं। इसलिए स्त्री-पुरुष का साक्षात् समागम नहीं हो सकता! इसके अतिरिक्त किसी बात की कसर नहीं रहती। इन तमाशों को देखने के लिए पुरुष-स्त्री, छोटी-बड़ी, विधवा-सधवा सब एकत्र होती हैं। ऐसे अवसरों पर किसी भी पुरुष या स्त्री का मन अपने क़ाबू में नहीं रह सकता। जिनके पति हों, उनकी भी प्रवृत्ति इन महान् अनर्थकारी अभिनयों को देखकर व्यभिचार की ओर हो जाती है; फिर जिनके पति न हों, उनका तो कहना ही क्या? इन तमाशों के अवसरों पर अनेक विधवाएँ बिगड़ती हैं। मैं भी सब की तरह सदा तमाशे देखने जाती। अब की होली में इन तमाशों का असर मेरे चित्त पर इतना पड़ा कि काम-वासना एकदम उद्दीप्त हो गई। रही-सही कसर होलिका-दहन के समय तथा उसके दूसरे दिन हमारे ही कुटुम्ब के छोटे-बड़े, पिता, भाई, भतीजों के हमारे सामने किए हुए अश्लील नृत्य, अश्लील बकवाद तथा भ्रष्ट गायनों ने पूरी करा दी।

रमा—क्या तुम्हारे पिता, भाई, भतीजे तुम्हारे सामने ही यह महान् पैशाचिक काण्ड करते थे?

भानमती—हमारे मुहल्ले की बहुएँ एकत्र होकर चबूतरों पर बैठ जातीं; और हम बेटियाँ, जो अपनी ससुराल नहीं जाती थीं, उनके पीछे छिपकर मुँह ढाँप कर बैठ जातीं। पुरुष उन बहुओं के नाम ले-लेकर अश्लील गालियाँ बकते, उनको लक्ष्य कर अश्लील हाव-भाव करते। उनके सामने स्त्री-पुरुष के सहवास के समय के नङ्गे चित्र और नङ्गे खिलौने रख कर उनको दिखाते; और कोई-कोई तो उनके सामने नङ्गे होकर नृत्य करते। ये सब दुष्कृतियाँ पीछे बैठी हुई हम भी देखतीं। यह बात उन लोगों से छिपी नहीं रहती

थी। जिनके पति जीवित होते हैं, वे अपनी-अपनी ससुराल में रहती हैं,वहाँ भी यही दृश्य होते हैं!

धर्मराज—इन लोगों के व्यवहार से तो पिशाच-राक्षस भी शरमाते हैं।

भानमती—इस होली के दृश्य देखने के बाद मेरा मन क़ाबू में न रहा—और किसी न किसी पुरुष से शीघ्र मिलने का मैंने निश्चय कर लिया। मैं यौवन में दीवानी-सी रहने लगी।

हिन्दू-समाज और हिन्दू-धर्म में पुरुष और स्त्री के बीच कैसा अन्यायपूर्ण भेद-भाव बर्ता जाता है, यह नीचे लिखे हुए बयान से सिद्ध होता है। बयान करने वाली सुशीला नाम की ब्राह्मणी विधवा है [पृष्ठ १८०—१८२]

सुशीला—मैं ईश्वर को नहीं मानती थी। मेरा यह विचार था कि यदि ईश्वर कहीं होता, तो संसार में इतने ज़ुल्म, इतने पक्षपात क्यों होते? लोग ईश्वर को सर्व-व्यापक, जगत्पिता, न्यायकारी आदि विशेषण देते हैं, परन्तु यदि वह सर्वव्यापक होता, तो उसके रहते लोग छुप-कर घोरातिघोर दुराचार करते? और स्थानों की बात जाने दीजिए, ख़ास उसी के मन्दिरों में, उसी के तीर्थों में, जहाँ वह मूर्त्तिमान् माना जाता है, उसी के ठेकेदार महन्त, आचार्य, पुजारी, पण्डित और कथक्कड़ लोग ऐसे-ऐसे पाप-कर्म करते हैं, जिनको सुनकर ही साधारण लोग भय से काँप उठते हैं। इससे सिद्ध होता है कि उसके ठेकेदार स्वयं ही उसको नहीं मानते; किन्तु निर्बल आत्मा के लोगों को उसके नाम से डरा-धमका कर अपना स्वार्थ सिद्ध करने के लिए उन्होंने उसके अस्तित्व की कल्पना कर ली है। यदि वह ईश्वर जगत् का पिता होता, तो पिता अपनी सन्तानों में इतनी विषमता कदापि न रखता कि एक तो संसार के सब पदार्थों का भोग करता हुआ अघा जाय और दूसरा जड़-पाषाण से भी गया-गुज़रा जन्म बिताने को मजबूर किया जाय। पुरुष और स्त्री में इतना भेद रहे कि एक के जन्म में आनन्द-मङ्गल मनाया जाय और दूसरे के जन्म में रोया जाय। एक भोक्ता और दूसरी भोग्य-पदार्थ मानी जाय। पुरुष हज़ार स्त्रियाँ भोगने को स्वतन्त्र हों और स्त्री को एक पुरुष की प्राप्ति का सौभाग्य भी न मिले। स्त्री के मरने पर पुरुष चिता की बाट देखता हुआ भी एक नवीन कन्या का जीवन नष्ट करे; और विधवा होने पर एक छः वर्षीया बालिका को भी आजीवन सतीत्व-रक्षा करते हुए जीवन बिताने पर मजबूर किया जाय। कहाँ है उसका जगत्पितापन? यदि उसका वास्तविक अस्तित्व है, और वह किसी का पिता है, तो केवल पुरुषों का पिता है, जगत् का नहीं। यदि ईश्वर न्यायकारी होता, तो क्या उसकी महान् अत्याचारी नर-पिशाच सन्तान इस तरह के अनर्थ करती हुई भी धन-धान्य और कीर्त्ति से परिपूर्ण रह सकती? अस्तु, भगवन्! ईश्वर के अस्तित्व का ढोंग पुरुषों ने केवल अपने स्वार्थ के लिए रच लिया है—ऐसी मेरी धारणा थी।

जाति-धर्म—क्या तुम पाप-पुण्य को भी नहीं मानतीं?

सुशीला—नहीं प्रभो! मैं नहीं मानती। यह पाप-पुण्य का ढोंग भी इन पुरुषों ने ही अपने स्वार्थ के लिए रच लिया है। धर्मशास्त्र पुराणादि सब पुरुषों के ही बनाए हुए हैं, अतः उन्होंने अपनी अनुकूलता वाले व्यापार को पुण्य और अपनी प्रतिकूलता के व्यवहारों को पाप मान लिया। तिस पर भी सन्तोष नहीं हुआ, तो अपने लिए हर बात में स्वतन्त्रता रख ली और स्त्रियों को परतन्त्र बना दिया। पुरुष चाहे जितना व्यभिचार करे, वह पापी नहीं माना जाता; परन्तु स्त्री यदि किसी पुरुष के साथ एकान्त में निर्दोष वार्त्तालाप भी कर ले, तो उस पर अनेक तरह के इलज़ाम लगाकर पापिनी, अभागिनी कहकर उसका मुँह काला किया जाता है।

राजपूताना के भिन्न-भिन्न स्थानों में अक्सर कुछ

मेले लगते हैं जिनमें स्त्रियाँ भी भाग लेती हैं। मेले क्या हैं, अश्लीलता के घर हैं। ऐसे ही एक मेले का चित्र नीचे खींचा गया है। बयान करने वाली गङ्गा नाम की एक ब्राह्मणी विधवा है [पृष्ठ १९९]

कुछ दिनों बाद शहर से कुछ दूर एक मेला लगा। यह मेला प्रति वर्ष लगता है, और लोग सवारियों पर बैठ-बैठकर जाया करते हैं। हमने भी एक बैलगाड़ी किराए पर की। मेरी बहिन, भावज तथा दूसरी मेल-जोल की एक-दो स्त्रियों के साथ मैं मेले में गई। गाड़ी पर छतरी लगती है; परन्तु उसके आगे का भाग खुला रहता है; और उस खुले भाग में जो सबसे अधिक ख़ूबसूरत तथा कम उमर की स्त्री होती है, वही बैठाई जाती है; ताकि मेले में आने वाले रसिक लोग सब उस गाड़ी पर ही टूट पड़ें। उस समय अपनी सहेलियों में सबसे अधिक रूपवती नवोढ़ा मैं ही थी, अतः सज-धज कर मैं ही अग्र भाग में बैठी।

कुल-धर्म—तुम तो विधवा थीं। ऐसे मेलों में सजावट के साथ क्यों गईं ?

गङ्गा—महाराज, उस समाज में विधवाओं के लिए मेलों में जाने की कोई रुकावट नहीं है। वे सुहागिनों के समान वस्त्राभूषण भी पहन सकती हैं। केवल शीशफूल, विशेष प्रकार के एक-दो गहने तथा गोटे-किनारी के वस्त्रों के सिवाय दूसरे बढ़िया से बढ़िया शृङ्गार कर सकती हैं।

क्षमा—और फिर उनसे आजन्म ब्रह्मचारिणी रहने की आशा की जाती है ?

गङ्गा—मेले में छैले पुरुष झुण्ड बाँधकर गाड़ियों के पास आकर खड़े हो जाते हैं। गाड़ी में बैठी हुई स्त्रियाँ उनके नाम ले-लेकर अश्लील से अश्लील गालियाँ गाती हैं, जिनके पुरस्कार-स्वरूप वे उनके मर्मस्थानों पर तक-तक कर नींबू, अनार, नासपाती, खटाई की पुड़िया तथा पान आदि फेंकते हैं। केवल इतना ही नहीं, वे उनके मर्मस्थानों पर हाथाबाँही करते और चुटकी काटते हैं। इससे स्त्रियाँ ख़ूब प्रसन्न होती हैं; और अश्लील गाने गाती हैं। जिस गाड़ी के आगे बैठने वाली, जितनी अधिक सुन्दरी होती है, उतनी ही उस गाड़ी के पास अधिक भीड़ होती है। पुरुषों के आघातों की वर्षा अधिकतर आगे बैठने वाली पर ही होती है। मेरे प्रताप से मेले भर में सबसे प्रथम नम्बर मेरी गाड़ी का रहा; अर्थात् सबसे अधिक भीड़ हमारी गाड़ी के पास ही जुटी रही; और आमदनी भी सबसे अधिक हुई। मेरे शरीर पर चारों ओर से इतने आघात होते थे कि एक क्षण भर भी अवकाश नहीं मिलता था। इस पर भी जितनी व्यथा मुझे होनी चाहिए थी, उतनी यौवन के जोश में नहीं हुई; यद्यपि मेरे अङ्ग ताड़ना से लाल अवश्य हो गए थे! पीड़ा होने पर भी वे आघात मुझे नागवार नहीं गुज़रते थे। गाड़ी के पास आने वाले ग्राहकों में मेरी बहिन के दोस्त का भतीजा मुझ पर मुख्य रूप से आशिक़ था, जिसके सन्देशे बुढ़िया कुटनी के द्वारा मेरे पास आ चुके थे। गाड़ी के पास जब यह धूम मची हुई थी, उसके नौकर ने मेरी बहिन के साथ अलग होकर मेरे लिए बातचीत कर सौदा तय कर लिया। उससे मेरे मिलने के लिए ३००) रुपए ठहरे; और उसी रात को बहिन के साथ मैं उससे मिलने गई।

एक देवता—क्या यह किसी वेश्या का बयान हो रहा है ?

क्षमा—भगवन्, मालूम होता है, आपका ध्यान कहीं दूसरी ओर चला गया है। यह बयान एक बहुत उच्च कुल में उत्पन्न हुई ब्राह्मणी का है, जिसका समाज अपने कृत्यों से वेश्याओं को भी मात करता है, जिसके चरित्र सुन-सुनकर लज्जा को भी लज्जा आती है। जिस समाज की यह घोर पापमयी परिस्थिति है, जिस समाज की युवतियों को यह शिक्षा मिलती है, वह अपनी स्त्रियों को सदाचारिणी और विधवाओं को

आजन्म ब्रह्मचारिणी तथा सच्चरित्र रखने की डींग हाँकता है !

वर्तमान हिन्दू-गृहस्थाश्रम का जीवन कैसा दुखमय और पापमय है, इसका कैसा अच्छा चित्र लेखक ने नीचे खींचा है [पृष्ठ ३०१]

क्या वर्त्तमान समय में इस समाज का गृहस्थाश्रम वास्तव में सुख-शान्तिमय और सुधरा हुआ है ? युवावस्था-सम्पन्न, वैधव्य दुख से कातर बहू-बेटियाँ जिस घर में दिन-रात रोती-बिलखती आयु का एक-एक दिन युग के समान व्यतीत करें, क्या वह सुख-शान्तिमय गृहस्थ की गणना में आने योग्य कहा जा सकता है ? जिस घर में दुश्चरित्र स्त्री-पुरुष बालक-बालिकाओं को भ्रष्ट करते रहें, क्या वह सद्गृहस्थ कहला सकता है ? जिस घर में विधवा बहिनें, बहुएँ और भावजों के साथ निष्ठुर व्यवहार होता है और उनके खाने-पीने के प्रबन्ध के लिए अदालतों में मुक़दमे लड़े जाते हैं, क्या वह सच्चा सद्गृहस्थ होने का दावा रख सकता है ? जो घर विधवा स्त्रियों के कारण कलह का क्षेत्र बना रहता है तथा जिस घर को स्त्रियों का तिरस्कार होने के कारण देवता भी छोड़ देते हैं, क्या वह घर उच्च वर्ण के हिन्दुओं का सद्गृहस्थ समझा जा सकता है ? कहने का प्रयोजन यह है कि स्त्रियों पर इस तरह के अत्याचार होने के कारण वर्त्तमान समय में इनके गृहस्थाश्रम की वास्तविक व्यवस्था बिगड़ कर घोर दुखमय हो रही है। × × × गृहस्थी में आधा हिस्सा पुरुष का और आधा स्त्री का होता है। जिस समाज में दोनों भाग बलवान् होते हैं और एक दूसरे के प्रति अपना कर्त्तव्य उचित रूप से पालन करते हैं, वही दुनिया में ठहर सकता है, परन्तु जिस समाज का आधा अङ्ग अत्याचार सहते-सहते निकम्मा हो जाय, वह लम्बी मुद्दत तक जीवित नहीं रह सकता।

हिन्दू-समाज में लड़के-लड़कियों का विवाह गुड़िया का खेल समझा जाता है। लड़कियों के विवाह की कोई उमर निश्चित नहीं है। वह किसी भी उमर में विवाह की वेदी पर बलिदान कर दी जाती हैं। इसी पर "इन्साफ़" के लेखक (लेखिका ?) के विचार पढ़िए, जो नीचे दिए जाते हैं [पृष्ठ २३४—२३८]

× × × कन्याओं की सगाई करने के लिए उमर नियत नहीं है। जन्म से लेकर विवाह से पहले तक वह चाहे जब कर दी जाती है ! वर की आयु का कोई बन्धन नहीं—कन्या से छोटा हो, समान हो, उससे बड़ा या उसके पितामह की अवस्था का भी क्यों न हो, केवल होना चाहिए धनवान् और अपनी बराबरी का जातिवान्। वर के गुणों की तरफ़ ध्यान देने की कोई आवश्यकता नहीं। जब दस-ग्यारह वर्ष की अवस्था से पूर्व ही विवाह कर दिया जाता है, तो उस बालक के गुण-अवगुण का पता ही कैसे चल सकता है ? रहे-सहे स्वास्थ्य की जाँच करने की भी ज़रूरत नहीं रहती ; क्योंकि बालक-वर के स्वास्थ्य की तो जाँच ही क्या हो सकती है ? और वृद्ध-वर का स्वास्थ्य अधिकतर बीता हुआ होता ही है। वर के माता-पिता और कुटुम्ब के आचरण का भी कुछ विचार नहीं किया जाता और न यह देखा जाता है कि इनके घर में स्त्री-पुरुषों का परस्पर कैसा व्यवहार है। मैं ऊपर कह चुकी हूँ कि यदि विचार किया जाता है, तो सिर्फ़ धन और जाति की बराबरी का। जब ये दोनों गुण मिलें, तो फिर तीसरी किसी बात के देखने की ज़रूरत नहीं। चट सगाई कर ली जाती है, और सगाई करने का काम प्रायः स्त्रियों के अधिकार में देकर पुरुष निश्चिन्त हो जाते हैं। इन स्त्रियों के पास धूर्त बातें बनाकर कन्याओं की मँगनी करते हैं, और वे उनकी बातों में आकर बिना सोचे-विचारे दे डालती हैं। सगाई पक्की हो जाती है। नतीजा यह होता है कि ऊँट का बिल्ली के साथ और चूहे का भैंस के साथ विवाह होने के उदाहरण इस समाज में घटित होते हैं। सगाई हो जाने के बाद वह ऐसी पक्की हो जाती है

कि फिर कभी छूट नहीं सकती, चाहे वर में कोई अवगुण ही प्रतीत हो—बेजोड़ हो अथवा सम्बन्धियों का दुराचार ज़ाहिर हो जाय। अगर किसी अवगुण के कारण कोई सगाई छोड़ दे, तो जाति के लोग सिर पर चढ़ आते हैं। सगाई क्या हुई, मानो विवाह ही हो गया।

धर्मशास्त्र और वैद्यक सिद्धान्तानुसार अठारह वर्ष से प्रथम विवाह होना सर्वथा वर्जित है; परन्तु शास्त्रों को या कन्या के भावी सुख-दुख को कौन देखता है? यहाँ तो मतलब अपने स्वार्थ से है। सम्बन्धी प्रतिष्ठित हुआ, तो अपनी प्रतिष्ठा बढ़ती है; और धनवान् होता है, तो उससे येन-केन-प्रकारेण सहारा या आपत्ति-काल में सहायता की आशा रक्खी जाती है। यदि और कोई आशा न भी रक्खी जावे, तो इतना भाव तो अवश्य होता है कि धनवान् के घर कन्या देने से उसका बोझ हम पर कुछ न रहेगा। धर्मशास्त्रानुसार कन्या-दान वर के प्रति होना चाहिए; परन्तु इनके यहाँ कन्या-दान समधी को दिया जाता है; क्योंकि वर तो अबोध रहता है; और वर को देने से इनकी स्वार्थ-सिद्धि भी नहीं होती। यदि धनवान् तथा प्रतिष्ठावान् के कुँवारे लड़के का संयोग न बैठा, तो फिर दूजवर अर्थात् जिसकी प्रथम स्त्री मर गई हो, उसकी तलाश की जाती है; और चालीस-पचास वर्ष तक के धनी एवं प्रतिष्ठित रँडुओं को दस-ग्यारह वर्ष की कन्या दे डालने में इनको कुछ भी सङ्कोच, दया, लज्जा एवं भय प्रतीत नहीं होता! कन्या देते समय ये लोग इस बात का कुछ भी विचार नहीं करते कि हिन्दू-जाति की स्त्री के लिए इस लोक और परलोक का वास्तविक सुख सिर्फ़ पति पर ही निर्भर है। यदि पति सुयोग्य, सदाचारी और निरोग हुआ, तो उन्हें अन्य सुखों की परवाह कम रहती है; परन्तु यदि पति का सुख समुचित रूप से न हो, तो त्रैलोक्य के राज्य की सुख-समृद्धि भी उन्हें ज़रा भी आनन्ददायक नहीं होती। इतना होने पर भी कन्या देने में ये लोग भेड़-बकरियों को बेचने के समय जितना विचार करते हैं, उतना भी नहीं करते। फिर वे अभागिनें यदि दुख पाकर कुमार्गगामिनी हों, तो उनका सब अपराध भी उन्हीं के सिर मढ़ने को तैयार रहते हैं।

किसी स्वार्थ-पूर्त्ति के लिए कन्या देना शास्त्रों ने राक्षसी विवाह माना है; परन्तु इस समाज में कोई धन लेकर, कोई पीछे से अर्थ-प्राप्ति के भाव से, कोई अपने पुत्र के सट्टे में और कोई अन्य प्रयोजन की सिद्धि के लिए अपनी कन्या देकर उसका सर्वनाश करते हैं। इस तरह के आसुरी कार्य करते हुए भी ये लोग अपने को असुर नहीं मानते; बल्कि परम धार्मिक होने का घमण्ड करते हैं।

इस तरह के हज़ारों अत्याचार बाल-विवाह और वृद्ध-विवाह से उत्पन्न होने वाले विविध प्रकार से नित्य प्रति होते रहते हैं; जिनका अगर पूरा वर्णन किया जाय, तो आप लोगों के वर्षों तक सुनते रहने पर भी उसका अन्त न हो। इन अत्याचारों को स्त्री-जाति बिना किसी ऐतराज़ के सहन करती चली जा रही है; परन्तु पुरुषों को कुछ भी तरस नहीं आता, यद्यपि वे इन अत्याचारों का हाल अच्छी तरह जानते हैं; क्योंकि ये अत्याचार उन्हीं के किए हुए होते हैं।

भगवन्! कितने घोर अन्याय की बात है कि पुरुष तो संसार का सब सुख भोग कर लड़के-लड़कियों के पिता, पितामह होकर भी पिछली अवस्था में एक दस-ग्यारह वर्ष की अबोध बालिका का जन्म बिगाड़ने के लिए एक, दो, चार, दस—चाहे जितने पुनर्विवाह कर लें; किन्तु पुरुषों की कर्त्तव्यहीनता, स्वार्थलोलुपता एवं दुष्टता के परिणाम से ज़बरदस्ती विधवा की गई आठ, दस, बारह, पन्द्रह वर्ष की अबोध एवं निर्दोष बालिकाएँ, जिनको यह भी पता नहीं कि संसार का सुख और पति का प्रेम किस चिड़िया का नाम है, जन्म-भर के लिए संसार

के सब सुखों को त्याग कर बाल-ब्रह्मचारिणी, तपस्विनी या योगिनी बने रहने के लिए बाध्य की जाती हैं !!

विधवाओं के ऊपर अत्याचार करने का तो हिन्दू-समाज ने ठेका ही सा ले रक्खा है। विधवाओं की करुण-कहानी "इन्साफ़" के लेखक (लेखिका ?) के शब्दों ही में सुनिए, जो नीचे उद्धृत की जाती है [पृष्ठ २३९—२४०]

बालिकाएँ चाहे जिस उमर में विधवा हो जायँ, इनका रूप-यौवन उसी तरह खिलता है, जिस तरह सधवाओं का; बल्कि विधवाओं का रूप-यौवन सधवाओं से अधिक प्रभावशाली और स्थायी होता है। अनेक प्रकार के सांसारिक विषय-भोगों की वासना कुदरती तौर से इन्हें भी सधवाओं की तरह या उनसे भी अधिक उत्पन्न होती है। सधवाओं को तो सब प्रकार के भोग प्राप्त हो जाने से शान्ति मिल जाती है, परन्तु विधवाओं की वासनाएँ कभी तृप्त न होने से बढ़ती ही रहती हैं। विधवाओं के अङ्ग भी सधवाओं की तरह ही बढ़ते हैं—किसी प्रकार की न्यूनाधिकता नहीं होती। इन बातों से सिद्ध होता है कि प्रकृति के सम्मुख विधवा और सधवा में कुछ भी फ़र्क़ नहीं होता। प्रकृति के विपरीत चलने से संसार में कोई भी सफलता प्राप्त नहीं कर सकता; और न प्रकृति के विरुद्ध बँधी हुई कोई सामाजिक मर्यादा ही धर्म-सङ्गत हो सकती है। श्रुति, स्मृति, वेद, पुराण, इतिहास आदि पुकार-पुकार कर कह रहे हैं कि ब्रह्मज्ञानियों के सिवाय प्रकृति को उल्लङ्घन करने की सामर्थ्य न तो आज तक किसी में हुई है और न भविष्य में होगी। अनेक बड़े-बड़े देवता, ऋषि, महर्षि और राजर्षि भी इस प्रकृति के चक्कर में आकर अपने कर्त्तव्य-पथ से विचलित हो गए, जिनकी सैकड़ों कथाएँ शास्त्रों में मौजूद हैं; और ईश्वर स्वयं कहते हैं—"मम माया दुरत्यया !" तब इन साधारण, अबोध, अशिक्षित और मूढ़ जीवों को प्रकृति के नियमों के उल्लङ्घन करने को बाधित किया जाता है, इससे अधिक अन्याय और मूर्खता किसी के विचार में भी नहीं आ सकती। × × × अगर ईश्वर की यह मर्ज़ी होती कि विधवा होने से संसार के विषयों से रहित हो जाय, तो वह विधवाओं के रूप बिगाड़ देता, यौवन छीन लेता, विषय-वासना हर लेता तथा विषय-भोग के सब सामान नष्ट कर देता; और पुरुषों की प्रवृत्ति उनसे हटा लेता, जैसे कि बिना ऋतु के पशुओं की प्रवृत्ति नहीं होती। कम से कम उनको गर्भ-स्थिति के अयोग्य तो अवश्य कर देता, ताकि गर्भपात और भ्रूण-हत्याएँ न होतीं !

*　　*　　*

क्षमा—सुनिए महाराज, जब बालिका विधवा हो जाती है, तब ये लोग इनके खाने-पीने, सोने-बैठने, फिरने-घूमने, हँसने-खेलने, विषय करने आदि के सब जन्म-सिद्ध अधिकार छीन लेते हैं। ये लोग उनके शरीर के प्राकृतिक वेगों को शान्त करने के लिए कोई भी व्यवस्था नहीं करते; बल्कि जहाँ तक हो सकता है इन वेगों और कामनाओं को उत्तेजित करने के साधनों का प्रयोग करते हैं।

धर्मराज—क्या विधवाओं का खान-पान, सोना-बैठना, हँसना आदि भी बन्द किया जाता है ?

क्षमा—हाँ ! महाराज, जब कभी कोई विधवा अच्छी स्वादिष्ट वस्तुएँ खाने या पीने को मन चलाती है, तो उसे टोकते हैं और कहते हैं कि विधवाओं के लिए स्वादिष्ट पदार्थ खाना वर्जित है। उन्हें तो उपवास करके शरीर सुखाना चाहिए। यदि वे साफ़-सुथरे वस्त्र पहनती हैं, तो लोग आँखें उठाकर देखते हैं; और बनाव करने के ताने मारते हैं; क्योंकि मैले-कुचैले वस्त्र ही लज्जा और शील-निवारणार्थ उनके लिए प्रस्तुत हैं। घर से बाहर पैर रखना इनके मत से घोर पाप करना है। अपने दुर्भाग्य और दुखों को याद करते हुए तथा शरीर के प्राकृतिक वेगों की यातना सहते हुए उनकी नींद हराम हो जाती है; फिर

हँसना-खेलना तो दूर की बात है। यदि इन दुखड़ों को घण्टे-आध घण्टे के लिए भूलकर कभी हँसने-खेलने में चित्त बहलाने को उत्सुक होती हैं, तो लोग ताने मारने लगते हैं—देखो राँड को हँसना-खेलना सूझ रहा है। सारांश यह कि एक जड़ मूर्त्ति की तरह रहने के सिवाय और कुछ भी करने का इस समाज में उनको अधिकार नहीं। हाँ, इनसे पशुओं की तरह काम लेने का पुरुषों को सदा अधिकार रहता है। फ़र्क़ इतना ही रहता है कि पशुओं को उनके शारीरिक वेग शान्त करने और जङ्गलों में आज़ादी से चरने का मौक़ा अच्छी तरह दिया जाता है; किन्तु इन बेचारियों को यह भी नसीब नहीं होता।

धर्मराज—वे इनको विषयों की उत्तेजना किस तरह देते हैं?

क्षमा—खान-पान के अच्छे-अच्छे सामान इनके सामने बनवाए जाते हैं, और इनको दिखा-कर सब खाते हैं। इनकी बराबरी की स्त्रियाँ इनके सामने नहा-धोकर तेल-फुलेल लगातीं और शृङ्गार करके अच्छे से अच्छे रेशमी चमकीले वस्त्र तथा मन को लुभाने वाले क़ीमती आभूषणों से सज कर त्योहार और विवाह आदि के अवसरों पर घूमती-फिरतीं, शृङ्गाररस-पूर्ण अश्लील गान गातीं और परस्पर हँसी-ठट्ठा करती हैं। युवा-वस्था के पुरुषों के साथ उनका सङ्ग बेरोक-टोक, सबके सामने और एकान्त में भी होता है। ये लोग उनके साथ दिल्लगी और छेड़छाड़ भी करते रहते हैं। पिता, भ्राता, ससुर, देवर और जेठ आदि रात के समय अपनी-अपनी स्त्रियों को साथ लेकर सजे हुए कमरों में बिजली की रोशनी जलाकर किलोल करते हैं; और ये बेचारी एक कोने में पड़ी हुई सब दृश्य आँखों से देखती एवं कानों से सुनती रहती हैं। सारांश यह कि वासनाओं को उत्पन्न करने वाले सब विषय इनकी इन्द्रियों के सामने उपस्थित किए जाते हैं, मानो भूख से आतुर जीव को ज़ञ्जीर से बाँधकर उसकी नज़र के सामने खाने की सामग्री रखकर उसे चिढ़ाते और व्याकुल करते हैं। यही नहीं, यदि उनको कोई धार्मिक ग्रन्थ, गीता, सहस्रनाम आदि पढ़ाने आता है, तो उसको एकान्त में बैठकर पढ़वाते हैं; परन्तु वह उनको पढ़ाने की ओर ध्यान न रखकर, पाप-दृष्टि से बिगाड़ने की फ़िक्र में रहता है (राधा का बयान देखिए), कोई कथा-वार्त्ता सुनाने आता है, तो उसकी भी दृष्टि उसी प्रकार की होती है। यदि कोई उनके दुखों में सहानुभूति दिखाकर नज़दीक होता है, तो वह भी अन्दर से दुष्ट-भावों से भरा होता है। यदि वे किसी धर्माचार्य या गुरु की शरण में जाती हैं, तो वहाँ भी सब साज-बाज इन्द्रियों को उत्तेजना देने वाले ही होते हैं; और अक्सर देखा जाता है कि वे लोग वैराग्य एवं संन्यास का उपदेश देने के बदले अपने स्वार्थ के लिए उन्हें भोग-विलासों में ही घसीटते हैं। (सुशीला का बयान देखिए) राधा-कृष्ण के शृङ्गार-रस के गान तथा रास-लीला आदि से उनको उत्तेजित किया जाता है (राधा का बयान देखिए)। देवालय और तीर्थ-स्थान, जहाँ इनके जाने में किसी प्रकार की आपत्ति नहीं समझी जाती, स्वतन्त्रतापूर्वक इनको विषय-भोगों में प्रवृत्त करने के लिए सुरक्षित क़िले ही हैं।

उत्तेजनाओं का उपरोक्त वर्णन प्रतिष्ठित एवं धनी विधवाओं के सम्बन्ध में है; परन्तु जो दरिद्र घर की विधवाएँ होती हैं, उनकी दशा वर्णनातीत है। बेचारी जहाँ जाती हैं, जहाँ बैठती हैं, वहीं उनको सब प्रकार के विषयों की उत्तेज-नाएँ ही नहीं मिलतीं; वरन् ये पुरुष-व्याघ्र सर्वदा उन्हें हड़पने के लिए तैयार रहते हैं। बाल्यावस्था में माता-पिता अपने कामों के लिए उन्हें कहीं भेजते हैं, तो दुष्ट लोग मार्ग में तथा जहाँ जाती हैं, उन स्थानों में सताते रहते हैं (मनोरमा का बयान देखिए)। यदि किसी की नौकरी करती हैं, तो वह स्वामी और उसके घर के अन्य नौकर-चाकर उससे छेड़-छाड़ करके

भ्रष्ट करते हैं। स्वामी की स्त्रियों के साथ मेलों, उत्सवों आदि में बाहर जाती हैं, तो अश्लील गायन और दुष्टों के धावे झेलने में सबसे पहला नम्बर उन्हीं का आता है (आनन्दी का बयान देखिए)। अपनी स्वामिनी के शृङ्गार, भोग-विलास और शय्यादि तैयार करने का काम उन्हें ही सौंपा जाता है; और कई अवसर तो ऐसे भी आ जाते हैं कि स्त्री-पुरुष निर्लज्ज होकर हास्य-क्रीड़ा भी उनके सामने कर लेते हैं (आनन्दी, मनोरमा और सुशीला के बयान देखिए)। इससे अधिक उत्तेजना संसार में और क्या हो सकती है ? घोर वीभत्स, राक्षसीय होलिकोत्सव का वर्णन भानमती के बयान में है, क्या इससे अधिक उत्तेजना देने वाले किसी अभिनय की कल्पना की जा सकती है ?

क्या इस तरह की उत्तेजनाओं में रहकर इन्द्रियों का विषयों से विरोध करना सम्भव है ? क्या कोई पुरुष, चाहे वह पण्डित हो या ब्रह्मचारी, आचार्य हो या वैरागी, भोगी हो या संन्यासी, साधू हो या ज्ञानी, चाहे देवता ही क्यों न हो, यह दावा कर सकता है कि इस तरह की स्थिति में रहकर इन्द्रियों को वश में रख सकेगा ?

* * *

ऊपर जितने अवतरण इस पुस्तक से उद्धृत किए गए हैं, उनसे यह काफ़ी तौर पर साबित हो जाता है कि यह पुस्तक सामाजिक बुराइयों से जर्जर हिन्दू-जाति और विशेष करके मारवाड़ी-समाज के सुधार के लिए उतनी ही उपयोगी है, जितना कि पुराने बुख़ार से पीड़ित रोगी के लिए चिरायते का काढ़ा। जो लोग अश्लीलता की गुहार मचाकर इसके महत्व को कम करना चाहते हैं, वे हिन्दू-जाति के साथ शत्रुता कर रहे हैं और समाज-सुधार के रास्ते में रोड़ा अटका रहे हैं।

अन्त में मैं अपने श्रद्धेय मित्र पं० बनारसीदास जी चतुर्वेदी से निवेदन करता हूँ कि जिस तरह वे "घासलेटी साहित्य" के सम्बन्ध में बुलेटिन निकाल कर अपने विचारों को जनता के सामने रख रहे हैं, उसी तरह मैं चाहता हूँ कि मेरे इस लेख को भी वे एक बुलेटिन के तौर पर प्रकाशित कर दें, जिसमें कि जनता के सामने दोनों पक्ष की बातें आ जायँ और एकतरफ़ा डिग्री न हो।

चित्र-दर्शन

[रचयिता—श्री० रमाशङ्कर जी शुक्ल, एम० ए० 'रसाल']

जाहि अनुराधे हौ हिए में अरी राधे ! तुम, जाके हित नेह की समाधि साधे रहतीं।
नाधे हौ निरन्तर हू अन्तर बिहाय सब, प्रेम-नेम सीझि जाए रीझि रहो चहतीं॥
सोई यदुबीर की लिखाइ तसबीर लाई, लखौ जाके लखिबे को अँखियाँ उमहतीं।
लखि तसबीर सखि नैन तो निवाजि लैहैं, हियहिं निवाजैं कैसे, सो तौ नेक कहतीं॥

विधवा-विवाह की नैतिकता

[ले० ऋषिवर श्री० रामगोपाल जी मोहता]
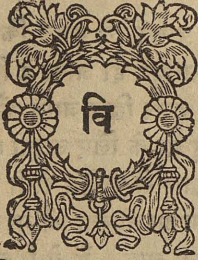
विधवा-विवाह की नैतिकता के विषय में सुधारकों में भी प्रायः मतभेद देखने में आता है। कइयों के मत में कुँवारी कन्या और बाल-विधवा के विवाहों की नैतिकता एक समान है; कई लोग बाल-विधवा के विवाह को आपद्धर्म मानते हैं, कई विधवा-विवाह को आवश्यक मानते हुए भी, इसको नीची दृष्टि से देखते हैं और कई लोग इसको आदर्श विवाह नहीं मानते। अतः विधवा-विवाह की नैतिकता के विषय में कुछ चर्चा करना आवश्यक प्रतीत होता है। अस्तु—

इस विषय की मीमांसा करने के लिए सबसे पहले यही विचारना चाहिए कि विवाह का वास्तविक प्रयोजन क्या है? आहार, निद्रा, भय, मैथुन आदि अनेक प्रकार के प्राकृतिक वेग अर्थात् इन्द्रियों के विषय-भोग और शीत, उष्ण, सुख, दुख आदि द्वन्द प्रत्येक शरीरधारी के स्वाभाविक धर्म हैं तथा इन वेगों और द्वन्दों को शान्त करना भी प्रत्येक के लिए अनिवार्य है—यह बात सभी मानते हैं। सृष्टि के आरम्भ से लेकर अब तक ऐसे इने-गिने महापुरुषों ही के नाम सुनने में आते हैं, जो इन प्राकृतिक वेगों से सर्वथा मुक्त रहे हों। ऐसे महापुरुष मनुष्य-कोटि से परे अलौकिक शक्तिशाली माने जाते हैं और विधि-निषेध के नियम उन पर लागू नहीं होते। परन्तु हमको जन-साधारण के लिए विचार करना है, न कि असाधारण दिव्य आत्माओं के!

मनुष्य-शरीर इतर निम्न-श्रेणी के प्राणियों से ऊँचा माना गया है, क्योंकि इसमें बुद्धि का विशेष विकास होने से आत्म-ज्ञान की योग्यता है। परन्तु जब तक वह उक्त प्राकृतिक वेगों से पीड़ित रहता है, तब तक उसका मन विक्षिप्त रहता है, वह आत्मज्ञान की तरफ़ लग ही नहीं सकता। इसलिए उक्त प्राकृतिक वेगों को शान्त करना उसके लिए भी आवश्यक होता है, परन्तु उन्हें पशु-पक्षियों की तरह उच्छृङ्खलता से शान्त न करके, उसको ऐसे नियमित रूप से बुद्धिमत्ता के साथ शान्त करना चाहिए कि जिससे विषयादिकों में अत्यन्त तल्लीन होकर अधःपतन न होवे और मनुष्य-शरीर के वास्तविक लक्ष्य आत्मोन्नति के पथ पर अग्रसर होने में रुकावट न पड़े।

यदि इन प्राकृतिक वेगों को सर्वथा मार डालने का हठ किया जाय तो इसमें सफलता नहीं हो सकती, क्योंकि शरीर प्रकृति का कार्य है और इसके रहते प्रकृति पर सर्वथा विजय पाना असम्भव है। इसलिए इन वेगों को शान्त करने के लिए विषयों को मर्यादित रूप में भोगते हुए जीवन व्यतीत करके आत्मोन्नति के पथ पर अग्रसर होना ही धर्म माना गया है, और इसी सिद्धान्त के अनुसार शरीर के समस्त व्यवहारों की देश, काल और व्यक्तियों की आवश्यकताओं और परिस्थितियों के अनुसार समय-समय पर मर्यादाएँ बाँधी जाती हैं। इन्हीं को धर्म, नीति, न्याय या आदर्श कहते हैं। स्त्री-पुरुष के विवाह की मर्यादा भी उसी प्रयोजन की सिद्धि के लिए बाँधी गई है, अर्थात् एक पुरुष को एक स्त्री के साथ जोड़ दिया जाता है, ताकि वे मर्यादित रूप से गृहस्थी के कर्त्तव्य पालन करते हुए तथा अपनी-अपनी योग्यतानुसार एक दूसरे की शारीरिक आवश्यकताएँ पूरी करते हुए एक दूसरे की आत्मोन्नति में सहायक हों तथा संसार-रूपी नाटक में अपना-अपना पार्ट नियमित रूप से प्ले करते हुए अपने लक्ष्य पर पहुँचने का यत्न करें। इन नियमों के पालन करने-करवाने के लिए ही अनेक समाजों की सृष्टि हुई है।

प्रायः देखा जाता है कि संसार में स्त्री-पुरुषों की संख्या बराबर ही हुआ करती है, अतएव साधारणतया एक स्त्री का एक पुरुष के साथ विवाहित होकर यावज्जीवन निर्वाह करना समाज के लिए श्रेष्ठ मर्यादा मानी गई; परन्तु विशेष परिस्थितियों में साधारण नियमों के अपवाद भी होते हैं—जिस तरह युद्ध के समय अधिक संख्या में पुरुषों के मारे जाने पर एक पुरुष का अनेक

स्त्रियों के साथ विवाह करना भी न्यायोचित माना जाता है, इत्यादि ।

विषयों का नियन्त्रण ही धर्म, नीति या आदर्श हो सकता है । उनको सर्वथा मार डालने का प्रयत्न धर्म, नीति या आदर्श नहीं कहा जा सकता ; क्योंकि जो बात हो ही नहीं सकती वह धर्म, नीति या आदर्श कैसे और किसका होगा ? किसी विषय का अभाव धर्म नहीं हो सकता—भाव ही धर्म हो सकता है । अब हम अपने असली विषय 'विधवा-विवाह' पर आते हैं । अस्तु—

क्षुधा, तृषा और भोगेच्छा आदि प्राकृतिक वेग तथा शीतोष्ण, सुख, दुख, मानापमान आदि द्वन्द विधवाओं के शरीर में भी अन्य प्राणियों—मनुष्य और सधवा स्त्रियों के समान ही होते हैं, चाहे बाल-विधवा हो या युवा ! चाहे पुरुष-सहवास से सर्वथा वञ्चित रही हो या कुछ काल गार्हस्थ्य जीवन व्यतीत कर चुकी हो—जब तक शरीर है तब तक क्षुधा, तृषा, शीतोष्ण लगेंगे ही और जब तक शरीर में यौवन है, तब तक काम का प्राकृतिक वेग भी अनिवार्य ही है । यदि एक पुरुष के साथ मर्यादित रूप से कामादि वेगों को शान्त करने तथा भोजन, वस्त्र, गृह आदि आवश्यकताएँ पूरी करने की सम्मान-सहित योजना स्थायी रूप से रहेगी तो धर्म या नीति में कोई ह्रास नहीं आ सकता और न वह आदर्श से ही गिर सकता है । परन्तु यदि यौवन-सम्पन्ना विधवाओं के विवाह को आपद्धर्म समझा जायगा या हीन-दृष्टि से देखा जायगा तो श्रेष्ठ कुल और धर्म का मिथ्याभिमान रखने वाले लोग ऐसे लाञ्छित विवाह कदापि न करेंगे, जिससे समाज में उच्छृङ्खलता बढ़ती जायगी और अमर्यादित रूप से प्राकृतिक वेगों की शान्ति करने का प्रयत्न किया जायगा, जिससे वास्तविक शान्ति कभी नहीं हो सकती, किन्तु सदा इन वेगों से उत्पन्न होने वाली शारीरिक यातनाओं से पीड़ित रहने के कारण वे दुखातुर देवियाँ समाज को पीड़ित करती रहेंगी और स्वयं अपना पतन करती हुई समाज का भी पतन करती रहेंगी । ऐसी दशा में आत्मोन्नति की तो आशा करना ही विडम्बना है ।

हमारे इन सुधारक भाइयों के विधवा-विवाह को आदर्श-हीन या आपद्धर्म मानने का यही कारण प्रतीत होता है कि एक स्त्री का एक पुरुष के साथ एक बार विवाह-संस्कार मात्र को, या कुछ आगे बढ़े तो विवाह के बाद उस पुरुष के साथ एक बार अङ्ग स्पर्श कर लेने तक को ही वे आदर्श या श्रेष्ठ धर्म मानते हैं; फिर यदि वह पुरुष-संस्कार होने के—या एक बार अङ्ग-स्पर्श करने के बाद मर जाय तो स्त्री के लिए दूसरा विवाह करना उनकी दृष्टि में आपद्धर्म और आदर्श-हीन हो जाता है । जब उनसे यह प्रश्न किया जाता है कि स्त्री के मरने पर पुरुष पुनर्विवाह करता है तो वह श्रेष्ठ धर्म क्यों माना जाता है, तब वे विवश होकर पुरुष का पुनर्विवाह होना भी आदर्श-हीन कहने लग जाते हैं और पुराने विचारों के रूढ़ि-वादियों को 'रूढ़ियों के ग़ुलाम' मानते हुए भी वे स्वयं इस विषय में रूढ़ि की पाबन्दी से मुक्त नहीं होते और तात्विक दृष्टि से विचार न करके, केवल आधिभौतिक दृष्टि से ही इसकी नैतिकता के विषय में फ़ैसला दे देते हैं । वास्तव में अग्नि के सामने विवाह-संस्कार की विधि पूरी करने मात्र की रूढ़ि ही से विवाह पूरा नहीं हो जाता और न स्त्री-पुरुष के अङ्ग स्पर्श होने मात्र से ही विवाह की सफलता सिद्ध होती है । विवाह का सच्चा प्रयोजन, जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, गृहस्थ-धर्म को नियमानुसार पालन करके, शारीरिक वेगों को मर्यादित रूप से शान्त करते हुए शनैः शनैः अपने असली लक्ष्य सच्चे और अक्षय आत्म-सुख की प्राप्ति के मार्ग पर अग्रसर होना है, न कि आठ वर्ष से लेकर साठ वर्ष तक बलात्कार संन्यास-व्रत धारण करने का निष्फल-हठ करना ? इसलिए आवश्यकता और योग्यता होने पर एक स्त्री या पुरुष के न रहने पर करने योग्य पुरुष या स्त्री दूसरा विवाह करे तो वह वास्तव में श्रेष्ठ धर्म है, न कि आपद्धर्म, आदर्श-हीन या नीति-विरुद्ध ? जब तक ऐसे पुनर्विवाह को हीन-दृष्टि से देखा जायगा, तब तक समाज का उद्धार और उन्नति होना कदापि सम्भव नहीं, क्योंकि शारीरिक वेगों से पीड़ित व्यक्ति कोई भलाई नहीं कर सकता ।

प्रसङ्गवश यहाँ यह भी कहना पड़ता है कि हमारे अनेक शिक्षित बन्धु प्रत्येक कार्य की नीतिमत्ता की जाँच केवल आधिभौतिक दृष्टि से ही किया करते हैं, यहाँ तक कि द्रौपदी के पाँच पति होने आदि बातों को लेकर, महाभारत-काल को भी वे लोग नीतिमत्ता में गिरा हुआ ज़माना कहा करते हैं । परन्तु ऐसा कहने में यह विचार उनके चित्त से लुप्त हो जाता है कि सनातन हिन्दू-धर्म आध्यात्मिक धर्म है और हिन्दू-समाज की मर्यादाएँ उस

कच्ची एवं सङ्कीर्ण आधिभौतिक भित्ति पर ही खड़ी नहीं की गई हैं कि स्थूल शरीरों के स्पर्शास्पर्श मात्र ही से उसकी नीतिमत्ता में फ़र्क़ आ जाय, किन्तु वे उस सनातन आध्यात्मिक मूल पर निर्माण की हुई हैं जो इन नाशवान् क्षणभङ्गुर पञ्चभौतिक शरीरों से तो क्या, किन्तु मन, बुद्धि आदि से भी अधिक सूक्ष्म, अविनाशी, विशाल और पवित्र है। यदि वे शिक्षित भाई आध्यात्मिक दृष्टि से नीतिमत्ता का निर्णय करें तो भारतवर्ष का वह बढ़ा-चढ़ा उन्नति का ज़माना और भीष्म, युधिष्ठिर जैसे धार्मिक तत्ववेत्ताओं के तथा गीता-ज्ञान के उपदेशक, महायोगेश्वर भगवान् श्रीकृष्ण महाराज के कृत्य उनकी नीति से गिरे हुए कदापि प्रतीत न हों।

जब से भारतीयों ने आध्यात्मिक दृष्टि से संसार के व्यवहार करना छोड़कर, केवल आधिभौतिक दृष्टि का अवलम्बन किया है, तभी से इस देश का पतन होने लगा है और इस समय यहाँ तक नौबत पहुँच गई है कि देश की और समाज की उन्नति के इच्छुक सुधारक लोग भी आधिभौतिकता के दलदल से पीछा नहीं छुड़ा सकते और यही कारण है कि उनको सफलता नहीं मिलती। देश और समाज के दुख तभी दूर होंगे, जब कि कार्य-कर्त्तागण सङ्कुचित आधिभौतिक भाव छोड़कर महान्, उदार और आध्यात्मिक भाव पूर्णरूप से धारण करेंगे। सच्चा सुधार आध्यात्मिकता में है, न कि आधिभौतिकता में! *

* प्रचार की दृष्टि से यह लेख कलकत्ते से प्रकाशित होने वाले सहयोगी 'नवयुग' में भी भेजा गया था, नवम्बर का 'चाँद' फाँसी-अङ्क होने के कारण यह पहले उसमें प्रकाशित नहीं हो सका।

—स० 'चाँद'

निशीथ-चिन्ता

[रचयिता—पण्डित रामनरेश जी त्रिपाठी]

(१)

जिसके नेत्रों में दर्शित है,
सच्चरित्र उन्नत पवित्र मन।
जिसकी भौंहों में लक्षित है,
सरल प्रकृति-सम्भव भोलापन॥

(२)

लगते हैं जिसके कपोल युग,
रक्त-प्रभा से ऐसे सुन्दर।
जैसे दर्पण में गुलाब के,
गुच्छक के प्रतिबिम्ब मनोहर॥

(३)

नोकवती नासा करती है,
जिसकी प्रतिभा को सुप्रमाणित।
किसी सुकवि की एक पंक्ति सी,
सुन्दर सरस अर्थ से प्राणित॥

(४)

शुभ्र उषा सी दिव्य हास्य सी,
रूप-सिन्धु की मणि सी मञ्जुल।
करुणा सी मृदु, धर्म-गीत सी—
शुद्ध, कल्पना सी सुख-सङ्कुल॥

(५)

बाट जोहती हुई एकटक,
पथ पर दृष्टि दिए चिन्ता-रत।
किस दिन मैं स्वीकार करूँगा,
ऐसी प्राण-प्रिया का स्वागत!!*

*अप्रकाशित 'स्वप्न' से।

श्रीमती धर्म्मशीला जायसवाल, बी० ए०

[आपका सविस्तार परिचय अन्यत्र देखिए]

छप गया !
छप गया !!
एक हलचल मचाने वाला, सर्वथा मौलिक
सामाजिक उपन्यास
अनाथ पत्नी
[ले० पण्डित भगवतीप्रसाद जी वाजपेयी]
[भूमिका-लेखक—श्री० विश्वम्भरनाथ जी शर्मा, कौशिक]
इस उपन्यास में बिछुड़े हुए दो हृदयों—पति-पत्नी—के अन्तर्द्वन्द का ऐसा सजीव चित्रण है कि पाठक एक बार इसके कुछ ही पन्ने पढ़कर करुण, कुतूहल और विस्मय के भावों में ऐसे ओत-प्रोत हो जायँगे कि फिर क्या मजाल कि इसका अन्तिम पृष्ठ तक पढ़े बिना कहीं किसी पत्ते की खड़-खड़ाहट तक सुन सकें !
अशिक्षित पिता की अदूरदर्शिता, पुत्र की मौन व्यथा, प्रथम पत्नी की समाज-सेवा, उसकी निराश रातें, पति का प्रथम पत्नी के लिए तड़पना और द्वितीय पत्नी को आघात न पहुँचाते हुए, उसे सन्तुष्ट रखने को सचेष्ट रहना, अन्त में घटनाओं के जाल में तीनों का एकत्रित होना और द्वितीय पत्नी के द्वारा, उसके अन्तकाल के समय, प्रथम पत्नी का प्रकट होना—ये सब दृश्य ऐसे मनोमोहक हैं, मानो लेखक ने जादू की क़लम से लिखे हों !!
लेखक कहानी और उपन्यास लिखने में वैसे भी लब्ध-प्रतिष्ठ हैं, पर इस उपन्यास के लिखने में तो उन्होंने सचमुच कमाल किया है। शरत् बाबू के उपन्यासों में जो मोहक आकर्षण है और मेरी करेली के उपन्यासों में जो तड़पन, वह सब आपको इसकी पृष्ठ-प्यालियों में सर्वत्र ही छलकता हुआ मिलेगा !!!
काग़ज़ बढ़िया, छपाई लाजवाब, मूल्य केवल २)
'चाँद' कार्यालय, इलाहाबाद

[ले० सौभाग्यवती हजेला]

डूबना

जब कोई व्यक्ति डूबता है तो जल उसके पक्वाशय (मेदा) और हवा के स्थान फेफड़ों में भर जाता है। यदि डूबे हुए व्यक्ति को श्वास न आता हो तो उसका मुँह खोल, तुरन्त ही उलटा लटका देना चाहिए, फिर पेट को हलके-हलके पसलियों के नीचे की ओर दबाना चाहिए जिससे सब पानी निकल जाय।

यदि डूबा हुआ व्यक्ति बच्चा हो तो उसे घुटनों के सहारे उलटा लिटा, पेट दबाकर जल निकाल देना चाहिए। यह क्रिया घुटने मोड़ कर उकड़ूँ बैठने से अच्छी होती है।

ऐसा करने के पश्चात् डूबे हुए व्यक्ति को चित लिटा कर ऐसा यत्न करना चाहिए कि वह शीघ्र साँस लेने लगे। उसके सिर व कन्धे के नीचे तकिया या कपड़ा लगाना चाहिए, जिससे वह ज़रा ऊँचा हो जाय। इसके पश्चात् मुँह का थूक इत्यादि साफ़ कर, ठोढ़ी को नीचे की ओर दबा, जीभ को, जो प्रायः गले की तरफ़ को लौट जाती है, किसी चिमटे अथवा कपड़े की पट्टी व उँगलियों द्वारा बाहर निकाल, रोगी के हाथों को कन्धे के ऊपर पूरा फैलाना चाहिए।

इसके पश्चात् हाथों को कोहनियों तक मोड़ कर पसलियों के बराबर से पेट तक लाकर ज़रा दबाना चाहिए। यह क्रिया प्रति मिनट १५ से २० बार करनी चाहिए। इससे कम अथवा ज़्यादह नहीं। ऐसा करने से श्वास आने लगता है। जब तक श्वास भली प्रकार न आए, यह क्रिया बराबर करते रहना चाहिए। यदि पाँच मिनट के अन्दर श्वास न आए वा सर्दी अधिक हो, तो बाँईं छाती के आस-पास गरम जल में कपड़ा भिगो कर स्तन को शनैः-शनैः थपकना चाहिए। यदि आध घण्टे तक श्वास न आए तो समझ लेना चाहिए कि मृत्यु हो गई।

* * *

मोच आ जाने पर

यदि किसी के पैर इत्यादि स्थानों में मोच आ जाय तो उस स्थान को १० मिनट ठण्ढे पानी में और दस मिनट गरम पानी में डुबो रखने से और उस स्थान पर पट्टी बाँधने और उसे गीला रखने से मोच आए हुए स्थान की सूजन भी घट जाती है और दर्द भी बन्द हो जाता है। यह औषधि मेरी भली-भाँति अनुभव की हुई है।
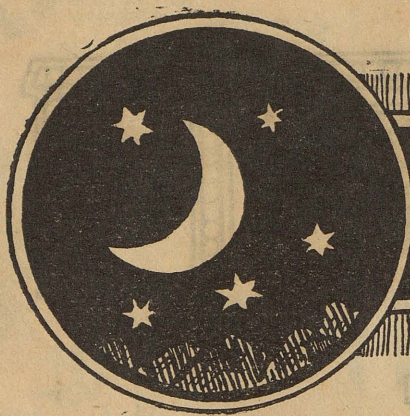
परदा

परदे की समस्या अब हम लोगों के लिए कोई नई बात नहीं है। इस विषय पर व्याख्या और मनन करते हुए यहाँ के लोगों को बहुत दिन बीत गए। यद्यपि परदे की बात छेड़नी, कही गई बात को दुहराना-सा जान पड़ता है, किन्तु यह विषय ऐसा है जिसके सम्बन्ध में अभी तक लोकमत निश्चित तथा स्थिर नहीं हो पाया है। लोगों का इस विषय के ऊपर न तो विचार ही स्पष्ट है, न सभी का मन्तव्य एक है। परदा उठाने का मतलब कोई कुछ समझता है और कोई कुछ! किसी के विचार में अनावश्यक परदे को उठा देना ही बस है, किसी के विचार में स्त्रियों के लिए पूरी स्वतन्त्रता तथा स्वच्छन्दता आवश्यक है। कितने परदा उठाने के विरोधी अब तक वर्त्तमान हैं, जो परदे की प्रथा को अत्यावश्यक और समाज-रक्षा का साधन बतलाते हैं। इसके अलावा परदे की स्थिति भी स्थान-स्थान पर भिन्न है, जाति-जाति में भिन्न है। कहीं किसी से परदा है, कहीं पर किसी दूसरे से। परदे का उपद्रव सब प्रान्तों से अधिक बिहार में है। यहाँ परदे का अन्त नहीं है। स्त्रियों को पुरुषों से क्या, स्त्रियों से भी परदा है। घर के भीतर बैठी स्त्रियाँ एक दूसरे से अकारण परदा करती हैं। अपने ही घर के अधिकतर मनुष्यों से परदा किया जाता है। उत्तर भारत के अन्य प्रान्तों में भी परदा है, परन्तु बिहार से कम। पञ्जाब और बङ्गाल में परदा बहुत कम है, गुजरातियों में केवल नाम-मात्र का और दक्षिण भारत महाराष्ट्र और मद्रास में परदा है ही नहीं।

पहले यह देखना चाहिए कि परदा है क्या? वास्तव में किसको परदा कहते हैं। परदे की बात चलने पर बहुत से पण्डित तथा पुराने ख़्याल वाले शास्त्र टटोलने लगते हैं; पुराने समय के आदर्शों पर व्याख्या करने लगते हैं, तथा परदे के इतिहास पर विचार करने लगते हैं! परदे के विरोधी जब यह कहते हैं कि पुराने समय में जब बहुधा स्वयम्बर हुआ करता था, स्त्रियाँ अपने पुरुषों के साथ बाहर जाया करती थीं, राजसभा में राज-सिंहासन पर राजा के साथ रानी बैठती थीं, तब मुसलमानों के पहले भारत में परदा नहीं था; तब इनके विरोधी कहते हैं कि जब पुराने समय में परदा नहीं था तब क्योंकर पुराने संस्कृत-ग्रन्थों में यह लिखा है कि स्त्रियों को सूर्य भगवान् कभी देख नहीं सकते थे, केवल चन्द्रमा की शीतल किरणें ही इन स्त्री-रत्नों से परिचित थीं? अतएव उस समय भी यहाँ परदे की प्रथा थी! किन्तु यथार्थ तो यह है कि इन शास्त्रार्थों से कुछ भी लाभ नहीं। दोनों ही बातें साथ-साथ सच्ची हो सकती हैं। कार्यवश स्त्रियाँ पुरुषों के साथ रहती थीं, साथ रहने या आने-जाने में कोई रुकावट नहीं थी—और साथ-साथ यह भी ठीक है कि अकारण ही सभी जगह दिन-दहाड़े मारी-मारी नहीं फिरती थीं, उचित समय पर टहलती-घूमती थीं और स्त्रियोचित अपना शील-गुण बनाए रखती थीं। इसमें सन्देह नहीं कि परदा उठा देने पर हम लोगों को फिर भी वैसा ही करना

उपयुक्त और वाञ्छित है। इसी तरह उक्त प्रकार की तिरछी-बाँकी बातें परदे के विषय में अनेकानेक सुनने में आती हैं। अतएव इसमें सन्देह नहीं कि यह विषय इस समय भी अत्यन्त उलझा हुआ, मिथ्या भावों से परिपूर्ण, वाद-ग्रस्त और कठिन हो रहा है। तरह-तरह की युक्तियाँ भिन्न-भिन्न स्थानों से उपस्थित की जाती हैं। अतएव सभी मनुष्यों का धर्म है कि इस विषय पर यथोचित विचार कर किसी एक आदर्श को स्थिर कर लें, नहीं तो जिसका जो जी चाहता है उसी को वह उपयुक्त और आवश्यक समझता है और मान लेता है, सो भी प्रायः केवल बातों से, व्यावहारिक रूप से नहीं! परदा उठाना एक व्यावहारिक कार्य है, केवल बातों से काम नहीं चल सकता। एक दिन सभा-सोसाइटी में अपनी स्त्री को ले जाकर उपस्थित कर देने को परदा उठाना नहीं कहते, न इससे परदे की कुप्रथा सचमुच उठ ही सकती है। अतएव जब तक परदा-परित्याग के लिए व्यावहारिक प्रयत्न न किए जायँगे, तब तक इसका देश में पूरा विस्तार नहीं होगा। बिना इसे नित्य-कार्य में परिणत किए क्या यह कुप्रथा हटने की है?

यह ध्यान देने की बात है कि इस देश में परदा सभी जातियों में नहीं है। दरिद्रों के बीच उनकी दरिद्रता के कारण अधिकतर परदा रह ही नहीं सकता। बहुत सी श्रमजीवी जातियाँ ऐसी हैं, जिनमें परदा न है, न रह सकता है। देहातों में शहरों की अपेक्षा परदा कम है। कृषि करने वाली जातियों की स्त्रियों को कार्यवश परदा छोड़ना ही पड़ता है। छोटी कहलाने वाली जातियों में परदा नहीं है। देहातों की बड़ी कहलाने वाली जातियों की स्त्रियों में भी अपरिचितों से विशेष परदा नहीं है, याने उनसे स्त्रियाँ एकदम छिपती नहीं हैं। और परदे का मतलब भी यही है कि स्त्रियाँ किसी दूसरे से छिपें! किसी से परदा करना अपने को उससे छिपाना है। परदा उठाने से अभिप्राय यह है कि अपने को छिपाते न रहें। साथ ही साथ इसका मतलब यह भी नहीं है कि परदा उठा देने से हमारी स्त्रियाँ चाहे जहाँ जी चाहे चली जायँ, सभी से अकारण ही बोलती चलें, ठट्ठा-मज़ाक़ करें, याने जो जी में आवे, करें। हम लोग कभी अपने लड़कों या आश्रितों को भी जो जी चाहे, करने नहीं देते। तब जो लोग यह सोचते हैं कि जहाँ परदा उठा, सब गया; उन्हें अपनी भूल समझ लेनी चाहिए। परदा हटाने से मतलब यह है कि हमारी स्त्रियाँ बन्दी न बन जायँ, जीते-जागते सामान की गठरी न बन जायँ, अथवा आँख रहते कपड़ों में लपेट देने से अन्धी न बन जायँ, ज़रा-सा अनजान से बोलने के भय से घोर शारीरिक कष्ट या कठिनाई न उठाती रहें। परदे के चलते, यत्न रहते भी अपनी जानें जोखिम में न डाल दें, याने परदे के कारण अपनी शारीरिक अवनति तथा स्वास्थ्य-हानि न उठावें। समय और स्थान रहते भी केवल परदे के कारण विधाता के दिए हुए प्राकृतिक सुख या सम्पदा का उपभोग न करें, बल्कि उनसे वञ्चित रहने के कारण अकारण ही घर के कोने में छुप कर सड़ती रहें! परदा त्यागने का मूल रहस्य यह है कि परदे की लाज रखने के लिए, केवल परदे के नाम के लिए, अपने स्वास्थ्य, समय, धन, शील, स्वभाव तथा सुख की क्षति न करें। अतएव देश-काल के अनुकूल परदा उठाना अनिवार्य है।

अब यह प्रश्न उठता है कि परदा कहाँ तक उठाया जाय, और स्त्रियाँ कहाँ तक स्वच्छन्द हो जायँ? यह तो स्पष्ट है कि अपनी अवस्था और आवश्यकता ही के अनुकूल परदा उठाना युक्तिसङ्गत है, इस विषय में देखा-देखी तथा अन्ध-अनुकरण के लिए स्थान नहीं है। बहुतों का यह ख़्याल है कि परदा उठाकर स्त्रियाँ अवश्य नियमित रूप से प्रतिदिन सैर के लिए निकलें! तो शायद इसकी आवश्यकता सबको नहीं है। जिनकी आर्थिक अवस्था उन्नत है, जिनकी स्त्रियों को घर में काम-धन्धा करना नहीं पड़ता, वे चाहे भले ही टहलती फिरें, किन्तु साधारण गृहस्थों के घर की स्त्रियों के लिए तो यह उपयुक्त न होगा। नहीं तो परदा के हटते कितने बेचारों के घर में उपद्रव तथा अशान्ति फैल जायगी। ऐसे तो योंही स्त्रियों में कपड़े का शौक़ तथा फ़ैशन बढ़ता जाता है; सैर-सपाटे में तरह-तरह के कपड़े और फ़ैशनों को देख कर हमारी स्त्रियाँ भी स्वभावतः अपनी आवश्यकताओं को बढ़ाकर घर में झञ्झट फैलाने लगेंगी। इसके अतिरिक्त घर के काम-धन्धों में भी थकावट होने लगेगी। अतएव हम लोगों का परदा-त्याग उसी प्रकार का होना चाहिए जैसा कि मद्रास और महाराष्ट्र के प्रान्तों में है। यत्न करना चाहिए कि दक्षिण भारत की तरह सभी

जगह, सारे देश भर में सभी जाति की स्त्रियों की अवस्था हो जाय, और शायद यही अवस्था प्राचीन काल में यहाँ थी भी। यदि हम लोग विदेशियों या मेमों का अनुकरण करेंगे तो हमारे यहाँ भी वही दुरवस्था कपड़े और बनाव-सिंगार के सम्बन्ध में हो जायगी, जैसी कि उन देशों में इस समय उपस्थित है! विदेशी पाश्चात्य आदर्शों के उपस्थित होते परदा-परित्याग की समस्या यहाँ अवश्य सङ्कटमय और आपत्तिजनक हो जायगी, यद्यपि अन्यथा यह विषय हम लोगों के बीच सीधा और सुगम है। आदर्श के विषय में भ्रम और अन्धकार होने के कारण ही परदे की समस्या कठिन और विवादपूर्ण हो रही है।

समाज का हितसाधन तो तभी होगा, जब विषय के ऊपर आगा-पीछा देख कर निष्पक्ष और युक्तिसङ्गत विचार किया जाय। परदा उठाने के विरोधियों का कहना है कि परदा उठाने से स्त्रियाँ आपत्तिग्रस्त हो जायँगी, बुरे लोग इन्हें छेड़ेंगे; स्त्रियों के शील-स्वभाव में अन्तर पड़ जायगा, घरेलू काम-काज में बाधा होने लगेगी। वेश-विन्यास के ख़र्चे बढ़ जायँगे। सम्भव है, स्त्रियाँ कुल, शील और स्वभाव की मर्यादा भी छोड़ दें! अतएव परदा एक अत्यन्त ही आवश्यक वस्तु है। अब देखना चाहिए कि इन बातों में कहाँ तक सार है। सबसे साधारण और बड़ी भूल इस सम्बन्ध में यह है कि परदे के परित्याग को लोग प्रदर्शन या नुमाइश समझते हैं। याने जहाँ परदा उठा कि हमें अपनी स्त्रियों को ख़्वाम-ख़्वाही सबके सामने तसवीर की तरह दिखलाना ही पड़ेगा! कैसी भूल है!! परदा उठाया जाय, इसलिए नहीं कि स्त्रियाँ अपने को अकारण सबको दिखाती फिरें, बल्कि इसलिए कि परदा एक हानिकारक, अनावश्यक और अस्वाभाविक प्रथा है। परदा हटाने में कोई आपत्ति या डर की बात नहीं है। स्त्रियाँ जो ख़राब हैं, परदे में रह कर भी दुराचार करती हैं, यदि वे परदे के बाहर रहेंगी तो भी वे दुराचारिणी ही रहेंगी। शील-स्वभाव के विषय में लाभ छोड़कर हानि नहीं है। स्त्रियों की विमूढ़ता, इनकी कूपमण्डूकता तथा अल्पज्ञता जाती रहेगी। पुरुषों के बहुत से बोझ हट जायँगे तथा स्त्रियों के सांसारिक तथा व्यावहारिक ज्ञान निस्सन्देह बढ़ जायँगे। जब स्त्रियाँ संसार से अधिक परिचित हो जायँगी, अधिक देख-भाल के कारण इन्हें कार्य-विधि की जानकारी हो जायगी तब यह निश्चय है कि स्त्रियों की कार्यकारिणी शक्ति अत्यधिक बढ़ जायगी। सैर-सपाटे में व्यर्थ समय सभी स्त्रियाँ तो नहीं बिता सकेंगी। अधिकांश को तो अपने घर-बार के सब काम करने होंगे। अतएव कुछ पैसे वाले फ़ैशनेबुल घराने की स्त्रियों को देखकर सारे स्त्री-समाज को वैसा समझ लेना भूल है। वेश-विन्यास भी अधिकतर इन्हीं घरों में घिरा हुआ है। साधारण मनुष्यों की स्त्रियाँ चाहे जितनी कोशिश करें, इच्छा रहते भी अपनी आर्थिक अवस्था के कारण फ़ैशन के पीछे बहुत ख़र्च नहीं कर सकतीं। यदि करें तो वह फ़ैशन नक़ल करने वाली बुद्धि का दोष है, परदा छोड़ने का नहीं। आज आप मद्रास महाराष्ट्र या उत्तरी भारत के प्रान्तों की छोटी जाति की अधिकांश स्त्रियों को देखिए। परदा न रखते हुए भी फ़ैशन के फन्दे से बहुतेरी बची हुई हैं। अतएव वास्तव में परदा-त्याग से फ़ैशन का बहुत ही कम सम्बन्ध है और होना ही चाहिए। परदा त्यागने से किसी भी विषय में स्त्रियों को क्षति नहीं है, बल्कि परदा-रूपी बन्धन से छुटकारा पाने पर स्त्रियों में एक विशेष प्रकार की सजीवता आ जायगी, स्त्रियाँ शुद्ध, स्वच्छ, सरल तथा स्वास्थ्यकर जीवन बिताने लगेंगी। परदा का मतलब ही छिपाना, गुप्त रखना, धोखा देना है, अतएव परदा क्योंकर यथार्थ और निर्दोष हो सकता है? परदा का अर्थ ही छिपाना है, हम परदा दूसरों से उन्हीं बातों का करते हैं, जिन्हें हम छिपाना चाहते हैं; हम अपने दोषों को दूसरों से छिपाने के निमित्त उन्हें परदे में रखते हैं। अतएव हम अपने गुणों का प्रकाश करते हैं, दोषों को छिपाते हैं। हमारी स्त्रियाँ बेचारी क्या कोई दोष हैं, जिन्हें हम छिपाते फिरते हैं? वास्तव में उन्हें हम परदे में रखकर अपना और उनका दोनों का ही अनिष्ट करते हैं। आर्य-कालीन परदा चाहे जैसा भी हो, सम्भवतः जिसे हम आज परदा कहते हैं, वह उस समय था ही नहीं। आजकल का अधिकांश परदा अनावश्यक तथा स्त्री-जीवन की विडम्बना-मात्र है। आधुनिक परदा बुरे दिनों में प्रारम्भ हुआ है, और यह हमारे समाज की एक यातना है। जो इसमें गुण देखते या परदे को आवश्यक समझते हैं, वे निश्चय ही भ्रान्त हैं, और अपने भ्रमवश इस विषय के समझने में नितान्त विमूढ़ भी हैं। यह समझने की बात है कि परदे के अन्दर यदि कोई बुरा काम करना चाहे तो

आसानी से कर सकता है, क्योंकि वह जानता है कि यहाँ तो परदा है, इसके प्रताप से यहाँ कोई आ ही नहीं सकता। उसी काम को दश-पाँच मनुष्यों के सामने दुष्ट-हृदय मनुष्य भी नहीं कर पाएगा। परदे की ओट में कितनी बुराइयाँ की जाती हैं, सो जानने वाले जानते ही हैं। परदे के कारण हमारे घर-द्वार मैले बने रहते हैं। परदा करने वालों का जीवन दूषित हो जाता है, परिवार के अन्दर अकारण ही विरोध फैल जाता है, क्योंकि परदे के कारण घर के अन्दर भी एक दूसरे से भली-भाँति वार्त्तालाप नहीं कर सकते! पुत्र-बधू के मन में क्या बात है, श्वसुर जी समझ नहीं सकते, और परदे के कारण न पुत्र-बधू अपने श्वसुर से कुछ कह ही सकती है और न श्वसुर जी सुन ही सकते हैं। यदि कोई बीचवान् या अन्य व्यक्ति चाहे तो आसानी से श्वसुर-बहू में परस्पर बैर-भाव उत्पन्न करा दे। इसी प्रकार घर के अन्दर, परिवार के अन्दर, अकारण ही मनोमालिन्य उत्पन्न हो जाता है। परदे के मिथ्या भावों के कारण यदि किसी युवती या बालिका को कोई कठिन स्त्री-रोग हो जाय तोभी वह उसे किसी से न कह पाएगी और अन्त में निस्सहाय होकर अपने प्राण दे देगी। परदे के मिथ्या प्रपञ्च में पड़कर समाज का कितना बड़ा अपकार हो जाता है, इसे विरला मनुष्य ही समझता है!

इस गर्हित धोखे की टट्टी ने कितनों के प्राण ले लिए, कितनों के जीवन का सत्यानाश कर डाला, कितनों की मान-मर्यादा मिट्टी में मिला दी, यह पता लगाने से ही जान पड़ेगा। बिना भली-भाँति सोचे-विचारे किसी बात को ठीक और सच मान लेना अपने को हतबुद्धि प्रमाणित करना है। परदे के पक्षपातियों को चाहिए कि इस विषय के ऊपर पूरा अनुसन्धान करें, आँख खोल कर देखें, नहीं तो "मूँदहु आँख कतहुँ कोउ नाहीं" से काम चलने का नहीं! संसार और समाज के भार तथा बन्धनों का बढ़ाना मनुष्य का कर्त्तव्य नहीं, धर्म नहीं। हमारा प्रयत्न होना चाहिए कि संसार को सुखी, समाज को शुद्ध और मानव-जीवन को पवित्र बनावें! उन उपायों का साधन करें जिनसे दुखियों के दुख छूट जायँ, बन्दियों के बन्धन टूट जायँ, समाज से अन्याय और कलङ्क दूर हो जायँ! नहीं तो "कौआ कान लिए जाता है," के पीछे दौड़ने वाले क्या इस अभागे देश में कम हैं? विषय सुगम है, केवल डूब कर देखने और स्थिर तथा निष्पक्ष मन से विचारने की बात है!

—रत्नेश्वरप्रसाद सिंह मेवार, बी० ए०, बी० एल०

* * *

सामाजिक कुरीतियों में स्त्रियों का भाग

हमारे समाज का शासन सनातन से धर्म द्वारा होता आया है। अति प्राचीन काल में राजा निस्पृह, त्यागी और सत्यप्रिय ब्राह्मणों को मन्त्री के पद पर सम्मानित करते थे और वे अपनी पक्षपात-रहित सुन्दर मन्त्रणा से समाज के कल्याणकारी कार्यों में राजा की सहायता करते थे। उस नियम का पालन बहुत काल तक होता रहा, जिसके कारण समाज-कल्याण के कामों में राजनीति और धर्म दोनों मिल गए। राजनीति से धर्म का पालन होता था और अधर्म का नाश।

जब तक आर्यों की सन्तान शक्तिशाली रही, यही नियम रहा। परन्तु वैमनस्य, स्वार्थ, फूट और अज्ञान के कारण उनकी शक्ति का ह्रास होने लगा और भारतीय इतिहास का वह काल उपस्थित हुआ, जब विदेशियों की शक्ति की सत्ता वैदिक-धर्मावलम्बियों को स्वीकार करनी पड़ी। वे परतन्त्र हुए और उनके राजनैतिक बल का संहार हुआ। परतन्त्रता की दशा में समाज के कृत्यों की स्वतन्त्रता भी जाती रहती है, वैसे ही भारत के आर्य-वंशजों के धर्म-भाव में भी कुछ अन्तर आरम्भ हुआ और सामाजिक कृत्यों में शिथिलता और परिवर्त्तन होने लगा।

क्रमशः सैकड़ों वर्ष के उपरान्त हमारे समाज के कई धार्मिक सिद्धान्तों के रूप बदल गए। बदलना भी स्वाभाविक था, जब हमारी राजनीति ही बदल गई और हमें अपनी इच्छा के प्रतिकूल भी शासकों की प्रसन्नता के काम करने पड़े। उस पर भी अत्याचार और अन्याय ने कम शक्ति नहीं दिखाई। समयानुसार धार्मिक और सामाजिक परिवर्त्तन होते-होते कई धार्मिक कृत्यों के रूप ऐसे बदल गए कि हम आज उनके सच्चे प्राचीन रूप को देखकर चकित हो उठते हैं और उसे स्वीकार करने को भी तैयार नहीं होते। फलतः जिन नियमों को पहले

समाज के कल्याण का रूप दिया गया था, उन नियमों के रूप में परिवर्त्तन आ जाने से उनसे समाज का कल्याण नहीं होता; बल्कि बुराइयाँ हो रही हैं। इन बुराइयों के विधायक नियम को हम कुरीतियाँ कहते हैं और उन्हें दूर करना आवश्यक समझा जाता है।

अब हमसे यह छिपा नहीं है कि हमारा सामाजिक और जातीय पतन अपने समाज की कुरीतियों के ही कारण हुआ है और हो रहा है। इन कुरीतियों के रहते हममें प्रेम नहीं होता, पारस्परिक भेद वर्त्तमान रहता है। भेद एकता का नाशक है, और एकता के बिना कोई समाज या राष्ट्र बली नहीं हो सकता। अतएव अपने को शक्तिशाली बनाने के लिए समाज में ऐक्य की स्थापना आवश्यक है, जो कुरीतियों के नाश किए बिना किसी प्रकार सम्भव नहीं।

स्पष्ट है कि किसी मानव-समाज के दो मुख्य अङ्ग स्त्री और पुरुष हैं। समाज की कुरीतियों को दूर करने में दोनों की ही चौकसी होनी चाहिए। जब यह बात स्वयं-सिद्ध है कि सामाजिक कुरीतियों से केवल पुरुषों की ही क्षति नहीं है, स्त्रियों की भी, तब किसी प्रकार स्त्रियाँ इस कर्त्तव्य से विलग नहीं हो सकतीं। दोनों दो होते हुए भी एक ही शरीर के, एक प्राण के संरक्षक हैं, इसलिए उनके कार्यों में भी सम्बन्ध है और वे दोनों ही समाज की उन्नति और अवनति के उत्तरदायी हैं।

स्त्री और पुरुषों के भिन्न-भिन्न विभागों की बात दूर रख, यह माना जा सकता है कि विवाह, पूजा-विधि और मेल, ये तीन ऐसे प्रश्न हैं जिनमें दोनों साथ हैं। फलतः जो कुरीतियाँ इन तीन विषयों के सम्बन्ध में हैं, उनमें स्त्रियों का भी हाथ है, और दूर करने की चेष्टा में भी स्त्रियों का भाग लेना अनिवार्य है। पुरुष तो इन कुरीतियों के उत्तरदायी हैं ही, पर स्त्रियाँ भी इससे मुक्त नहीं हैं। यह उनके विचारने का विषय है कि इन कुरीतियों का सम्पादन पुरुष, स्त्रियों की आड़ लेकर ही करते हैं। विवाह, विग्रह और व्यर्थ-पूजा में पुरुष कहा करते हैं—"क्या करूँ, घरनी मानती ही नहीं, वह ऐसा करने के लिए बाध्य कर रही है और घर में क्लेश किए बैठी है।" ऐसी दशा में स्त्रियों का क्या उत्तर हो सकता है? बात तो साफ़ है। यदि उनका कोई सहयोग नहीं तो वे इन कुरीतियों के विरुद्ध ज़ोर लगाने में अपना बल दिखा सकती हैं और यदि उनका हाथ है तो अपनी सन्तान के अन्धकारमय भविष्य पर विचार कर इसके विरुद्ध भी क्लेश उत्पन्न कर नासमझ पुरुषों को इनकी बुराइयाँ सुझा सकती हैं।

विवाह के नाम पर समाज में जो कुरीति जारी है, वह हमारी जाति के इतिहास का घृणित अंश है। विवाह-विधान समाज के लाभ के लिए निर्धारित है, किसी शास्त्र या धर्म की मनसा के आधार पर वह समाज के अनगिनत लोगों के अहित का कारण नहीं हो सकता। तो भी अबोध बालिकाएँ विवाह-बन्धन से एक अपरिचित वर के साथ जकड़ दी जाती हैं। इस बाल-विवाह का बुरा प्रभाव बालक और बालिकाओं दोनों पर पड़ता है। अबोध बालिकाओं का सम्बन्ध अनमेल होने के कारण समाज बाल-विधवाओं की गहरी आह से दग्ध हो रहा है, और बड़ी अवस्था की लड़कियों से विवाहित होने के कारण छोटे बच्चों की जीवन-कली खिलने के पूर्व ही म्लान हो जाती है। सैकड़ों निस्सहाय बालिकाओं को माता-पिता के निर्णय पर भरोसा रख, वृद्ध पतिदेवों की सेवा स्वीकार करनी पड़ती है। वह सेवा भी उनके लिए स्थायी नहीं होती और वृद्धदेव के काल-कवलित हो जाने पर उन्हें वैधव्य की विषम ज्वाला में दग्ध होते रहना पड़ता है।

क्या माता अपनी लाड़िली पुत्री और प्राण-प्रिय पुत्रों की रक्षा इस कुरीति-कर्कशा से नहीं कर सकती? यदि नहीं तो उनमें मातृत्व का अभाव है और 'माता' शब्द को अपमानित करने वाली ऐसी पत्थर-हृदया माताओं को 'माँ' कहलाने का कोई अधिकार नहीं। कोई माता-हृदय अपनी आँखों से अपने पुत्र और पुत्री का दुर्दशाग्रस्त जीवन देखना पसन्द नहीं करता। तब कैसे आशा की जाय कि वे इस कुरीति का समर्थन कर सकती हैं। दहेज की कुप्रथा से बाध्य होकर भी यदि पिता अनमेल-विवाह के लिए प्रस्तुत हो जाय, तो माता को हठ कर अपने हृदय के टुकड़ों की रक्षा करनी चाहिए। हाड़ और धड़ की चिन्ता बालिका नहीं करती, उसे सुयोग्य तथा स्वस्थ पति ही प्रिय है। अतएव माता को भी यही देखना चाहिए। ऊँच और नीच कुलों के प्रश्न लेकर भी लड़कियों का जीवन नष्ट किया जाता है। यहाँ माता को विचारना चाहिए कि जिस स्त्री का पति ही सर्वस्व है, उसे उचित

पति की सेवा का अवसर न दे, ऊँचे कुल में डालने से उसकी पुत्री को क्या लाभ होगा?

पूजा-विधि की ओर स्त्रियों की अधिक प्रवृत्ति होती है। पतिदेव का सिद्धान्त चाहे जो हो, स्त्रियाँ शिवलिङ्ग और एकादशी-व्रत में ही मस्त रहती हैं। भिन्न-भिन्न त्योहारों के अवसर पर और तीर्थाटन में स्त्रियाँ साग्रह पति से अधिक व्यय करा बैठती हैं। इसका कारण उनकी धर्मतत्वानभिज्ञता है। धर्म का तत्व मनुष्य को आनन्दित और शान्तचित्त बनाने का है, आय से अधिक अनियमित व्यय कर अधर्म-रत लोगों के उदर-पोषण का नहीं। पुनः स्त्रियों के लिए पति की मन, वचन, कर्म से सेवा करना परम धर्म है। इस धर्म से बढ़ कर कोई दूसरा धर्म नहीं है। सीता को पातिव्रत्य धर्म का उपदेश देते हुए अनुसूया देवी ने इसी तत्व को क्या सुन्दर रूप में सामने रक्खा है:—

मातु-पिता-भ्राता-हितकारी,
मित सुख-प्रद सुनु राजकुमारी।
अमित-दानि भर्त्ता बैदेही,
अधम सो नारि जो सेव न तेही।
वृद्ध रोग-बस जड़ धन-हीना,
अन्ध बधिर क्रोधी अति दीना।
ऐसेहु पति कर किए अपमाना,
नारि पाव जमपुर दुख नाना।
एकइ धरम एक व्रत नेमा,
काय बचन मन पति-पद-प्रेमा।

भारत की सती-साध्वी रमणियों की जीवनियाँ इसलिए प्रसिद्ध नहीं हैं कि वे अपने पति के रहते पत्थर और पीर की पूजा करती थीं, बल्कि इस कारण कि पति-सेवा में उन्हें अपनत्व का कुछ भी ध्यान नहीं रहा। सीता, सावित्री, अनुसूया, द्रौपदी आदि के पवित्र नाम आज भी स्त्री-समाज को इसी परम धर्म की शिक्षा दे रहे हैं। पुनः पति-पद के उपरान्त स्त्रियों का ध्यान पुत्र और पुत्रियों के जीवन को सुखमय बनाने की ओर होना चाहिए। पश्चात् गृह-प्रबन्ध का प्रश्न है। इस धर्म और कर्त्तव्य की पूर्त्ति में लगी स्त्रियों को अन्य पूजाओं और कृत्यों के करने का अवसर कहाँ? तो भी झुण्ड बाँध-बाँध कर स्त्रियाँ पुरुषों के सिर पर गट्ठर रखवाए तीर्थों की हवा खाती फिरती हैं और अशिक्षिता होने के कारण नाना प्रकार के कष्ट सहन करती हैं। इससे तीर्थ के पण्डे-पुजारियों का घर भरता है और उनका घर ख़ाली होता है, कुछ हाथ भी नहीं आता। इसी प्रकार घर पर भी कई व्यर्थ ख़र्च पूजा-विधान में स्त्रियाँ करती हैं और अपने घरों की आर्थिक अवस्था पर ध्यान नहीं देतीं। उन्हें पहले अपने-अपने घरों की आर्थिक अवस्था ठीक रखनी चाहिए, तब पूजा-पाठ और दान पर ध्यान देना उचित है। कहावत भी है—"पहले भीतर, तब देव और पीतर।"

प्रत्येक घरों में कुछ न कुछ वैमनस्य पुरुषों में पाया जाता है। वह आरम्भ में अङ्कर-रूप में रहता है। पीछे बढ़ते-बढ़ते बड़ा वृक्ष बन जाता है और घर के आनन्द के स्थान को डालियों से छा लेता है। ऐसी दशा में गृह के आनन्द का आलोक नष्ट हो जाता और फूट का अन्धकार घर बना लेता है। भाई-भाई में, पिता-पुत्र में प्रायः विग्रह खड़ा होता रहता है और जब प्रत्येक घर की यही दशा है, तब उनसे बने समाज में शान्ति कैसे रह सकती है। हम देखते भी हैं कि समाज में विग्रह, द्वेष और फूट का कैसा प्राबल्य है।

इस मेलनाशक विग्रह का मुख्य कारण स्त्रियाँ ही बताई जाती हैं। यद्यपि यह एकदम सत्य नहीं है, तो भी इसमें कुछ सत्यता अवश्य है। पुरुषों का प्रेम अपनी पत्नियों से घना होता है। साधारण पुरुष अपनी स्त्री की मनोव्यथा सह नहीं सकते, न उधर अशिक्षिता स्त्री में सहन-शक्ति होती है। फल-स्वरूप छोटी सी बात के लिए घर की स्त्रियों के बीच वृहत् रूप धारण कर लेने पर उनके पतिदेवों की भी दलबन्दी हो जाती है और यहीं से विग्रह का आरम्भ होता है। क्रमशः पारस्परिक सहानुभूति के घटते जाने पर बाँट-बखरे का अवसर आ उपस्थित होता है। इसी प्रकार पुत्र पिता की सेवा त्याग और भाई भ्रातृत्व की ममता छोड़, अलग घर बना कर ऐक्य का मूलोच्छेद करता है। इसमें भी स्त्रियों का पूरा भाग कहा जा सकता है।

ऐसी दशा में स्वीकार करना ही पड़ेगा कि समाज की बड़ी-बड़ी कुरीतियों में स्त्रियों का भी सहयोग है और वे अशिक्षा के कारण इन कुरीतियों का पालन करती हुई अपनी सन्तान का भविष्य नष्ट करती हैं। इस कारण स्त्री-समाज के सुधारकों का ध्यान समुचित स्त्री-शिक्षा

की ओर होना चाहिए और विचारशील स्त्रियों का ध्यान अपने समाज के कलङ्क को दूर करने की ओर। सामाजिक कुरीतियों को बिना ठुकराए समाज का हित किसी प्रकार सम्भव नहीं।

—पाण्डेय रामावतार शर्मा, एम० ए०, विशारद

* * *

स्त्री-समाज में आत्महत्या की प्रवृत्ति

हमारे भारतीय समाज की स्थिति वर्त्तमान में "मर्ज़ बढ़ता गया, ज्यों-ज्यों दवा की" वाली लोकोक्ति को सोलह आना चरितार्थ कर रही है। ज्यों-ज्यों सुधार की चेष्टा की जाती है, त्यों-त्यों बिगाड़ होता जाता है। समाचार-पत्रों में भले ही आशा का सुनहरा और तीव्र प्रकाश दिखाई दे, पर समाज का मार्मिक अध्ययन करने वाले आदमी से यह बात छिपी नहीं रह सकती कि अन्धकार दिनोंदिन कैसा गहरा रूप धारण करता जा रहा है। स्त्रियाँ समाज की माताएँ हैं और उनके उत्थान के लिए वक्ता लोग जनता के सामने ऐसी बुलन्द आवाज़ उठाते हैं कि बस कुछ न पूछिए, ज़मीन-आसमान प्रकम्पित हो उठते हैं; पत्र-पत्रिकाओं में ऐसे-ऐसे लेख लिखे जाते हैं कि जिनसे जोश की चिनगारियाँ भभक उठती हैं। पर क्या सचमुच स्त्रियों के कष्ट दूर हो रहे हैं? अनुभव तो यह बतलाता है कि उनके दारुण उत्पीड़न की मात्रा इतनी तीव्र हो उठी है कि उन्हें अपना जीवन दूभर होता जा रहा है! उनके सिर पर सदैव मृत्यु के बवण्डर मँडराते रहते हैं। अन्ततः स्त्रियों में भी प्राण हैं, उन्हें भी व्यथाओं की दारुण पीड़ा उद्वेलित कर देती है और वे अपनी व्यथा का, अपनी पीड़ा का, अपने जीवन की लाञ्छनाओं का प्रतिकार करना चाहती हैं। परन्तु वे शक्ति-हीन हैं, साधन-हीन हैं, अशिक्षित हैं; और पुरुषों ने उन्हें ऐसी अमानुषिकता से पददलित कर रक्खा है कि प्रतिकार की प्रबल भावना रखते हुए भी वे अपनी असमर्थता के कारण तड़प-तड़प कर रह जाती हैं। ऐसी विषम परिस्थिति में अत्याचार का प्रतिकार करने के लिए उनके सामने दो ही साधन रह जाते हैं—या तो दुराचार में लिप्त हो जाना या आत्म-हत्या द्वारा अपने त्रसित जीवन को शेष कर देना।

यद्यपि स्त्री के दुराचार में लिप्त हो जाने से उसके उद्दाम परिपीड़न की मात्रा थोड़े समय के लिए स्वल्प भले ही हो जावे, पर इससे रोग का सर्वथा नाश नहीं होता। कुछ समय बाद ही वह और भी प्रबल वेग से भड़क उठता है। स्त्री चारों ओर से हताश हो जाती है। उसके परम लाञ्छित जीवन का दूर-दूर तक आश्रय की झलक भी दिखाई नहीं देती। अन्त में वह अपने अमूल्य प्राणों का मोह त्याग, आत्म-हत्या के अत्यन्त रोमाञ्चकारी मार्ग का अवलम्बन करती है! यह बात नहीं कि पहले स्त्रियाँ आत्म-हत्या नहीं करती थीं, परन्तु उस समय इस भीषण कृत्य का ऐसा उग्र रूप नहीं था। अब तो उनकी असीम शक्ति ने इस भीषण कार्य को अत्यन्त साधारण कर दिया है! स्त्रियों में आत्म-हत्या की प्रवृत्ति दिनोंदिन प्रबल होती जा रही है। और यह प्रवृत्ति अब दुराचारिणी स्त्रियों के सिवा सदाचारिणी स्त्रियों में भी प्रवेश कर रही है। मेरे विचार से भारत में ऐसा कोई स्थान न होगा, जहाँ वर्ष में दस-पाँच स्त्रियाँ आत्माहुति देकर अपने लाञ्छित नारी-जीवन को शेष न करती हों। यह कठोर प्रवृत्ति क्या हिन्दू-स्त्रियाँ और क्या मुस्लिम स्त्रियाँ—दोनों में समान रूप से पाई जाती है।

आगे मैं स्त्रियों की आत्म-हत्या की कुछ करुण घटनाओं के दृश्य उपस्थित करता हूँ। इन घटना-चित्रों की एक-एक रेखा सत्य पर अवलम्बित है। इनके दर्शन से पाठकों को मालूम होगा कि बेचारी स्त्रियों को कितने साधारण कारणों से ही कैसी निर्ममता से अपने जीवन का बलिदान करना पड़ता है:—

१—ग्रीष्म-ऋतु का समय था। अभी मैं प्रातः-कालीन निद्रा की ख़ुमारी त्याग, उठ कर बिस्तर पर बैठा ही था कि कुछ लोगों को झपट कर एक ओर जाते देखा। मैंने विस्मित होकर एक आदमी से पूछा—"इतने सवेरे ऐसे झपाटे से कहाँ दौड़े जा रहे हो? क्या कहीं आग लग गई है?" उसने उत्तर दिया—"आपको नहीं मालूम? ख़ाँ साहब की पुत्र-बधू कुएँ में गिर पड़ी है।" मैं भी तुरन्त बिस्तर त्याग घटना-स्थल पर पहुँचा। पहुँच कर क्या देखता हूँ कि लोग ख़ाँ साहब की पुत्र-बधू को कुएँ से निकाल चुके हैं! उसका एक पैर टूट गया है, सिर बुरी तरह फट गया है और वह ख़ून में लथपथ

हो रही है ! वह होश में आ चुकी है और दो-एक सज्जन उसे समझा रहे हैं—"देखो, पुलिस वालों से कुछ अगट-सगट न कह देना ! जब वे तुमसे कुएँ में गिरने का कारण पूछें, तब तुम उनसे कह देना—"मैं रोज़ाना फ़जर की नमाज़ पढ़ती हूँ। आज घर में पानी नहीं था, इसलिए मैं मुँह-अँधेरे पानी भरने आई थी। पैर फ़िसल जाने से कुएँ में जा गिरी। ख़बरदार, इसके सिवा और कुछ न कहना, नहीं तो पुलिस तुम्हें पकड़ ले जायगी, और तुम्हारी बहुत बुरी हालत करेगी।" इसी समय कुछ लोग कुएँ में पानी उड़ेल रहे थे। एक आदमी ने कुएँ के पाट पर रस्सा और घड़ा भी लाकर रख दिया। मैं उन लोगों का यह प्रपञ्च देख, मन ही मन कुढ़ रहा था कि पुलिस आ पहुँची। एक भले आदमी तुरन्त थानेदार साहब को एक एकान्त कमरे में ले गए। थोड़ी देर के बाद पुलिस कुछ योंही पूछ-ताछ कर और बालिका को अस्पताल भिजवाने की आज्ञा देकर चली गई। पाँच-छः दिन बाद अस्पताल में ही उस बालिका का देहान्त हो गया। वह बड़ी ही सुन्दरी थी, अभी उसकी आयु सोलह-सत्रह वर्ष से अधिक न थी। उसका सरल और निर्दोष मुखड़ा भुलाए नहीं भूलता। ख़ाँ साहब धनिक थे, उन्होंने पैसे के बल से असल बात दबा दी। उन्हीं के शुभ-चिन्तकों से पूछने पर पता चला कि ख़ाँ साहब का पुत्र नपुंसक है। कहीं पुत्र-बधू का आचरण न बिगड़ जाय, इसी भय से उनके घर के लोग उसे सताते रहते थे। उस रात को ख़ाँ साहब के उस नपुंसक पुत्र ने अपनी पत्नी को बहुत बुरी तरह पीटा था। अन्त में बेचारी ऊब उठी और इस भीषण कार्य को करने के लिए बाध्य हुई। उसका फूल-जैसा सुन्दर शरीर मिट्टी के ढेर में दबा दिया गया। पर ख़ाँ साहब का वह नपुंसक पुत्र, समाज का वह भार, अब भी चैन से गुलछर्रे उड़ा रहा है !!

२—उसी दिन मैं सन्ध्या-समय अपने मित्र के साथ वायु सेवनार्थ निकला। नगर के मध्य में क्या देखता हूँ कि एक कुएँ पर बड़ी भीड़ लगी हुई है। कौतूहलवश मैं भी भीड़ चीरता हुआ कुएँ के निकट जा पहुँचा। थानेदार साहब डटे हुए कुछ लिख रहे थे। उनके सामने ही कोई बीस वर्ष की सुन्दरी का शव किसी कुम्हलाए हुए पुष्प के समान पड़ा हुआ था। वास्तविक घटना मेरी समझ में आ गई। थानेदार साहब पञ्चायतनामा लेकर और शव को फुँकवाने का हुक्म देकर चलते बने। सुन्दरी के शव पर अत्यन्त मैले-कुचैले वस्त्र देखकर मैंने समझा था कि यह किसी ग़रीब आदमी की स्त्री होगी। पर पूछने पर पता चला कि वह एक धनिक जैनी की पत्नी थी। जैनी महाशय वेश्यागामी हैं, स्त्री की गोद में दो मास की बालिका थी। आप वेश्या के प्रेम में ऐसे पागल हुए कि पत्नी की सुधि ही भूल गए। उस दिन आपकी पत्नी तीन दिन की भूखी-प्यासी थी। जब उसने आप से भोजन की प्रार्थना की, तब बेचारी पर मार पड़ी। अन्त में क्षुधा से अत्यन्त आकुल हो, पुत्री को बिलखती हुई छोड़ कर बेचारी कुएँ की गोद में जा रही। उस पवित्र नारी का अन्त ऐसे कष्ट से हुआ। पर धन के प्रताप से सेठ जी का बाल भी बाँका न हो सका !

३—एक पण्डित जी नम्बर एक के जुआरी थे। जुआरियों की दशा किसी से छिपी नहीं—उनसे कौन से पाप नहीं होते। आप पत्नी की और प्यारे बच्चों की चिन्ता त्याग, सदा द्यूत-क्रीड़ा में निमग्न रहते थे। कभी-कभी आपकी पत्नी और बच्चों को निराहार ही रहना पड़ता था। यद्यपि ब्राह्मणी सीधी-सादी स्त्री थी, पर बच्चों का कष्ट कैसे देख सकती थी ? जब वह ब्राह्मण-देवता से अपने और बच्चों के कष्ट की शिकायत करती, तब आप उन्हें भोजन-पानी देने के बदले मार-पीट कर सन्तुष्ट करना चाहते। क्रमशः ब्राह्मणी तिरस्कार और क्षुधा की पीड़ा सहते-सहते ऊब उठी। अन्त में एक दिन बच्चों को भाग्य-भरोसे छोड़, अफ़ीम खाकर सो रही। पुलिस को पता चला, उसने ब्राह्मणी की लाश अस्पताल भिजवाई। डॉक्टरों ने लाश की चीरा-फाड़ी की। परिणाम यह हुआ कि लाश ब्राह्मण देवता को दे दी गई, वे निरपराधी सिद्ध हुए और अब भी जन-साधारण के पूज्य बने हुए हैं !!

ये तीन घटनाएँ एक स्थान की हैं और तीन दिन के अन्दर की हैं ! अभागे भारत की छाती पर नित्य न जाने ऐसी कितनी घटनाएँ घटती होंगी। पुरुषों की बेदर्दी से स्त्रियाँ तो अपना त्रसित जीवन समाप्त कर डालती हैं; पर पुरुषों का कुछ नहीं होता ! यद्यपि क़ानूनन् पुरुषों को दण्ड मिलना चाहिए, पर कहने की आवश्यकता नहीं कि वर्त्तमान काल में न्याय का मूल्य कितना बढ़ा-चढ़ा है ! इस समय भारत में टके के भाव गवाह मिल जाते

हैं और उनकी झूठी गवाहियाँ पुरुषों को निर्दोष सिद्ध कर देती हैं। सारा लाञ्छन स्त्रियों के मत्थे ही मढ़ा जाता है! उक्त घटनाओं के सम्बन्ध में मैंने किसी को पुरुषों की निन्दा करते नहीं सुना, सभी स्त्रियों पर ही लाञ्छन लगाते देखे गए! जब तक बेचारी जीवित रहीं, लाञ्छित होती रहीं और मर गईं तो भी लाञ्छन ने उनका पीछा न छोड़ा। किसी ने यह सोचने का कष्ट न उठाया कि यदि ये बेचारी दुराचारिणी होतीं, तो क्यों अपने जीवन का ऐसा दुखमय अन्त कर देतीं—किसी के साथ भाग कर न चली जातीं, फिर परिणाम चाहे जो होता। जिनमें आत्म-त्याग की ऐसी प्रबल भावना मौजूद थी, जिनमें सतीत्व का पवित्र विलास था, उन्हें ही अपनी थोड़ी सी आयु में पुरुषों के अत्याचार पर अपनी आत्माहुति देनी पड़ी, फिर भी उनका चरित्र सन्देह की दृष्टि से देखा जाता है! हा दुर्दैव !!!

अस्तु, समाज के सामने मैं यह विचारणीय विषय प्रस्तुत करता हूँ। यह विषय ऐसा नहीं है कि उपेक्षा की दृष्टि से देखा जाय! यदि अभी से स्त्रियों की इस आत्म-हत्या की प्रवृत्ति को रोकने का प्रयत्न न किया गया, तो इसमें सन्देह नहीं कि भविष्य में देश के लिए इसका परिणाम बड़ा ही घातक होगा। कम से कम इतना तो अवश्य होना चाहिए कि जिनके उत्पीड़न से स्त्री आत्म-हत्या करने के लिए विवश होती है, उन्हें समुचित दण्ड दिया जाय! अभी तो ऐसे अपराधी कदाचित् ९९ फ़ीसदी साफ़ बच जाते हैं। अस्तु, यदि मित्रवर सहगल जी की इच्छा हुई, तो मैं निकट-भविष्य में, इस विषय पर एक पुस्तक हिन्दी-संसार के समक्ष प्रस्तुत करूँगा।

—'एक मुस्लिम-हृदय'

* * *

वर्त्तमान शिक्षा और स्त्रियाँ

इधर कुछ वर्षों से भारतीय शिक्षित जनता का ध्यान स्त्री-शिक्षा के प्रश्न पर विशेष रूप से आकृष्ट हो रहा है, और प्रतिदिन जन-समुदाय हमारी बहिनों की शिक्षा की आवश्यकता और महत्ता को अनुभव करने लगा है, और परिणाम-स्वरूप अनेक महिलाओं ने उच्च से उच्च शिक्षा में पुरुषों से भी बाज़ी मार ली है। यद्यपि अभी उनकी संख्या बहुत न्यून है, किन्तु वर्त्तमान गतिविधि को दृष्टिगत करते हुए यही अनुमान होता है कि भविष्य में इस ओर सन्तोषप्रद प्रगति होगी। 'स्त्री शूद्रो नाधीयताम्' आदि कपोल-कल्पित वेद-वाक्यों का महत्व कुछ स्वार्थी और धर्म के दलालों तक ही परिमित है, विज्ञ जनता अब इस विषय को एक भिन्न दृष्टि से देखने लगी है। किन्तु ऐसे लोग यद्यपि तत्वतः स्त्री-शिक्षा के सर्वथा पक्ष में हैं, तथापि उनके हृदय में एक शङ्का है, और वह यह कि क्या वर्त्तमान शिक्षा हमारी पुत्रियों के लिए लाभप्रद होगी? उनकी इस शङ्का का महत्व यद्यपि एकदम समझ में नहीं आता, किन्तु ज़रा सूक्ष्मता से विचार करने पर इसमें एक बड़ा भारी तथ्य दृष्टिगत हुए बिना नहीं रहता। किसी भी वस्तु की उपयोगिता अथवा अनुपयोगिता, लाभ व हानि तज्जन्य परिणामों से ही भली प्रकार अनुभव हो सकती है, अतः इस थोड़े समय में हमारी बहिनों पर किए गए वर्त्तमान शिक्षा के प्रयोगों के प्रभाव का सूक्ष्म अन्वेषण हमारे सम्मुख उक्त शङ्का का उत्तर स्पष्ट रूप से रख देगा। पाश्चात्य शिक्षा का जो प्रभाव हमारे बालकों पर पड़ा है, वह भी उपरोक्त प्रश्न के हल करने में सहायक हो सकता है।

भारतीय संस्कृति वर्त्तमान शिक्षा के अनुरूप है अथवा नहीं? जिस शिक्षा से अन्य देशस्थ लोगों को यदि लाभ हुआ है, तो क्या यह आवश्यक है कि हमारे लिए भी उक्त शिक्षा-पद्धति लाभप्रद सिद्ध होगी? तथा गत एक शताब्दी के शिक्षा के इतिहास व उसके परिणाम क्या सन्तोषप्रद हैं? आदि अनेक प्रश्न हैं, जिनका सन्तोषपूर्ण उत्तर हमें इस बात के निश्चय करने में सहायक होगा कि वर्त्तमान युनिवर्सिटियों तथा कॉलेजों की शिक्षा, भावी भारत की आदर्श माताओं तथा भगिनियों के निर्माण करने में समर्थ होगी अथवा नहीं?

कम से कम मैं अपने इस विद्यार्थी-जीवन के थोड़े से अनुभव से इसी परिणाम पर पहुँचा हूँ कि वर्त्तमान शिक्षा हमारी बहिनों के लिए अहितकर ही नहीं, किन्तु घातक सिद्ध होगी।

हम जिस भावी भारत के सुखमय स्वप्न देख रहे हैं, और जिनके निर्माता भावी सन्तति की ओर टकटकी लगा रहे हैं, उनकी पूर्ति वर्त्तमान शिक्षा-दीक्षा में पले

हुए लड़के-लड़कियों से होना असम्भव-सा ही प्रतीत होता है। सम्भव है, पाठकों को मेरे इस विचार में कुछ अत्युक्ति दीख पड़े, किन्तु मैं अपनी तथा अपने सहपाठी भाई-बहिनों की अवस्था देख कर, इससे भी अधिक निराशापूर्ण भाव रखने में सङ्कोच नहीं करता।

आज मैं 'चाँद' के पाठक-पाठिकाओं के सम्मुख उपरोक्त विषय में कुछ और निवेदन करना चाहता हूँ, और इसी प्रकार देश के शिक्षा-प्रेमी तथा हामी सज्जनों की सेवा में भी एक चेतावनी रखना उचित समझता हूँ। मैं भली प्रकार जानता हूँ कि यह मेरी अनधिकार चेष्टा होगी, क्योंकि 'महिला' नामधारी किसी प्राणी की शिक्षा-दीक्षा के उत्तरदायित्व का एक शतांश भी मेरे अधिकार में नहीं है, विपरीत इसके प्रतिदिन मुझे अपनी सहपाठिन बहिनों के साथ ही कॉलेज में जाकर उस उच्च शिक्षा के साक्षात् अवतार अर्थात् प्रोफ़ेसर जी की ओर टकटकी लगाए, उनके श्रीमुख से बरसने वाली Cupid's College * की आदर्श महिला अथवा 'चाँद' की परिभाषा में महिला-रत्न Lamia the lovely graduate * की प्रेम-कहानी का Vivid picture अपने हृदय-मन्दिर में धूप-दीप नैवेद्य के साथ 'स्थापित' करना पड़ता है, अन्यथा मुझे और मेरी बहिनों को परीक्षा-रूपी 'यज्ञ' की आहुति बनना पड़ेगा। अस्तु—

फिर भी यदि मैं इस विषय में चेतावनी न सही, किन्तु अन्य किसी रूप में कुछ लिखूँ तो सम्भवतः वह 'मदाख़लत बेजा' न होगी। यह स्वाभाविक बात है कि जब किसी नवीन वस्तु का जन्म अथवा पुनर्जन्म होता है तो लोग उसकी ओर सर पर पैर रखकर भाग खड़े होते हैं, नवीन जोश और उत्साह में उनकी विचार-शक्ति की धारा बोथरी हो जाती है, और वे 'सूरदासों' के समान उसका अनुकरण करने लगते हैं। हमारी वर्तमान शिक्षा-प्रणाली की प्रगति का इतिहास भी इसी का एक जीता-जागता चित्र अथवा चरित्र है। लॉर्ड मैकॉले ने जिस शिक्षा की परिभाषा करते समय अपने श्रीमुख के 'भोंपो' से कहा था कि यह शिक्षा भारत में एक Chemical change उत्पन्न करेगी, अर्थात् वर्तमान शिक्षा-प्रणाली में पले हुए लोग यद्यपि रङ्ग में काजल के समान, वेष में हिन्दू के समान, होंगे किन्तु मनोभावों में बिलकुल अङ्गरेज़ों के समान कोढ़ी (सफ़ेद) होंगे। बीसवीं सदी के शिक्षित भारतीयों के आचार-विचार तथा 'सिद्धान्त' (?) बिलकुल हमारे अनुकूल होंगे, उसी शिक्षा के पीछे लोग आज ऐसी दौड़ लगा रहे हैं कि मानो कोई नवीन मोटर भागी जा रही है।

लोकमान्य तिलक के शब्दों में इसे Evil necessity मानकर यदि हमें (लड़कों को) इसमें अपने जीवन को नष्ट करना अनिवार्य ही हो, तो मेरी मोटी समझ में यह बात नहीं घुसती कि हमारी बहिनों को क्यों इस 'अनिवार्य' रोग का शिकार बनाया जाता है। वर्तमान शिक्षा-प्रणाली का जो विषैला परिणाम देश के नवयुवकों के पिचके गालों, धँसी आँखों और झुकी कमरों पर दृष्टिगत हो रहा है तथा जिसके कारण आज हमारे देश की भावी आशाओं के अन्दर से स्वदेश-प्रेम, आत्म-सम्मान तथा सदाचार के आदर्श का ह्रास हो रहा है, जिस शिक्षा ने हमें एक दयनीय और बीभत्स स्थिति में ला पटका है, उसी मायाविनी से हमारी भावी माताओं तथा भगिनियों को बचाने का सुअवसर जानकर ही आज मैंने आपके सम्मुख कुछ पंक्तियाँ रखने का साहस या दुस्साहस किया है। कारण, अभी स्त्री-शिक्षा का श्रीगणेश है, यदि इसी समय हमारे उत्तरदायी नेताओं ने तथा उक्त विषय से सम्बन्धित उत्तरदायी लोगों ने, स्त्रियों की शिक्षा-प्रणाली व पद्धति को उचित व वाञ्छनीय मार्ग में नहीं मोड़ा तो सम्भव है कि आगे जाकर लड़कों की शिक्षा के समान यह रोग भी असाध्य जान पड़े और तब केवल पश्चात्ताप करके शान्त रहना पड़े। अतएव जिन्हें देश का भविष्य उज्ज्वल देखने की अभिलाषा है, जो यह चाहते हैं कि उनके सुख-स्वप्न की आशाएँ सत्य सिद्ध हों, उनके लिए यह समय उक्त प्रश्न को शान्त चित्त से मनन कर तदनुसार कार्य करने के लिए अत्यन्त महत्व का है। कारण, उस सुवर्णमय भविष्य की उत्पत्ति करने वाली सन्तति की निर्माता हमारी भावी माताओं की सृष्टि इसी समय में होगी, अतः यदि इस समय हमने आलस्य अथवा प्रमाद-वश इस प्रश्न पर विचार न किया, तो उसका दुष्परिणाम देश को अधिक काल तक भोगना पड़ेगा।

सम्भवतः मेरी उपरोक्त भावनाओं में किसी सूक्ष्म-

* उक्त दोनों वाक्य हमारी Text-book के हैं।

द्रष्टा को स्त्री-शिक्षा का विरोध दीख पड़े, अतः उनकी दीर्घ शङ्का के निवारणार्थ मैं इतना ही कहकर अपने स्त्री-शिक्षा के प्रेम का प्रमाण देना चाहता हूँ कि यदि कभी मुझे भारत में कमाल पाशा-जैसा स्थान मिले, तो मैं सर्व-प्रथम लड़कियों की ही शिक्षा को अनिवार्य कर दूँ। यह बात दूसरी है कि वह शिक्षा किस प्रकार की होगी। इसी प्रकार मेरी कुछ माताएँ और बहिनें, शायद उपरोक्त बात से यह अनुमान लगावें कि उनके 'समानाधिकार के महायुद्ध' का यह विरोध है, किन्तु उनकी सेवा में भी मेरा इतना ही निवेदन है कि मेरा यह तात्पर्य कदापि नहीं है। माताओं के अधिकार पुरुषों के बराबर ही नहीं, किन्तु उनसे भी अधिक हैं; परन्तु यहाँ तो बात ही भिन्न है। यदि आज पुरुषों में शराब और अन्य दुर्व्यसनों का प्रचार हो, तो क्या हमारी बहिनें भी उसके लिए समा-नाधिकार की भित्ति पर माँग पेश करेंगी? मेरा उपरोक्त बातों के लिखने का केवल-मात्र इतना ही तात्पर्य है कि जिस आधुनिक शिक्षा ने हमारे आचार, विचार और शरीर में घुन लगा दिया, जिसने हमारे अन्दर से सदा-चार का महत्त्व निकाल दिया, जिसने हमारे मनों में अपने पूर्वजों के प्रति हेय-भाव और घृणा का सञ्चार कर दिया, जिसने हमारा विराट् शरीर 'दो बाँसों पर हाँडी' के समान वीभत्स रूप में परिणत कर दिया, जिसके कारण आजकल हमें ३० और ३५ वर्ष की ही अवस्था में 'वृद्ध' होने का सौभाग्य प्राप्त होता है, जिसमें बॉयरन और शेक्सपियर की कल्पित रचनाओं के कारण आज हमें दिन में ही तारे दिखाई पड़ते हैं, वीर-रस के स्थान में श्रृङ्गार-रस जिसका माध्यम है और सच्चरित्रता तथा ब्रह्मचर्य के स्थान में आचार-विहीनता जिसका आवश्यक परिणाम है, जो शिक्षा आज हमारे अन्दर से दासत्व की मनोवृत्ति को निकालने में असमर्थ है, जो हमें अपना आदर्श बताने में असफल है, जो राष्ट्रीय भाषा की प्रगति में बाधक है, जो हमारी मान-सिक और शारीरिक शक्ति को विकसित नहीं कर सकती, जिसका उद्देश्य केवल-मात्र 'क्लर्क' उत्पन्न करना है, जो हमें देशभक्ति के नशे में मस्त करने में असमर्थ है, ऐसी शिक्षा देकर कम से कम हमें अपनी बहिनों का जीवन नष्ट न करना चाहिए। उन्हें डिग्रियाँ लेकर क्लर्की नहीं करनी है, बल्कि उनके सिर पर भावी राष्ट्र के निर्माण का बड़ा भारी उत्तरदायित्व है। उनको उसी के अनुकूल शिक्षा देना जितना अधिक आवश्यक है, उतना ही वर्त्तमान विषैली शिक्षा से बचाना भी आवश्यक है। यह ध्रुव-सत्य है कि शिक्षित माताएँ ही प्रताप और शिवाजी उत्पन्न कर सकती हैं। भावी सन्तति—जिस पर राष्ट्र का भविष्य स्थिर है—शिक्षित माताओं द्वारा ही निर्मित होंगी, किन्तु इसके लिए वर्त्तमान शिक्षा प्रतिकूल ही नहीं, किन्तु घातक भी है। मैं दावे से कह सकता हूँ कि वर्त्तमान शिक्षित बी० ए० और एम० ए० माताओं में से ९५ प्रतिशत की सन्तानें अधिक निर्बल, अधिक रोगी, अधिक निरुत्साही तथा अधिक अयोग्य होंगी। जब आप मानते हैं कि वर्त्तमान शिक्षा-प्रणाली में घुने हुए युवकों की सन्तानें उपरोक्त दोषयुक्त हैं, तो यह बात स्पष्ट है कि जब माता-पिता दोनों ही समान होंगे तो उसका परिणाम अधिक हानिकारक होना अनिवार्य है। हो सकता है, देवी सरोजिनी आदि के समान वर्त्तमान शिक्षा-प्रणाली में पली कुछ माताएँ अधिक योग्य हों, किन्तु कितनी? और वह भी आजकल की शिक्षा का परिणाम न होगा, उसमें उनकी अपनी ही दैवी शक्ति कारणीभूत होगी। मैं बनारस-विश्वविद्यालय में पढ़ता हूँ, मेरे ही साथ यहाँ अनेक बहिनें भी हैं, और सम्भवतः कुछ दिनों में उनके पढ़ने का अलग प्रबन्ध भी हो जाय, किन्तु प्रश्न साथ या अलग पढ़ने का नहीं है, प्रश्न है उस शिक्षा का जो उन्हें और हमें दी जाती है। यदि शान्ति-पूर्वक विचार किया जाय तो प्रत्येक मनस्वी इस बात को अनुभव करे बिना न रहेगा कि वर्त्तमान शिक्षा ने हमारे देश के युवकों की जो हीन अवस्था कर रक्खी है, वह हमारी बहिनों के लिए कदापि वाञ्छनीय नहीं है। इसके विपरीत उनके लिए उस शिक्षा की आवश्यकता है कि जिसके द्वारा वे भावी भारत के निर्माण में सहायक हो सकें। यूनिवर्सिटी की डिग्रियों की उनको उतनी आवश्य-कता नहीं है, जितनी कि वास्तविक शिक्षा की। उनके लिए झूठे इतिहास और संसार भर के भूगोल के ज्ञान की अपेक्षा व्यावहारिक और गृह-सम्बन्धी ज्ञान की अधिक ज़रूरत है।

बॉयरन और कीट्स की श्रृङ्गाररस-पूर्ण कविताओं की अपेक्षा उनके लिए रामायण और महाभारत के पातिव्रत्य धर्म के आदर्श अधिक लाभप्रद हैं, जामिति और बीज-

गणित में शक्ति व्यय करने की अपेक्षा चिकित्सा-विज्ञान और सन्तान-शास्त्र की शिक्षा उनके लिए अधिक उपयोगी

कुमारी ए० जे० वाचा, बी० ए० (ऑनर्स)

आप इस साल सम्मान-सहित कर्नाटक-कॉलेज से बी० ए० की परीक्षा में उत्तीर्ण होने वाली सर्व-प्रथम महिला-रत्न हैं।

है। मेरा यह तात्पर्य कदापि नहीं कि उनको इन सब विषयों की आवश्यकता ही नहीं, किन्तु उनके लिए प्रथम अपने मुख्य उत्तरदायित्व का पालन करना अधिक श्रेयस्कर है।

प्रत्येक उन्नत राष्ट्र की कन्याएँ सर्वप्रथम सन्तति-पालन, अतिथि-सत्कार, अपने पुत्रों और भाइयों को स्वास्थ्य और सदाचार की शिक्षा देना, तथा अपने स्वधर्म और स्वदेशी आदर्शों से उनको परिपूर्ण करना अधिक महत्वपूर्ण समझती हैं। वर्त्तमान कॉलेजों में पढ़ कर हमारी बहिनों के स्वास्थ्य का जो भयानक ह्रास होता है, वह बड़ा ही चिन्तनीय है। निर्बल माताओं की सन्तान की शारीरिक शक्ति का अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है। कॉलेजों की पाठ्य-पुस्तकों में और विशेषकर अङ्गरेज़ी टेक्स्ट-बुकों में हमारे सदाचार के आदर्श के विरुद्ध पाठ पढ़ाए जाते हैं। उन शृङ्गार-रस की कविताओं से उत्पन्न हुए प्रभाव का अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है। अस्तु—

मेरी यही धारणा है कि हमारी बहिनों के लिए शिक्षा-क्रम इससे सर्वथा भिन्न होना चाहिए, हमारे संरक्षकों और माता-पिताओं को केवल डिग्रियों के पीछे पागल बनकर, अपने पुत्रों के समान अपनी पुत्रियों के जीवन को भी निस्सार और नष्ट न करना चाहिए। सबसे अधिक शोक तो इस बात का है

श्रीमती एम० सोराबजी

आप कैनानोर-म्युनिसिपैलिटी के भूतपूर्व चेयरमैन श्री० मानिकजी सोराबजी प्लीडर की धर्म्म-पत्नी हैं। आप कैनानोर की स्पेशल मैजिस्ट्रेट नियुक्त हुई हैं।

कि बनारस हिन्दू-यूनिवर्सिटी-जैसी राष्ट्रीय संस्थाओं को भी ऑक्सफ़र्ड और केम्ब्रिज की होड़ करने की धुन सवार

है। क्या यदि वे चाहें तो अपना पाठ्यक्रम देश और जाति के लिए उपयोगी नहीं बना सकतीं? सरकारी शिक्षा-संस्थाओं और राष्ट्रीय शिक्षा-संस्थाओं—यहाँ तक कि राष्ट्रीय यूनिवर्सिटी तक के पाठ्यक्रम में कोई भेद नहीं है। मेरी समझ में इन शिक्षणालयों का एकमात्र राष्ट्र के लिए उपयोग उनके राष्ट्रीय पाठ्यक्रम में ही हो सकता है।

कुमारी एम० लूनिस

आप मदुरा की बाल-रक्षा-समिति की सुपरिन्टेन्डेण्ट नियुक्त हुई हैं

जाने दीजिए, यदि थोड़ी देर के लिए वर्त्तमान भ्रष्ट परिस्थिति में लड़कों के लिए कोई विशेष परिवर्त्तन करना वाञ्छनीय न हो, तो कम से कम लड़कियों को तो उस पतन की ओर जाने से बचाने के लिए अभी पर्याप्त समय तथा अच्छा अवसर है, अन्यथा जब लड़कों के समान उनकी शोचनीय अवस्था को देख कर लोगों की आँखें खुलेंगी, तब उन्हें अपनी भूल प्रतीत होगी। लड़कों की अवस्था तो बिगड़ ही गई है, अब यह समाज के हाथ में है कि अपनी पुत्रियों को भी वैसा ही बनावे अथवा उससे बचावे। अतः जहाँ हम स्त्री-शिक्षा के लिए सर्वत्र प्रयत्न करें, वहाँ हमें उनके लिए भिन्न पाठ्यक्रम का भी ध्यान रखना चाहिए, तभी भारतीय स्त्रियों की शिक्षा से उन्हें तथा देश को लाभ हो सकता है। देश का भविष्य भावी सन्तान पर निर्भर है, और भावी सन्तति का निर्माण हमारी माताओं पर। ऐसी अवस्था में यह स्पष्ट है कि हमारी बहिनों की शिक्षा-दीक्षा तथा आचार-व्यवहार का कितना महत्व है। आशा है कि विज्ञ-समाज इस बात को ध्यान में रख कर स्त्री-शिक्षा की उन्नति में अग्रसर होगा।

—डी० बी० बावले

* * *

पण्डिता धर्मशीला

श्रीमती धर्मशीला जायसवाल पटने के नामी विद्वान् श्रीयुत काशीप्रसाद जायसवाल-विद्यामहोदधि बैरिस्टर की द्वितीय पुत्री हैं। धर्मशीला जब ४ वर्ष की अवस्था की थीं, उसी समय अपनी इच्छा से अपनी अग्रजा के साथ स्कूल जाने लगीं। वे अपने स्कूल में सबसे नन्हीं बालिका थीं। ११ वर्ष की अवस्था तक कानवेण्ट स्कूल में पढ़ती रहीं। तत्पश्चात् स्कूल छोड़ कर, घर पर अध्ययन कर अपने पिता से मैट्रिक पास करने की अनुज्ञा ले १२ वर्ष की उम्र में मैट्रिकुलेशन परीक्षा पास कर डाली। फिर घर पर ही अध्ययन कर १४ वर्ष की आयु में एफ़० ए० पास किया, और गत मार्च में कलकत्ता-विश्वविद्यालय की बी० ए० परीक्षा १६ वर्ष के वय में नामवरी (Distinction) के साथ पास किया। परीक्षा में आपको फ़िलॉसफ़ी (दर्शन) में सौ में ७० और अङ्गरेज़ी में ७२ अङ्क मिले। कुल साढ़े बारह सौ छात्र

में सवा सौ छात्रों को "डिस्टिङ्क्शन" मिला। इनमें धर्मशीला को लेकर ८ लड़कियाँ हैं। धर्मशीला ही उम्र में सबसे छोटी हैं। इतनी कम उम्र की ग्रेजुएट भारतवर्ष में दूसरी बहिन नहीं है।

धर्मशीला केवल बी० ए० ही नहीं, पण्डिता हैं, संस्कृत में श्लोक-रचना कर लेती हैं। चित्र-विद्या में बहुत चतुर हैं। क़लमी तसवीर बहुत सुन्दर बनाती हैं।

एम० ए० की परीक्षा देकर यह फ़िलॉसफ़ी डॉक्टर की और बैरिस्टरी की परीक्षा देने इङ्गलैण्ड जायँगी। गत २२ सितम्बर को इनका विवाह बाबू चन्दलाल जी, बी० ए० के साथ हुआ है। वह पूर्निया के राजा पृथ्वीचन्द लाल के भतीजे हैं, और इङ्गलैण्ड सिविल-सर्विस परीक्षा के लिए गए हैं।

यह विवाह वैदिक रीति से संयुक्त, नए क़ानून से रजिस्टरी होकर हुआ है। हिन्दुओं के विवाह भी रजिस्टरी द्वारा हों, यह क़ानून सर हरिसिंह गौड़ ने पास कराया था। इसके अनुसार विवाह करने वाले बहु-विवाह नहीं कर सकते और उनकी लड़कियाँ भी अपने भाइयों के साथ दाय (हिस्सा) बपौती में पाएँगी।

इस विवाह के साक्षी (रजिस्टरी के समय) पटना-हाईकोर्ट के चीफ़ जस्टिस, श्रीमती मनोहर-लाल, धर्मपत्नी पण्डित-प्रवर रामावतार शर्मा साहित्याचार्य, सर अली इमाम और प्रसिद्ध बैरिस्टर मिस्टर के० बी० दत्त थे। धर्मपत्नी मनोहर-लाल जी बिहार में परदा उठा देने वाले स्त्री-समाज की नेत्री हैं। आप मुज़फ़्फ़रपुर के रईस स्वर्गीय राय परमेश्वर नारायण मेहता की पुत्री और मिस्टर मनोहरलाल बैरिस्टर की पत्नी हैं। श्रीयुत रामावतार शर्मा और धर्मशीला के पिता में गाढ़ी मित्रता है। पण्डित जी की धर्मपत्नी ने अपनी पुत्रियों-सहित मण्डप में बैठ, यह विवाह करा स्त्री जन को मानो यह शिक्षा दी कि वैदिक विधि में विवाह के लिए समय का निषेध नहीं है। उन्हीं के परामर्श और सहयोग से यह शुभकार्य सम्पादित हुआ। पण्डित धुरेन्द्र शास्त्री ने विवाह-विधि सम्पन्न कराई और मन्त्र सब श्रोताओं को समझाते गए।

हमें यह समाचार देते हुए अपार आनन्द है। आशा है कि बहिन धर्मशीला की शिक्षा तथा विवाह का आदर्श लेकर हमारी अन्धकार में गिरी हुई बहिनें अपनी उन्नति करने का प्रयत्न करेंगी तथा समाज की कुप्रथाओं को दूर करने के लिए अग्रसर होंगी। साथ ही मुझे इस बात का

श्रीमती श्रीरम भागारथी अम्मल

आप चिंगलपेट (मद्रास) के ज़िला शिक्षा-परिषद् की सभासद चुनी गई हैं।

भी गर्व है कि यह गौरव बिहार को ही प्राप्त है। ईश्वर से प्रार्थना है कि युगल दम्पति चिरायु होकर हमारे देश का गौरव बढ़ावें।

—इन्दुमती तिवारी

है। क्या यदि वे चाहें तो अपना पाठ्यक्रम देश और जाति के लिए उपयोगी नहीं बना सकतीं? सरकारी शिक्षा-संस्थाओं और राष्ट्रीय शिक्षा-संस्थाओं—यहाँ तक कि राष्ट्रीय यूनिवर्सिटी तक के पाठ्यक्रम में कोई भेद नहीं है। मेरी समझ में इन शिक्षणालयों का एकमात्र राष्ट्र के लिए उपयोग उनके राष्ट्रीय पाठ्यक्रम में ही हो सकता है।

कुमारी एम० लूनिस

आप मदुरा की बाल-रक्षा-समिति की सुपरिन्टेन्डेण्ट नियुक्त हुई हैं

जाने दीजिए, यदि थोड़ी देर के लिए वर्त्तमान भ्रष्ट परिस्थिति में लड़कों के लिए कोई विशेष परिवर्त्तन करना वाञ्छनीय न हो, तो कम से कम लड़कियों को तो उस पतन की ओर जाने से बचाने के लिए अभी पर्याप्त समय तथा अच्छा अवसर है, अन्यथा जब लड़कों के समान उनकी शोचनीय अवस्था को देख कर लोगों की आँखें खुलेंगी, तब उन्हें अपनी भूल प्रतीत होगी। लड़कों की अवस्था तो बिगड़ ही गई है, अब यह समाज के हाथ में है कि अपनी पुत्रियों को भी वैसा ही बनावे अथवा उससे बचावे। अतः जहाँ हम स्त्री-शिक्षा के लिए सर्वत्र प्रयत्न करें, वहाँ हमें उनके लिए भिन्न पाठ्यक्रम का भी ध्यान रखना चाहिए, तभी भारतीय स्त्रियों की शिक्षा से उन्हें तथा देश को लाभ हो सकता है। देश का भविष्य भावी सन्तान पर निर्भर है, और भावी सन्तति का निर्माण हमारी माताओं पर। ऐसी अवस्था में यह स्पष्ट है कि हमारी बहिनों की शिक्षा-दीक्षा तथा आचार-व्यवहार का कितना महत्व है। आशा है कि विज्ञ-समाज इस बात को ध्यान में रख कर स्त्री-शिक्षा की उन्नति में अग्रसर होगा।

—डी० बी० बावले

* * *

पण्डिता धर्मशीला

श्रीमती धर्मशीला जायसवाल पटने के नामी विद्वान् श्रीयुत काशीप्रसाद जायसवाल-विद्यामहोदधि बैरिस्टर की द्वितीय पुत्री हैं। धर्मशीला जब ४ वर्ष की अवस्था की थीं, उसी समय अपनी इच्छा से अपनी अग्रजा के साथ स्कूल जाने लगीं। वे अपने स्कूल में सबसे नन्हीं बालिका थीं। ११ वर्ष की अवस्था तक कानवेण्ट स्कूल में पढ़ती रहीं। तत्पश्चात स्कूल छोड़ कर, घर पर अध्ययन कर अपने पिता से मैट्रिक पास करने की अनुज्ञा ले १२ वर्ष की उम्र में मैट्रिकुलेशन परीक्षा पास कर डाली। फिर घर पर ही अध्ययन कर १४ वर्ष की आयु में एफ़० ए० पास किया, और गत मार्च में कलकत्ता-विश्वविद्यालय की बी० ए० परीक्षा १६ वर्ष के वय में नामवरी (Distinction) के साथ पास किया। परीक्षा में आपको फ़िलॉसफ़ी (दर्शन) में सौ में ७० और अङ्गरेज़ी में ७२ अङ्क मिले। कुल साढ़े बारह सौ छात्र

में सवा सौ छात्रों को "डिस्टिङ्कशन" मिला। इनमें धर्मशीला को लेकर ८ लड़कियाँ हैं। धर्मशीला ही उम्र में सबसे छोटी हैं। इतनी कम उम्र की ग्रेजुएट भारतवर्ष में दूसरी बहिन नहीं है।

धर्मशीला केवल बी० ए० ही नहीं, पण्डिता हैं, संस्कृत में श्लोक-रचना कर लेती हैं। चित्र-विद्या में बहुत चतुर हैं। क़लमी तसवीर बहुत सुन्दर बनाती हैं।

एम० ए० की परीक्षा देकर यह फ़िलॉसफ़ी डॉक्टर की और बैरिस्टरी की परीक्षा देने इङ्गलैण्ड जायँगी। गत २२ सितम्बर को इनका विवाह बाबू चन्दलाल जी, बी० ए० के साथ हुआ है। वह पूर्निया के राजा पृथ्वीचन्द लाल के भतीजे हैं, और इङ्गलैण्ड सिविल-सर्विस परीक्षा के लिए गए हैं।

यह विवाह वैदिक रीति से संयुक्त, नए क़ानून से रजिस्टरी होकर हुआ है। हिन्दुओं के विवाह भी रजिस्टरी द्वारा हों, यह क़ानून सर हरिसिंह गौड़ ने पास कराया था। इसके अनुसार विवाह करने वाले बहु-विवाह नहीं कर सकते और उनकी लड़कियाँ भी अपने भाइयों के साथ दाय (हिस्सा) बपौती में पाएँगी।

इस विवाह के साक्षी (रजिस्टरी के समय) पटना-हाईकोर्ट के चीफ़ जस्टिस, श्रीमती मनोहरलाल, धर्मपत्नी पण्डित-प्रवर रामावतार शर्मा साहित्याचार्य, सर अली इमाम और प्रसिद्ध बैरिस्टर मिस्टर के० बी० दत्त थे। धर्मपत्नी मनोहरलाल जी बिहार में परदा उठा देने वाले स्त्री-समाज की नेत्री हैं। आप मुज़फ़्फ़रपुर के रईस स्वर्गीय राय परमेश्वर नारायण मेहता की पुत्री और मिस्टर मनोहरलाल बैरिस्टर की पत्नी हैं। श्रीयुत रामावतार शर्मा और धर्मशीला के पिता में गाढ़ी मित्रता है। पण्डित जी की धर्मपत्नी ने अपनी पुत्रियों-सहित मण्डप में बैठ, यह विवाह करा स्त्री जन को मानो यह शिक्षा दी कि वैदिक विधि में विवाह के लिए समय का निषेध नहीं है। उन्हीं के परामर्श और सहयोग से यह शुभकार्य सम्पादित हुआ। पण्डित धुरेन्द्र शास्त्री ने विवाह-विधि सम्पन्न कराई और मन्त्र सब श्रोताओं को समझाते गए।

हमें यह समाचार देते हुए अपार आनन्द है। आशा है कि बहिन धर्मशीला की शिक्षा तथा विवाह का आदर्श लेकर हमारी अन्धकार में गिरी हुई बहिनें अपनी उन्नति करने का प्रयत्न करेंगी तथा समाज की कुप्रथाओं को दूर करने के लिए अग्रसर होंगी। साथ ही मुझे इस बात का

श्रीमती श्रीराम भागीरथी अम्मल

आप चिंगलपेट (मद्रास) के ज़िला शिक्षा-परिषद् की सभासद चुनी गई हैं।

भी गर्व है कि यह गौरव बिहार को ही प्राप्त है। ईश्वर से प्रार्थना है कि युगल दम्पति चिरायु होकर हमारे देश का गौरव बढ़ावें।

—इन्दुमती तिवारी

[ले० कुमारी शीरीं क़ाज़ी]

क्रोशिए के काम का कुत्ता

इस कुत्ते को हम क्रोशिया से बिन कर तकिया-गिलाफ़ या किसी और चीज़ पर बना सकते हैं और Cross stitch से भी कपड़े पर बना सकते हैं, विधि इतनी सरल है कि बतलाने की आवश्यकता नहीं।
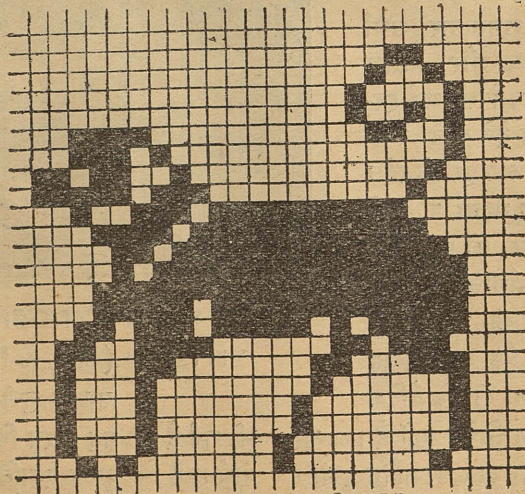
कुत्ते का नमूना

श्री महालक्ष्मी
और
वसन्त-विहार
के जो सर्वप्रिय सुन्दर तिरङ्गे चित्र 'चाँद' में प्रकाशित हो चुके हैं, ग्राहकों के अनुरोध से इन्हें बड़े साइज़ में भी छपाया गया है। इन चित्रों का साइज़—
१५X२०
है। ८० पाउण्ड के बढ़िया काग़ज़ पर छपे हैं। मूल्य फ़ी कॉपी ।।।) ; डाक-व्यय १ से ६ कॉपी तक ।।=)
थोक व्यापारियों के लिए ख़ास रियायत की जायगी।
चित्र इतने सुन्दर छपे हैं कि फ़्रेम लगाकर जिस कमरे में लगा दीजिए, उसी की शोभा बढ़ जायगी।
मँगाने का पता :—
'चाँद' कार्यालय, २८ एल्गिन रोड,
इलाहाबाद

यह पुस्तक बालक-बालिकाओं के लिए खिलौना है। जैसा पुस्तक का नाम है, वैसा ही इसमें गुण है। इसमें लगभग ४५ मनोरञ्जक कहानियाँ और एक से एक बढ़कर ४० हास्यप्रद चुटकुले हैं। एक कहानी बालकों को सुनाइए, वे हँसी के मारे लोट-पोट हो जायँगे। यही नहीं कि उनसे मनोरञ्जन ही होता हो, वरन् उनसे बालकों के

ज्ञान और बुद्धि की वृद्धि के अतिरिक्त हिन्दी-उर्दू के व्याकरण-सम्बन्धी ज़रूरी-ज़रूरी नियम भी याद हो जाते हैं। इस पुस्तक को बालकों को सुनाने से 'आम के आम गुठलियों के दाम' वाली कहावत चरितार्थ होती है। छपाई-सफ़ाई सुन्दर; १६० पृष्ठ की सजिल्द पुस्तक की क़ीमत केवल ।॥) बारह आने; स्थायी ग्राहकों से ॥-) नौ आने।

सन्तानशास्त्र

नवीन संशोधित और परिवर्द्धित संस्करण

The **Indian Daily Mail of Bombay** says:—

The chapter on *Brahmacharya* is very well written. It is not only instructive but also wins the appreciation of the reader. Another chapter deals with mensturation. This subject is very thoroughly dealt with and we like all our ladies to understand themselves and thus if they act according to the instructions contained in this book we feel confident that they will be much benefited thereby. Another chapter deals with some of the causes of barrenness and how to avoid it. This chapter also deals with methods of limiting the family, which will not be harmful to the health. We further find a chapter on marriages and marriagable age, etc. There is a great deal of information in these chapters, the ignorance of which is causing such a great deal of trouble and misery to young men. The chapter which deals with the instructions for would-be mothers is probably the best in the book as it contains information which will be of great use not only to the mother but also for the child which is in the womb. Sanskrit verses are given from notable authors to show that the statements made by the author are well-supported.

The Hindi is easy and there are illustrations and diagrams which explain the text. The book is neatly printed and well bound. We recommend this book to every Indian mother. The book is written in accordance with most up-to-date mesical Developments.

३ मास के भीतर २,००० प्रतियों का हाथोंहाथ निकल जाना ही पुस्तक की उत्तमता का यथेष्ट प्रमाण है। माँग बहुत अधिक होने के कारण रात-दिन लगकर नवीन संशोधित और परिवर्द्धित संस्करण इतनी जल्दी प्रकाशित किया गया है। आज ही मँगा लीजिए, नहीं तो पछताना पड़ेगा। मूल्य वही लागत मात्र ४) स्थायी ग्राहकों से ३)

'चाँद' कार्यालय, २८ एल्गिन रोड, इलाहाबाद

एक क्रान्तिकारी उपन्यास

[लेखक—श्री० मदारीलाल जी गुप्त । प्रस्तावना-लेखक—श्री० प्रेमचन्द जी]

यह वही क्रान्तिकारी उपन्यास है, जिसकी सालों से पाठक प्रतीक्षा कर रहे थे, किन्तु अनिवार्य कारणों से हम अब तक पुस्तक प्रकाशित न कर पाए थे। इसका सविस्तार परिचय पाठकों ने 'चाँद' में पढ़ा ही होगा। ऐसी सुन्दर पुस्तक की प्रस्तावना लिखकर प्रेमचन्द जी ने इसे अमरत्व प्रदान कर दिया है। श्री० प्रेमचन्द जी अपनी प्रस्तावना में लिखते हैं:—

"उपन्यास का सबसे बड़ा गुण उसकी मनोरञ्जकता है। इस लिहाज़ से श्री० मदारीलाल जी गुप्त को अच्छी सफलता प्राप्त हुई है। पुस्तक आदि से अन्त तक पढ़ जाइए, कहीं आपका जी न ऊबेगा। पुस्तक की रचना-शैली सुन्दर है। पात्रों के मुख से वही बातें निकलती हैं, जो यथावसर निकलनी चाहिए, न कम न ज़्यादा। उपन्यास में वर्णनात्मक भाग जितना ही कम और वार्त्ता-भाग जितना ही अधिक होगा, उतनी ही कथा रोचक और ग्राह्य होगी। 'मानिक-मन्दिर' में इस बात का काफ़ी लिहाज़ रक्खा गया है। वर्णनात्मक भाग जितना है, उसकी भाषा भी इतनी भावपूर्ण है कि पढ़ने में आनन्द आता है। कहीं-कहीं तो आपके भाव बहुत गहरे हो गए हैं और दिल पर चोट करते हैं। चरित्रों में मेरे विचार में सोना का चित्रण बहुत ही स्वाभाविक हुआ है और देवी का सर्वाङ्ग सुन्दर। सोना अगर पतिता के मनोभावों का चित्र है, तो देवी सती के भावों की मूर्त्ति। पुरुषों में ओङ्कार का चरित्र बड़ा सुन्दर और सजीव है। विषय-वासना के भक्त कैसे चञ्चल, अस्थिर-चित्त और कितने मधुर-भाषी होते हैं, ओङ्कार इसका जीता-जागता उदाहरण है। उसे अपनी पत्नी से प्रेम है, सोना से प्रेम है, कुमारी से प्रेम है और चन्दा से प्रेम है; जिस वक्त जिसे सामने देखता है, उसी के मोह में फँस जाता है। ओङ्कार ही पुस्तक की जान है। कथा में कई सीन बहुत मर्मस्पर्शी हुए हैं। सोना के मिट्टी हो जाने का और ओङ्कार के सोना के कमरे में आने का वर्णन बड़े ही सनसनी पैदा करने वाले हैं, इत्यादि।"

इसी से आप पुस्तक की उत्तमता का अनुमान लगा सकते हैं। छपाई-सफ़ाई प्रशंसनीय, पृष्ठ-संख्या लगभग ३२०; समस्त कपड़े की सुन्दर सजिल्द पुस्तक का मूल्य केवल २) रु० !! ऐसी सस्ती पुस्तक आपने न पढ़ी होगी। फिर भी स्थायी ग्राहकों को केवल प्रचार की दृष्टि से हमारे यहाँ की प्रकाशित सभी पुस्तकें पौने मूल्य में दी जाती हैं। इस हिसाब से आपको यह पुस्तक केवल १॥) रु० में मिलेगी !

☞ व्यवस्थापिका 'चाँद' कार्यालय, इलाहाबाद

[ले० श्री० जी० पी० श्रीवास्तव, बी० ए०, एल्-एल्० बी०]

(सितम्बर से आगे)

लतखोरीलाल

(५)

ईश्वर सलामत रक्खे मेरे मैले रूमाल और मेरी चवन्नी को, जिनकी बदौलत किसी तरह आबरू बचाता और चने कुड़कुड़ाता इस लम्बे सफ़र को मैंने बहुत-कुछ तय कर डाला। रास्ते में कैसी-कैसी आफ़तें झेलीं, पैरों में कितने-कितने बड़े फफोले पड़े—यह सब श्रीमती जी से मिलने के मनसूबों में मैं भूला हुआ था। क्योंकि पाँचवें दिन मैं उनसे सिर्फ़ चार ही कोस के फ़ासले पर था। मगर भाई पेट अजब चीज़ है, यह किसी तरह से भी नहीं भुलाया जा सकता। जब से चवन्नी ख़तम हो गई, तब से इस कम्बख़्त ने क़दम-क़दम पर नाक में दम कर दिया। सूरत भिखमङ्गे से भी बत्तर हो रही थी, क्योंकि बदन पर रूमाल की सिर्फ़ तीन अङ्गुल चौड़ी पट्टी के कुछ भी न था। चेहरे पर भूख और थकावट से हवाइयाँ उड़ रही थीं। उस पर पाँच रोज़ की दाढ़ी ने उसे और भी ख़ब्बीस बना के मुझे बिलकुल बनमानुष बना रक्खा था। भीख माँगने के लिए उससे बढ़ कर और धजा क्या हो सकती है? मगर माँगने का हुनर कहाँ? क्या करता? एकाध राही से मुठभेड़ हो जाती थी। वे लोग मुझे ख़ूब घूर कर देखते थे। जी बहुत चाहता था कि इनसे एक पैसा माँग लूँ, मगर कलेजा मसोस कर आँखें नीची कर लेता था। अब मालूम हुआ कि इसके लिए भी बड़ी हिम्मत और योग्यता की दरकार है। हमारे नेताओं ने इस फ़न को ज़रूर ही ख़ूब सीखा होगा, तभी यह लोग बात की बात में किसी न किसी बहाने हज़ारों रुपए इकट्ठा कर लेते हैं। मगर मैं बेवक़ूफ़ अपने पेट की ख़ातिर एक पैसा भी किसी से नहीं माँग सका—महज़ अपने अनाड़ीपन की वजह से।

कुछ दूर और चलने के बाद देखा कि दो शिकारी सड़क के किनारे एक पेड़ के नीचे बैठे कटोरदान सामने रक्खे कुछ खा रहे हैं। मुल्की मामलात पर आपस में बड़े जोश के साथ बहस भी करते जाते हैं। मगर मेरा ध्यान उनकी बातों पर न था। यहाँ तो सारा बदन, आँख, नाक, कान—सभी अपना-अपना काम छोड़ कर पेट से जा मिले थे। उसी की हमदर्दी में लगे हुए थे। यहाँ तक कि ख़ुद भी

पेट ही पेट हो रहे थे। क्योंकि मैं चौबीस घण्टों का भूखा था, तो मैं किसी की बातें सुनने के लिए अपने किस अङ्ग से काम लेता? तबीयत में तो बस यही थी कि किसी तरह कटोरदान लेकर भाग चलूँ। चोरी या सीनाज़ोरी कभी नहीं की थी। मगर अब मुझे यक़ीन हो गया कि लोग चोरी क्यों करते हैं।

मैं चुपचाप उनके पास जाकर बैठ गया, फिर भी चोरी की नीयत से नहीं। जब भीख माँगने में नानी मर रही थी तो भला चोरी करने के लिए इतना बड़ा कलेजा कहाँ से लाता? मैं तो सिर्फ़ पेट के हुरपेटने से वहाँ चला गया था। आदमी भलेमानुष मालूम होते थे, इसलिए समझता था कि तर्स खाकर कुछ न कुछ मुझको भी देंगे। मगर वे लोग अपनी धुन में ऐसे मस्त थे कि कम्बख़्तों ने आँख उठा कर भी नहीं देखा। खाना ख़तम भी हो चला, और किसी वक़्त में अगर किसी ने मुझे जूठन खाने के लिए कहा होता तो उसे मैं बिना मारे न छोड़ता। मगर इस वक़्त यही जूठन मुझे अमृत की तरह दिखाई दे रही थी।

आख़िर कब तक सब्र करता। मगर फ़िक्र यह हुई कि खाना माँगूँ तो किस तरह से? पेट चिल्ला रहा था, मगर ज़बान तो तालू से सटी हुई थी। बार-बार उसे हिलाने की कोशिश करता रहा, मगर कम्बख़्त अपनी जगह से टसकती ही न थी। बड़ी मुश्किलों से पेट पकड़ कर, कलेजा थाम कर, बहुत-कुछ सोच-विचार कर मुँह खोला तो बड़े धीमे सुरों में लड़खड़ाता हुआ सिर्फ़ इतना ही बोल सका—"भाई साहब!"

दोनों शिकारियों का मिज़ाज बिगड़ गया। दोनों ही ने एक साँस में डाँट दिया। उसके बाद एक ने फटकारना शुरू किया—"क्यों बे गधे, तमीज़ से बातें नहीं करता? हम तेरे भाई होने लायक़ हैं? हरामज़ादे! यह सूरत और यह हौसला! भाग, नहीं मारते-मारते कचूमड़ निकाल दूँगा।"

अब ख़्याल हुआ कि मेरी धजा भिखमँगों की सी है और मुझे भिखमँगों की तरह बातचीत करनी चाहिए। इसलिए अपनी ग़लती सुधारता हुआ अपनी ग़रज़ यों ज़ाहिर की; क्योंकि साफ़-साफ़ शब्दों में बिना आदत के भीख माँगते किसी तरह भी नहीं बन पड़ता—चाहे आज़मा के कोई देख ले।

मैं—मैं ग़रज़मन्द हूँ। अपनी ग़रज़ में अन्धा हो रहा हूँ। मैंने जान-बूझ कर आपका अपमान (insult) नहीं किया। अपनी ग़लती की माफ़ी चाहता हूँ। मैं रोज़ी की तलाश में हूँ। अगर आप मेहरबानी करके अपनी बन्दूक़ वग़ैरह ले चलने के लिए मुझे क़ुली बना लेंगे तो मैं अपने पेट की आग बुझा सकूँगा और आपको बड़ी दुआएँ दूँगा।

दोनों चकरा कर मेरा मुँह देखते हुए जल्दी-जल्दी अपना सामान बटोरने लगे।

एक ने घबड़ाकर कहा—मैं पहचान गया जनाब आपको। मगर आप हम लोगों के पीछे नाहक़ पड़े। आप सी० आई० डी० के आदमी (जासूस) हैं, तो जाइए किसी चोर-बदमाश का पता लगाइए। देशभक्तों का पीछा करके क्यों अपनी औक़ात ख़राब करते हैं। मुल्की मामलात पर जैसी बातें हम लोग कर रहे थे, वैसी तो अब आजकल सभी किया करते हैं। मगर इससे यह थोड़े ही साबित होता है कि हम लोग सरकार के दुश्मन हैं?

दूसरा—एक नसीहत मेरी भी सुन लीजिए। वह यह कि जब कभी आपको भिखमँगे का रूप धरना हो, तो खोपड़ी पर अङ्गरेज़ी बाल, उँगली में सोने की अँगूठी और ज़बान में शीन-क़ाफ़ की दुरुस्ती न रक्खा कीजिए, वरना इसी तरह हर जगह आपका भण्डा फूट जाया करेगा।

इतना कह कर वे दोनों अपना सामान लादे तेज़ी के साथ चल दिए, और मैं अपना-सा मुँह लेकर रह गया। वही मसल हुई कि 'जहाँ जाय भूखा वहीं पड़े सूखा।' मगर ख़ैर, इस मुसीबत की अँधियारी में अँगूठी का ख़्याल एकाएक उदय होकर मुझ मुर्दे को मरने से बचा लिया। इसकी मुझे ज़रा भी याद न थी, वरना इसे औने-पौने दामों पर बेच कर इतनी मुसीबतें काहे को झेलता? ख़ैर, अब सही। गोकि अब मकान सिर्फ़ तीन ही कोस के फ़ासले पर था, फिर भी अँगूठी बेचने का पक्का इरादा कर लिया; क्योंकि बिना कुछ खा-पीकर अपनी सूरत पर की फटकार दूर किए श्रीमती जी के सामने किस तरह जा सकता था? भला वह ऐसी शकल पर कब निगाह उठाना गवारा कर सकती थीं? उन्हें हमारी मुसीबतों से क्या मतलब? यही जो उन्हें ख़्याल

होता तो आज तक वह मिलने से परहेज़ करके मुझे यों कुत्ते की मौत मारतीं ?

इतने में ही एक जवान अकड़ता हुआ उधर से निकला। दिल में समझ लिया कि आदमी है शौक़ीन और यह ज़रूर मेरी अँगूठी ख़रीद लेगा। इसलिए झट हाथ में अँगूठी लेकर मैं उसके पास गया।

मैं—यह अँगूठी बिकाऊ है। बहुत सस्ते में दे दूँगा। लेना चाहो तो ले लो।

जवान ने अँगूठी अपने हाथ में लेकर पूछा—यह किसकी है ?

मैं—मेरी है ?

उसने आव देखा न ताव, बस धड़ से एक तमाचा मेरे मुँह पर रसीद किया।

जवान—क्यों बे, यह तेरी है ? तेरे बाप ने भी ऐसी अँगूठी कभी देखी थी ? चोर कहीं का, तू पुलिस के आदमी को धोखा देता है ? जानता नहीं, मैं पुलिस का हवलदार हूँ। चल थाने पर। अब तुझे मैं कहाँ छोड़ने का ? आज ही तो बचा, चोरी करने का मज़ा पाओगे।

हाय ! बाप रे बाप ! तमाचे से ख़ाली गाल ही लाल हुए, मगर पुलिस का नाम सुनते ही मेरा सारा बदन काँप उठा, प्राण सूख गए ; क्योंकि भाई यमराज से भी मैं उतना नहीं डरता हूँ, जितना पुलिस से। कोई मुझे डरपोक भले ही कहे, मगर भाई असल बात तो यह है कि अगर मेरे सगे बाप भी पुलिस के आदमी होते तो उनसे भी मैं इसी तरह डरता, बल्कि पैदा होते ही आँख बन्द करके फिर अल्ला मियाँ के पास चल देता। क्योंकि यदि किसी वक्त अब्बा जान को कोई मामला न मिलता तो वे मुझे ही जेलख़ाने भिजवाने का इन्तज़ाम कर बैठते। और कहते कि बेटा, मैं अपनी आदत से मजबूर हूँ। क्या करूँ ? मेरे पास फाँसने के लिए हज़ारों दफ़ाएँ हैं, मगर इस वक्त कोई कम्बख़्त चालान करने के लिए नहीं मिलता। इस आड़े वक्त तुम्हीं काम आ जाओ। तुमसे बढ़कर मेरा कौन हो सकता है ? इसीलिए यह मेहरबानी तुम पर कर रहा हूँ।

मैं पुलिस का नाम सुनते ही अँगूठी छोड़-छाड़, सर पर पाँव रख कर खेतों की ओर भागा। इस मरी हुई हालत पर भी मैं भागता ही गया और डेढ़ मील तक पीछे मुड़ कर देखने का नाम न लिया। मगर सड़क छूट जाने के कारण खेतों से शहर पहुँचने का रास्ता मालूम ही न था, और उस हवलदार के मारे सड़क पर जाने की हिम्मत नहीं पड़ती थी।

बड़ी देर तक इधर-उधर भटकता रहा। आख़िर शाम हो चली। मैं बहुत घबड़ाया कि कहाँ जाऊँ, किससे राय पूछूँ। इतने में एक गाड़ीवान अपनी बैलगाड़ी खेतों में फँदाता हुआ, बैलों की पूँछ उमेठता हुआ बड़ी तेज़ी से एक मोड़ पर से सामने आया। मैंने लपक कर उससे पूछा—भाई, शहर अब कितनी दूर है ?

गाड़ीवान—आँधर हो। वह देखो घन्टाघर दिखाई देत है। बस अब कोस भर होई, मुला ए साइत बोलो मत, हमार जान साँसत में पड़ा है।

मैं—वहाँ पहुँचने का रास्ता कौन है ?

गाड़ीवान—तुरे रस्ता में आग लगे। हमरे मरे-जीए पर लाग है, अउर तू रस्ता पूछत हो। काव कही, एक ससुर बदमास लरिका हमरे गाड़ी के सामने फाट पड़ा। तौन तनी चोटाय गा है। वही सार हुआँ पड़ा हल्ला मचाए है। अब्बै गउँवा वाले सुनिहैं तो हमका मारिन डरिहैं। यही लिए हाली किए हन। कवनो जतन से यह आगे वाला नारा पार कइ लेई तौ हमरे जीव में जीव आवे और तू का तब रस्ता बताई।

मैं—अच्छा, तो भाई मुझे अपनी गाड़ी पर बैठाल ले। मैं पीछे देखता रहूँगा कि कोई आता तो नहीं है।

गाड़ीवान—भले कह्यो। अच्छा आय जाव। जैसे कोई का आवत देख्यो वइसे बतायो।

अन्धा चाहे दो आँखें। मारे थकावट के मैं योंही गिरा पड़ता था और उधर श्रीमती जी से मिलने के लिए अलग मरा जा रहा था। इसलिए गाड़ी पर बैठते ही निहाल हो गया। मैंने लम्बी तान दी और श्रीमती जी से मिलने के मनसूबे करने लगा। इसी तरह हम लोग नाले पर पहुँच गए। इतने में एकाएक बड़े ज़ोर का शोर हुआ। गाड़ीवान कूद कर भाग खड़ा हुआ, बैल बौखला कर गाड़ी लिए नाले में घुसे। मैं आठ-दस आदमियों को लाठी लिए पीछे दौड़ते देख कर गाड़ी के पेंदे में और दबक गया। मगर गाड़ी कम्बख़्त बीच नाले में पहुँच कर एक गड्ढे में जा पड़ी। और मुझे लिए-दिए भचाक से एकदम उलट गई।

(क्रमशः)
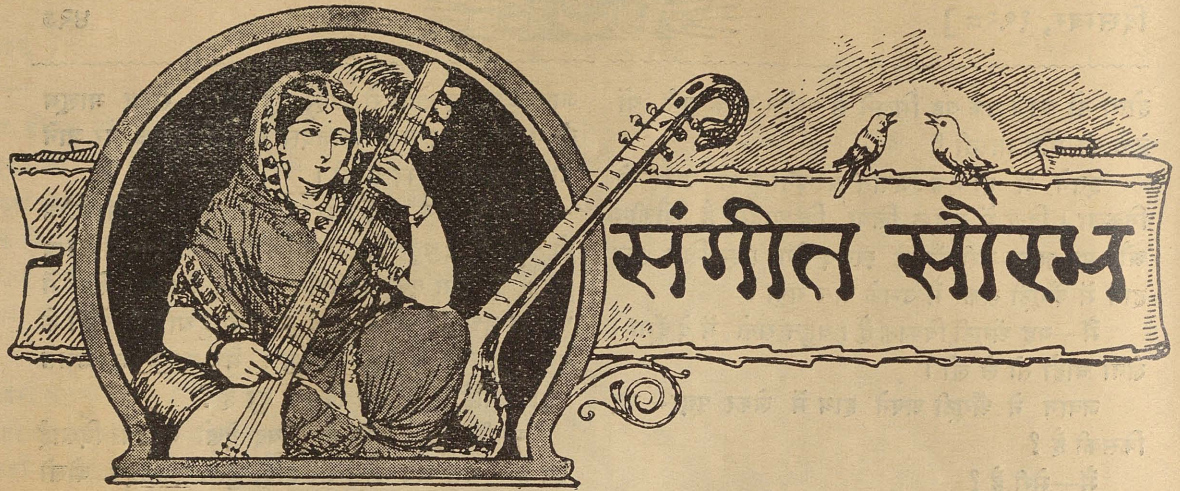
[सम्पादक—श्री० किरणकुमार मुखोपाध्याय (नीलू बाबू)]

रामकली

(त्रिताल, १६ मात्रा)

[शब्दकार तथा स्वर-लिपिकार—पण्डित केदारनाथ जी 'बेकल' बी० ए०, एल्-टी०]

बरजो री लालनवा माई,
भरन ना दे गगरिया मोको,
कौन भाँति बचाऊँ लजिया।
ढीठ लँगरवा,
सदा श्याम पनघट पर रोके,
लगावे छतियाँ 'बेकल' मनहरवा ॥

स्थायी

		०				१				×				३	
ध	प	म	प	ध	प	म	ग	म	ग	म	—	नध	—	ध	—
व	र	जो	—	—	री	ला	—	ल	न	वा	—	-मा	—	—	—
सं	—	ध	—	—	सं	न	सं	रं	सं	न	सं	—	र	र	र
ई	—	—	—	—	भ	र	न	न	दे	—	—	—	ग	ग	रि
स	—	स	न	स	—	स	—	स	ग	मग	म	प	—	ध	—
या	—	मो	—	को	—	कौ	—	न	भाँ	—	त	ब	—	चा	—
ध	—	ध	ध	प	—	प	म	प	प	प	प	म	प	नध	—
ऊँ	—	ल	जि	या	—	ढी	—	ठ	लँ	ग	र	वा	—	—	—

अन्तरा

										ध	ध	ध	न	सं	सं
										स	दा	—	श्या	—	म
सं	सं	सं	रं	रं	सं	न	—	सं	—	ध	सं	न	सं	—	र
प	न	घ	ट	प	र	रो	—	के	—	ल	गा	—	वे	—	छ
—	र	स	—	सं	न	सं	सं	रं	सं	न	संन	सं	न	ध	—
—	ति	याँ	—	बे	—	क	ल	म	न	ह	र	वा	—	—	—

राग-विवरण—भैरव ठाठ का औडव-सम्पूर्ण राग। आरोह में, म और न वर्जित, अवरोह सम्पूर्ण। र और ध कोमल। गाने वाले कभी-कभी दोनों निषादों का प्रयोग भी करते हैं। ध वादी, र संवादी, दूसरी मत से ग वादी और प संवादी। प्रातःकाल गाना चाहिए।

* * *

राग मालश्री ३ ताल

[स्वरकार तथा शब्दकार—श्री० किरणकुमार मुखोपाध्याय (नीलूबाबू)]

स्थायी—मोहन मोसे करत रार,
जाओ जी कान्हा अपने द्वार।
अन्तरा—ऐसे हो तुम नन्द के छैल,
बाट चलत मोरी रोकत गैल।
आँचल पकड़त बहियाँ न माने,
सुघर पिया करत रार॥

स्थायी

०				१				×				३			
स	ग	ग	पम (त)	प	ग	—	—	स	ग	ग	नि	—	स	—	—
मो	ह	न	मोओ	ओ	से	—	—	क	र	त	रां	—	र	—	—
ग	प	सं	नि	सं	प	—	ग	प	ग	नि	—	स	—	—	—
ज़ा	ओ	जी	कां	आ	न्हा	—	अ	प	ने	द्वां	—	र	—	—	—

अन्तरा

ग	—	ग	—	प	ग	नि	नि	सं	—	सं	सं	नि	—	सं	—
ऐ	—	से	—	हो	ओ	तु	म	नं	—	द	के	छै	—	ल	—
नि	—	नि	नि	प	प	ग	प	सं	—	नि	नि	प	ग	ग	—
बा	—	ट	च	ल	त	मो	री	रो	—	क	त	ग	ए	ल	—
सं	सं	सं	नि	नि	प	प	ग	—	प	प	ग	—	स	—	—
आँ	च	ल	प	क	ड़	त	वहि	—	या	न	मा	—	ने	—	—
स	ग	ग	प	म॑	प	ग	—	स	ग	ग	नि	—	स	—	—
सु	घ	र	पि	इ	इ	या	—	क	र	त	रां	—	र	—	—

नोटः—ओढव राग ध, रे वर्जित, म तीव्र, बाक़ी शुद्ध स्वर।

❦ ❦ ❦

नौकर—मुझे आपके यहाँ काम करते हुए दो साल होगए, मैं दो आदमियों का काम करता रहा हूँ, अब आप मेरी तनख़्वाह बढ़ाइए।

मालिक—तनख़्वाह तो मैं बढ़ा नहीं सकता; पर जिन दो आदमियों का तुम काम करते रहे हो, उनके नाम बता दो तो मैं उन्हें खड़े-खड़े निकाल सकता हूँ।

***

"तुम्हें मालूम है कि कल एक जहाज़ डूबने की ख़बर आई है?"

"मालूम क्या, मैं ही तो एक आदमी हूँ, जो बचा हूँ।"

"कैसे?"

"मैं उस जहाज़ पर जाने वाला था, पर देर हो जाने के कारण मुझे वह नहीं मिला।

***

किराएदार—देखिए जनाब, रात भर कमरे की छत टपकती रही, तमाम कपड़े भीग गए।"

मकानदार—छत टपकती रही! यह कैसे? यह छत कभी नहीं टपक सकती।

किराएदार—तो शायद अपनी दुर्दशा पर रोती रही हो।

"कल तुमने जो दूध दिया था, वह दूध नहीं, पानी था।"

दूधवाला—पानी होता तो सफ़ेदी कैसे होती, पानी में कहीं सफ़ेदी होती है?

***

दो बहरे रास्ते में मिले। एक ने कहा—कहो, क्या घूमने जा रहे हो?

दूसरा बहरा—नहीं, घूमने जा रहा हूँ।

पहला बहरा—अच्छा, मैं समझा शायद घूमने जा रहे हो।

***

पुत्र—पिता जी, कल मैंने एक स्वप्न देखा। मैंने देखा कि मेरा विवाह हो रहा है। अकस्मात मैं उठकर खड़ा होगया और मैंने कहा—मैं विवाह नहीं करूँगा, फिर मैंने विवाह नहीं किया। इसका क्या अर्थ है।

पिता—इसका अर्थ यह है कि सोते में तुम्हारी बुद्धि जागते की अपेक्षा अधिक ठीक रहती है।

***

मोहन—अरे भाई सोहन, हमने सुना है कि तुम्हारे उस दिन कोड़े लगे थे।

सोहन—सच है। मुझे तो उसी समय मालूम हो गया था।

दिल की आग उर्फ़ दिल-जले की आह

[लेखक—'पागल']

दूसरा खण्ड

(सितम्बर से आगे)

अलिन्द

हने को मैं 'अलिन्द' नाम का बड़ा ही नामी चित्रकार कहा जाता हूँ, परन्तु मैंने बरसों से दुनिया त्याग रक्खा है। संसार मुझे काटने को दौड़ता है। इसीलिए उससे छिप कर एकान्त में केवल एक ही नाम को जपता हुआ, एक ही ध्यान में विलीन होकर, एक ही आशा के आधार पर अपने सूखे जीवन की घड़ियाँ गिन रहा हूँ। इस ध्यान में मुझे कितना सुख और कितनी यन्त्रणा है, उफ़ ! कह नहीं सकता। पत्थर की मूर्ति पुजते-पुजते देवी बन जाती है, परन्तु मेरे हृदय की हाड़-मांस की बनी हुई देवी भी मेरी पूजा से हाय ! एकदम पत्थर हो गई। भाग्य की यह विचित्र लीला ! इसीलिए तो कितनी ही बार मैंने उस नाम को भुलाने, उस ध्यान को त्यागने और उस आशा को मिटाने के लिए सैकड़ों ही उपाय किए। फिर भी मेरे रोम-रोम से वही नाम बज रहा है। मेरी आँखों के सामने वही मूर्ति खड़ी है। मेरे जीवन को वही आशा थामे हुए है। उफ़ ! मैं मिट गया, परन्तु मेरी आशा न मिटी। अन्त में जब मैं आत्मवेदना से पागल होकर मृत्यु की शरण में जा रहा था, तब ऐसे ही सङ्कट की घड़ी में डॉक्टर सन्तोषानन्द ने मेरी बाँह पकड़ी।

न जाने डॉक्टर की दृष्टि में कौन सा जादू था कि जिस समय से मुझ पर पड़ी, मेरा हृदय उसी दम से आप से आप उनकी ओर सरकने लगा। मुझे मनुष्यों से घृणा थी, फिर भी मैं उनसे भाग नहीं पाता था। लाख अपने को रोकता था, तो भी मैं उनकी सङ्गत के लिए व्याकुल हो उठता था। मैं अपनी वेदना को उनके सम्मुख जितना ही दबाता था, उतने ही वेग से उभर कर वह उन पर प्रकट हो जाती थी। तभी तो वह रेल में मुझसे मिलते ही मेरा रोग पहचान गए थे, और इसी कारण मैं उनके ताँगे पर से भागा था कि कहीं मैं आवेश में आकर अपना सारा दुखड़ा उगल न बैठूँ। क्योंकि उनकी मर्मभेदी बातों के आगे मैं अपने ऊपर विश्वास नहीं कर पाता था। अब भाग्य ने मुझे फिर उन्हीं के हाथों में डाल दिया, जिनसे मन तो दिल खोल के मिलना चाहता था, परन्तु मैं बदहवास होकर भागता था। इसीलिए आज भी जैसे ही मेरी व्यथा मेरे हृदय-पट को खोल कर बाहर निकली पड़ती थी, वैसे ही मैं व्याकुल होकर उनके यहाँ से फिर भाग खड़ा हुआ।

उस समय मैं अपने पागलपन में इतना चूर था कि मैंने डॉक्टर सन्तोषानन्द के रोकने-टोकने के आग्रह या सभ्यता के आदेशों की कुछ भी परवा न की। उन्होंने मेरा हाथ पकड़ कर मुझे बैठाना चाहा था, परन्तु मैंने उन्हें ढकेल दिया और सीधा अपने मकान की ओर लपका। रास्ते में यह मुझे कुछ भी ख़बर न थी कि मेरी क्या दशा है। लोग मुझे देख कर क्या कहते होंगे या मेरे आगे-पीछे कौन आता-जाता है। मैं तो अपनी इष्ट देवी की याद उभर उठने के कारण उसकी धुन में अन्धा हो रहा था। उसके दर्शनों के लिए व्याकुल था, छटपटा रहा था, अधीर होकर तड़प रहा था।

अपने मकान में घुसते ही मैंने अपनी बैठक खोली। यही मेरा चित्र बनाने का कमरा (Studio) था। वहाँ सैकड़ों ही चित्र बेतरतीबी से पड़े थे। बहुत से दीवारों पर टँगे थे। मैंने किसी पर ध्यान नहीं दिया। मैंने अपनी बड़ी सी अलमारी खिसकाई, जिसका पिछला भाग दीवाल से बिलकुल मिला हुआ था। उसका खिसकाना मेरे सामर्थ्य से बाहर था। परन्तु जोश में न जाने मुझमें कहाँ से

अन्तरा

ग	—	ग	—	प	ग	नि	नि	सं	—	सं	सं	नि	—	सं	—
ऐ	—	से	—	हो	ओ	तु	म	नं	—	द	के	छै	—	ल	—
नि	—	नि	नि	प	प	ग	प	सं	—	नि	नि	प	ग	ग	—
बा	—	ट	च	ल	त	मो	री	रो	—	क	त	ग	ए	ल	—
सं	सं	सं	नि	नि	प	प	ग	—	प	प	ग	—	स	—	—
आँ	च	ल	प	क	ड़	त	वहि	—	या	न	मा	—	ने	—	—
स	ग	ग	प	म (त)	प	ग	—	स	ग	ग	नि̥	—	स	—	—
सु	घ	र	पि	इ	इ	या	—	क	र	त	रा	—	र	—	—

नोट :—ओढव राग ध, रे वर्जित, म तीव्र, बाक़ी शुद्ध स्वर।

❦　❦　❦

नौकर—मुझे आपके यहाँ काम करते हुए दो साल होगए, मैं दो आदमियों का काम करता रहा हूँ, अब आप मेरी तनख़्वाह बढ़ाइए।

मालिक—तनख़्वाह तो मैं बढ़ा नहीं सकता; पर जिन दो आदमियों का तुम काम करते रहे हो, उनके नाम बता दो तो मैं उन्हें खड़े-खड़े निकाल सकता हूँ।

⁂

"तुम्हें मालूम है कि कल एक जहाज़ डूबने की ख़बर आई है?"

"मालूम क्या, मैं ही तो एक आदमी हूँ, जो बचा हूँ।"

"कैसे?"

"मैं उस जहाज़ पर जाने वाला था, पर देर हो जाने के कारण मुझे वह नहीं मिला।

⁂

किराएदार—देखिए जनाब, रात भर कमरे की छत टपकती रही, तमाम कपड़े भीग गए।"

मकानदार—छत टपकती रही! यह कैसे? यह छत कभी नहीं टपक सकती।

किराएदार—तो शायद अपनी दुर्दशा पर रोती रही हो।

"कल तुमने जो दूध दिया था, वह दूध नहीं, पानी था।"

दूधवाला—पानी होता तो सफ़ेदी कैसे होती, पानी में कहीं सफ़ेदी होती है?

⁂

दो बहरे रास्ते में मिले। एक ने कहा—कहो, क्या घूमने जा रहे हो?

दूसरा बहरा—नहीं, घूमने जा रहा हूँ।

पहला बहरा—अच्छा, मैं समझा शायद घूमने जा रहे हो।

⁂

पुत्र—पिता जी, कल मैंने एक स्वप्न देखा। मैंने देखा कि मेरा विवाह हो रहा है। अकस्मात मैं उठकर खड़ा होगया और मैंने कहा—मैं विवाह नहीं करूँगा, फिर मैंने विवाह नहीं किया। इसका क्या अर्थ है।

पिता—इसका अर्थ यह है कि सोते में तुम्हारी बुद्धि जागते की अपेक्षा अधिक ठीक रहती है।

⁂

मोहन—अरे भाई सोहन, हमने सुना है कि तुम्हारे उस दिन कोड़े लगे थे।

सोहन—सच है। मुझे तो उसी समय मालूम हो गया था।

दिल की आग उर्फ़ दिल-जले की आह

[लेखक—'पागल']

दूसरा खण्ड

(सितम्बर से आगे)

अलिन्द

कहने को मैं 'अलिन्द' नाम का बड़ा ही नामी चित्रकार कहा जाता हूँ, परन्तु मैंने बरसों से दुनिया त्याग रक्खा है। संसार मुझे काटने को दौड़ता है। इसीलिए उससे छिप कर एकान्त में केवल एक ही नाम को जपता हुआ, एक ही ध्यान में विलीन होकर, एक ही आशा के आधार पर अपने सूखे जीवन की घड़ियाँ गिन रहा हूँ। इस ध्यान में मुझे कितना सुख और कितनी यन्त्रणा है, उफ़! कह नहीं सकता। पत्थर की मूर्ति पुजते-पुजते देवी बन जाती है, परन्तु मेरे हृदय की हाड़-मांस की बनी हुई देवी भी मेरी पूजा से हाय! एकदम पत्थर हो गई। भाग्य की यह विचित्र लीला! इसीलिए तो कितनी ही बार मैंने उस नाम को भुलाने, उस ध्यान को त्यागने और उस आशा को मिटाने के लिए सैकड़ों ही उपाय किए। फिर भी मेरे रोम-रोम से वही नाम बज रहा है। मेरी आँखों के सामने वही मूर्ति खड़ी है। मेरे जीवन को वही आशा थामे हुए है। उफ़! मैं मिट गया, परन्तु मेरी आशा न मिटी। अन्त में जब मैं आत्मवेदना से पागल होकर मृत्यु की शरण में जा रहा था, तब ऐसे ही सङ्कट की घड़ी में डॉक्टर सन्तोषानन्द ने मेरी बाँह पकड़ी।

न जाने डॉक्टर की दृष्टि में कौन सा जादू था कि जिस समय से मुझ पर पड़ी, मेरा हृदय उसी दम से आप से आप उनकी ओर सरकने लगा। मुझे मनुष्यों से घृणा थी, फिर भी मैं उनसे भाग नहीं पाता था। लाख अपने को रोकता था, तो भी मैं उनकी सङ्गत के लिए व्याकुल हो उठता था। मैं अपनी वेदना को उनके सम्मुख जितना ही दबाता था, उतने ही वेग से उभर कर वह उन पर प्रकट हो जाती थी। तभी तो वह रेल में मुझसे मिलते ही मेरा रोग पहचान गए थे, और इसी कारण मैं उनके ताँगे पर से भागा था कि कहीं मैं आवेश में आकर अपना सारा दुखड़ा उगल न बैठूँ। क्योंकि उनकी मर्मभेदी बातों के आगे मैं अपने ऊपर विश्वास नहीं कर पाता था। अब भाग्य ने मुझे फिर उन्हीं के हाथों में डाल दिया, जिनसे मन तो दिल खोल के मिलना चाहता था, परन्तु मैं बदहवास होकर भागता था। इसीलिए आज भी जैसे ही मेरी व्यथा मेरे हृदय-पट को खोल कर बाहर निकली पड़ती थी, वैसे ही मैं व्याकुल होकर उनके यहाँ से फिर भाग खड़ा हुआ।

उस समय मैं अपने पागलपन में इतना चूर था कि मैंने डॉक्टर सन्तोषानन्द के रोकने-टोकने के आग्रह या सभ्यता के आदेशों की कुछ भी परवा न की। उन्होंने मेरा हाथ पकड़ कर मुझे बैठाना चाहा था, परन्तु मैंने उन्हें ढकेल दिया और सीधा अपने मकान की ओर लपका। रास्ते में यह मुझे कुछ भी ख़बर न थी कि मेरी क्या दशा है। लोग मुझे देख कर क्या कहते होंगे या मेरे आगे-पीछे कौन आता-जाता है। मैं तो अपनी इष्ट देवी की याद उभर उठने के कारण उसकी धुन में अन्धा हो रहा था। उसके दर्शनों के लिए व्याकुल था, छटपटा रहा था, अधीर होकर तड़प रहा था।

अपने मकान में घुसते ही मैंने अपनी बैठक खोली। यही मेरा चित्र बनाने का कमरा (Studio) था। वहाँ सैकड़ों ही चित्र बेतरतीबी से पड़े थे। बहुत से दीवारों पर टँगे थे। मैंने किसी पर ध्यान नहीं दिया। मैंने अपनी बड़ी सी अलमारी खिसकाई, जिसका पिछला भाग दीवाल से बिलकुल मिला हुआ था। उसका खिसकाना मेरे सामर्थ्य से बाहर था। परन्तु जोश में न जाने मुझमें कहाँ से

सौगुनी शक्ति आ जाती थी कि इसको मैं खिसका कर इसके पिछले हिस्से को अपने सामने कर लेता था। इस दफ़े भी वही किया। उसके इस तरफ़ आदमी के डील के बराबर एक तसवीर शीशे में जड़ी हुई थी। उसे देखते ही जिस तरह से कई दिनों का प्यासा पानी पर टूट पड़ता है, उसी तरह मैं उस पर झपटा और बेतहाशा उसको चूमने लगा।

इतने में किसी ने मेरे कन्धे पर हाथ रख कर कहा—अरे भलेमानुष, इतने उतावले न हो। देखो, शीशा टूट जायगा।

मैंने घूम कर देखा कि सन्तोषानन्द मुस्करा रहे हैं। बस, वहीं मैं लज्जा और पश्चात्ताप से गड़ गया। परन्तु दूसरे ही क्षण मेरे सर से पैर तक आग लग गई और मेरी आँखों से अङ्गारे बरसने लगे। मैंने घुड़क कर उनसे पूछा—किसी के कमरे में चोर की तरह बिना इत्तिला कराए घुस आना भला कौन सी सभ्यता है?

सन्तोषानन्द—जहाँ दो दिल आपस में घुल-मिल जाते हैं, वहाँ परदेदारी नहीं होती भाई!

मैं—मैं यह सब कुछ नहीं जानता। आपको इस तरह मेरे पीछे आने की क्या आवश्यकता थी?

सन्तोषानन्द—रक्षा करने वाले का लक्ष्य रक्षा करना होता है, चाहे जिस उपाय से हो!

मैं—मेरी रक्षा करने आए थे? क्यों? क्या तुम समझते हो कि मैं कोई पाप करने आया था? मैं क्या कोई निन्दित और घृणित कर्म कर रहा था? उफ़! तुम भी मुझे बुरा समझने लगे? दुनिया मुझ पर थूकती है तब तुम क्यों न थूकोगे? हाय, मैं इसी योग्य हूँ। भलाई-बुराई सब कुछ समझता हूँ; फिर भी मैं मूर्ख हूँ, महा-मूर्ख हूँ। थूको-थूको, जितना जी चाहे मुझ पर थूको।

इतना कहते ही मैं खड़ा न रह सका। मैं अपना सर पकड़ कर वहीं ज़मीन पर बैठ गया। सन्तोषानन्द ने मेरा हाथ थाम कर बड़ी मधुरता से कहा—मैं तुम्हें बुरा समझूँगा? राम! राम! तुम्हें हो क्या गया है, जो तुम ऐसा विचार करते हो? मैं तो तुम्हारा मकान देखने के लिए तुम्हारे पीछे-पीछे आया था। जब तुम अपने घर में घुसने लगे उस समय तुम्हारी सूरत की हालत देखकर मैं डर गया। तुम ऐसे उन्मत्त हो रहे थे कि जो न कर डालते वही थोड़ा था। इसलिए जैसे ही तुमने बैठक खोली वैसे ही तुम्हारे पास पहुँच गया। मगर तुम अपनी बदहवासी में मुझे देख न सके। ऐसी हालत में तुम्हें अकेले छोड़ना किसी तरह भी मुनासिब न था। तब मैं क्या करता, तुम्हीं सोचो।

मैं—फिर भी पुकार कर तुम्हें यहाँ आना चाहिए था।

सन्तोषानन्द—तब मुझे इस चित्र की दिव्य सुन्दरता और तुम्हारे अनमोल भावों की अलौकिक बहार कैसे देखने को नसीब होती?

मेरा क्रोध पानी-पानी हो गया। मेरी लज्जा दूर भाग खड़ी हुई। मैंने उठ कर बड़ी उतावली से पूछा—हैं न यह सुन्दरता की खान?

सन्तोषानन्द—क्यों नहीं, जब तुमने बनाई ही ऐसी है।

मैं—आह! मैंने कहाँ बनाई? मैं बना ही न सका। उसके लावण्य के एक अंश भी तो इस चित्र में नहीं ला सका। ईश्वर की रची हुई दिव्य सुन्दरता की सच्ची तसवीर उतारने का भला मनुष्य में सामर्थ्य कहाँ?

सन्तोषानन्द—फिर भी मनुष्य अपनी मानसिक सुन्दरता की छटा कहाँ तक दिखला सकता है, तुमने इसमें पूरे तौर पर झलका दिया है। जिस तरह सूर्य की ज्योति से चाँद की आभा है, उसी तरह तुम्हारे सच्चे अनुराग से यह छवि दमक रही है। वाह! वाह! बलिहारी है तुम्हारे चित्रकारी की। क्यों न हो। तभी तो दुनिया तुम्हें पूजती है।

मैं—अरे! डॉक्टर, मेरी चित्रकारी को न देखो। उसको देखो जो मेरे जीवन का आधार है, मेरे सौन्दर्य का आदर्श है, मेरी कला का लक्ष्य है, मेरी कल्पना की सीमा है, मेरी पूजा की मूर्ति है, मेरी आशा का उद्देश है और मेरी सत्यानाशी का वृत्तान्त है। देखो, कितनी सुन्दरी है।

सन्तोषानन्द—यह तुम देखो। मैं तो केवल इसमें तुम्हारे हृदय की सुन्दरता, तुम्हारे अनुराग की थाह और तुम्हारी कला की कुशलता देख रहा हूँ।

मैं—अन्धे हो।

डॉक्टर सन्तोषानन्द बिना कुछ बोले-चाले रुष्ट होकर चले गए।

(२)

डॉक्टर सन्तोषानन्द के एकाएक बिगड़ जाने पर मुझे बाद को बहुत अफ़सोस हुआ ; क्योंकि मैंने ही उन्हें अन्धा कहके उनका अपमान किया। यद्यपि जिसकी प्रशंसा मैं सुनना चाहता था, उसकी वह तारीफ़ न कर सके, फिर भी उन्होंने उसकी कोई बुराई भी नहीं की थी, बल्कि उलटे उन्होंने मेरी कला को सराहा था। इसके लिए वह धन्यवाद के भागी थे। मगर मैं अपनी नादानी में आकर उन्हें झिड़क बैठा। संसार में मुझे एक समान-हृदय, मेरे भावों को समझने और मेरी व्यथा पर सच्चा आँसू बहाने वाला मिला भी तो मैंने उसका इस तरह अनादर किया ; अफ़सोस !

उस समय से मुझे बराबर यही सोच रहा कि किस तरह मैं अपने अपराध को धोऊँ—किस युक्ति से मैं उन्हें फिर मना लूँ ; क्योंकि हँसी उड़ाने वालों और स्वार्थियों से भरे इस विश्वासघाती संसार में सच्ची सहानुभूति देने वाला वह अनमोल और दुर्लभ रत्न है, जो भाग्य से पाकर ठुकरा देना अपने ही गले पर छुरी चलाना है। मैं तो मर ही चुका था। उन्होंने मेरी मरी हुई आशा-लता को अपने आँसुओं से सींच कर उसमें एक नया जीवन डाल रक्खा था। उनका सहारा टूटते ही अब इसकी क्या दशा होगी ? यह पहाड़-से दिन किस तरह कटेंगे ? मैं किसके आगे अपना दुखड़ा रोऊँगा ? उफ़ ! मैं अकुला कर कुत्ते की मौत मरूँगा। कई दिन तक मैं इसी चिन्ता में पड़ा रहा। अन्त में जब मुझसे न रहा गया, तब मैं एक दिन स्वयं ही उनके पास गया।

वह मुझे देख कर मुस्कराए। मगर इस तरह मिले, मानो उनका मन मुझसे कभी मलीन ही नहीं हुआ था, और न उन्होंने किसी प्रकार से मेरी उस दिन की असभ्यता का ही कुछ उल्लेख किया। उन्होंने बातों-बातों में पूछा—क्यों अलिन्द, मेरे लिए भी क्या तुम एक चित्र बना दोगे ?

मैं तो उन्हें अपने पश्चात्ताप और अनुग्रह से ख़ुश करने के लिए उनका मुँह ही निहार रहा था। भला ऐसा सुयोग्य अवसर पाकर कब चूक सकता था ? झट बोल उठा—एक नहीं, जितने कहिए उतने।

सन्तोषानन्द—नहीं, मुझे एक की ही ज़रूरत है।

मैं—जैसी मर्ज़ी। मगर कब ?

सन्तोषानन्द—जब ज़रूरत होगी। इस समय तो तुमसे वचन ले रहा हूँ। बोलो पक्का वादा करते हो ?

मैं—हाँ भाई।

सन्तोषानन्द—बाद को मुकुरोगे तो नहीं ?

मैं—हर्गिज़ नहीं।

सन्तोषानन्द—अच्छा, तो इसे याद रखना।

मैं—मुझे कोई बात भूलती नहीं है। उस दिन की भी बात मुझे याद है।

सन्तोषानन्द—किस दिन की ?

मैं—जिस दिन मेरी मूर्खता पर आप रूठ कर मेरे यहाँ से चले आए थे।

उन्होंने हँस कर जवाब दिया—वह तो मैंने दिल्लगी की थी।

मैं—वाह भाई, अच्छी दिल्लगी की ! मैं तो पछ-ताते-पछताते मर मिटा।

सन्तोषानन्द—हाँ, उस वक़्त इसी की ज़रूरत थी। क्योंकि तुम्हारे पागलपन को शान्त करने की इसके सिवाय कोई दूसरी युक्ति ही न थी।

मैंने कुछ उत्तेजित होकर पूछा—आप क्या इस वक़्त भी दिल्लगी कर रहे हैं ?

सन्तोषानन्द—भाई गर्म न हो। मैं तुम्हारा दुश्मन नहीं, बल्कि सच्चा हितैषी हूँ। मुझे तुम्हारी जान प्यारी है। जिस तरह भी बन पड़ेगा, उसकी सलामती चाहूँगा। उस दिन तुम पागलों से भी बदतर हो रहे थे। अगर तुम्हारा पागलपन और भी बढ़ने के लिए छोड़ दिया जाता या उस चित्र के सम्बन्ध में कुछ पूछ-ताछ करके उत्तेजित किया जाता तो न जाने वह क्या अनर्थ न कर डालता। तुम चित्र देख रहे थे और मैं तुम्हें देख रहा था। तुम भावों के आवेश में उन्मत्त हो रहे थे और मैं तुम्हें शान्त करने की तरकीब सोच रहा था। यदि मैं उस समय तुम पर पश्चात्ताप का बोझ न लाद देता तो अब तक तुम किसी की याद में तड़पते-तड़पते जान दे डालते या सड़कों पर ख़ाक उड़ाते फिरते। मेरे पास आकर इस तरह भले मानसों की सी बातें आज हर्गिज़ नहीं कर सकते थे।

मैं—बहुत सही कहते हो डॉक्टर। तुम मनोविज्ञान के साक्षात् अवतार हो। सचमुच मेरी ही भूल थी। माफ़ करो भाई।

कुछ देर इधर-उधर की बातें करके उन्होंने पूछा—चित्रकारी बड़ी अच्छी कला है। मैं भी सीखना चाहता हूँ। मुझे सिखा दोगे?

मैं—अरे भाई, तुम्हें सीखने की क्या ज़रूरत? तुम तो योंही एक बड़े भारी चित्रकार हो।

सन्तोषानन्द—मैं?

मैं—बेशक! तुम लेखनी से चित्र खींचते हो, मैं तूलिका से। मैं केवल चेहरे पर के भाव अङ्कित करता हूँ, मगर तुम तो हृदय के भीतर घुस कर वहाँ से भाव निकाल लाते हो। तुमसे बढ़ कर चित्रकार कौन हो सकता है?

सन्तोषानन्द—क्यों बना रहे हो?

मैं—नहीं, सच कहता हूँ। तुममें और चित्रकार में बस इतना ही भेद है, जितना कवि और गवैया में होता है। क्योंकि कवि शब्दों से करामात दिखाता है तो गाने वाला ध्वनि से। इसलिए भाई तुम चित्रकार तो हो ही?

सन्तोषानन्द—यह बातें रहने दो। बताओ, सिखाओगे या नहीं?

मैं—सिखाने को मैं तैयार हूँ। मगर जो चीज़ लड़कपन से सीखी जाती है, उसकी बात ही कुछ और होती है। तभी तो देखो लोहार का लड़का जितना अच्छा अपना काम कर सकता है, उतना कोई दूसरे पेशे वाला लोहारी सीख कर नहीं कर सकता।

सन्तोषानन्द—हाँ, यह तो मानना ही पड़ेगा। इसी तरह मालूम होता है कि तुम्हारे ख़ानदान में भी यह कला अवश्य रही होगी, तभी तो तुम चित्रकार हुए।

मैं—नहीं, मेरे पुरखे तो व्यापारी थे। मेरे पिता जी भी गुजरात में व्यापार करते थे।

सन्तोषानन्द—तब तुम किस तरह चित्रकार हुए? तुम पर तो वह ख़ान्दानी बात लागू नहीं होती।

मैं—हाँ, बहुत से पेशे ऐसे हैं जिनके गुर को समझना लड़कपन की बुद्धि के बाहर होता है। जैसे डॉक्टरी, वकालत इत्यादि। इसी तरह मेरे लिए व्यापार था। हर आदमी को लड़कपन में कोई न कोई शौक़ होता है। चाहे वह उसके प्राकृतिक स्वभाव से पैदा हो जाय या अवस्था की अनुकूलता से या उसकी ख़ान्दानी बात होने के कारण। जो बात ख़ान्दान में होती चली आती है वह लड़कपन की समझ से बाहर नहीं होती, वह उस वंश के बालकों की रुचि को जल्दी अपनी ओर खींच लेती है; क्योंकि वे आरम्भ से ही देखते-देखते उसे समझने लगते हैं। इसी तरह अन्य कारणों से भी बाल्यावस्था में कोई न कोई शौक़ पैदा हो जाता है। अस्तु—

कारण से कोई बहस नहीं है, देखना चाहिए उस रुचि को। यदि वह किसी कला से सरोकार रखती है और वह बराबर जारी रह गई तो वह उस कला की निपुणता की सीमा की ओर आप से आप बढ़ती जाती है। इसीलिए विदेश कलाओं का भण्डार हो रहा है; क्योंकि वहाँ शिक्षा का मुख्य अभिप्राय यही है कि बालकों की रुचि को समझना और उसी के अनुकूल शिक्षा देना, और यहाँ शिक्षा का आदर्श है केवल डिग्रियाँ लेना। इसीलिए हमारे युवक निकम्मे होकर रह जाते हैं—कुछ भी नहीं कर सकते। यद्यपि मेरे वंश में चित्रकारी की कला नहीं थी, तथापि लड़कपन ही में मेरी रुचि इसकी ओर झुक गई थी; क्योंकि ईश्वर ने मेरी प्रकृति में सौन्दर्य-उपासना दे रक्खी थी, जिसके कारण मैं छुटपन में ही फूलों की सुन्दरता पर मुग्ध होकर उन्हें तोड़ लेता था। सुन्दर चित्रों को पाकर घण्टों निहारा करता था, और उन्हें ख़रीद लेने के लिए सौ-सौ हठ करता था। पिता जी का चित्र ख़रीदते-ख़रीदते जब नाक में दम हो गया, तब उन्होंने अपने व्यापार में चित्रों को भी स्थान दिया। फिर क्या था, तब मैं मनमाने अच्छे-अच्छे चित्रों को चुन कर ले लेता था, और रातोंदिन बस उन्हीं को देखता था। इस आदत ने मुझे जीती-जागती तसवीरों पर भी मुग्ध करना सिखा दिया। परन्तु वह चलती-फिरती तसवीरें न ख़रीदी जा सकती थीं और न फूलों की तरह तोड़ी जा सकती थीं। तब मुझे उनके चित्र स्वयं खींचने का चस्का पड़ा; क्योंकि अगर असल को नहीं अपना सकता तो उनकी नक़ल से मन को सन्तोष दे लूँगा। इसीलिए उसी समय से मैं टेढ़ा-मेढ़ा चित्र खींचने का अभ्यास

करने लगा। इसकी लत मुझमें इतनी बढ़ गई कि जो कुछ भी सामने पाता था, मैं उसी की तसवीर खींचने लगता था। यहाँ तक कि कुछ ही दिनों में मेरा अभ्यास इतना बढ़ गया कि आदमी को सामने बिठा कर उसकी सच्ची तसवीर खींच लेता था। इसी के फेर में पढ़ना-लिखना भी छूट गया। क्योंकि स्कूल में जब मास्टर सवाल लिखाते थे, तब मैं अपनी कॉपी में उनकी सूरत बनाता था। कितनी ही बार मैं इसके लिए मारा गया, मगर यह लत न छूटी। इसी तरह मैं चित्रकार होगया। इसलिए डॉक्टर, जिस कला को तुम अपना चुके हो उसी के पीछे पड़े रहो! तुम एक दिन मुझसे भी बढ़कर ख्याति प्राप्त करोगे। नाहक़ चित्रकारी के फेर में पड़ कर अपना समय नष्ट न करो। क्योंकि सीखने को तो बहुत-कुछ उसे सीख जाओगे, परन्तु वह बात नहीं आ सकती, जो तुम लड़कपन से सीख कर उसमें पैदा कर सकते।

सन्तोषानन्द—भाई अलिन्द, तुम्हारा कहना बहुत ही सच और उपदेशदायक है। मैं तुम्हारी बुद्धि की जितनी भी प्रशंसा करूँ, थोड़ी है। तुम केवल अनुभवी ही नहीं, बल्कि एक बेढब ज्ञानी भी हो। तुमसे ऐसी ही बातें सुनने की आशा रखता हूँ। मुझे चित्रकारी सीखने की इच्छा नहीं है। मैंने तो केवल तुम्हारी बातें जानने के लिए इसका इस ढङ्ग से प्रसङ्ग उठाया था, क्योंकि अभी तुम्हारी मानसिक दशा पर भरोसा नहीं कर सकता। तुम्हारे उद्भ्रान्त-चित्त होने के कारण तुम्हारे सम्बन्ध में कोई बात बेधड़क पूछना तुम्हारे लिए असहनीय होगा। इसीलिए फूँक-फूँक कर क़दम रखता हूँ। मगर हाँ, एक बात समझ में नहीं आती कि तुम्हारी तरह बहुतों ने लड़कपन से इस कला को सीखा होगा, मगर तुम कैसे सभों के सिरमौर बन गए। तुम्हारी तूलिका में कहाँ से इतनी अतुल सजीवता और सुन्दरता फट पड़ी, जिसकी गर्द तक कोई भी चित्रकार छू नहीं पाता।

मैंने एक गहरी साँस लेकर उत्तर दिया—बस, गुरु के प्रताप से।

सन्तोषानन्द—कौन गुरु?

मैं—वही, जिसका चित्र तुम मेरी अलमारी के पीछे जड़ा हुआ देख चुके हो। वही, जिसे मैं हर साइत पूजता हूँ।

सन्तोषानन्द—अरे! वह तो किसी बालिका की तसवीर है।

मैं—क्या बालिका गुरु नहीं हो सकती? क्या मनुष्य किसी बच्चे से शिक्षा ग्रहण नहीं कर सकता? हाय! उसने तो मुझे ऐसी शिक्षा दी है कि उफ़! × × ×

मैं आगे कुछ न बोल सका। मेरा गला रुँध गया और मेरी आँखें डबडबा आईं।

(क्रमशः)

❦ ❦ ❦

पुत्र—पिता जी, आप जो मेरे लिए हवाई बन्दूक़ लाए थे, वह कहाँ से लाए थे?

पिता—याद नहीं कि कहाँ से लाया था।

पुत्र—और वह गेंद?

पिता—वह भी याद नहीं कि किस दूकान से लाया था।

पुत्र—पिता जी, आपको कोई बात याद नहीं रहती। आप थोड़े दिन मेरे मास्टर साहब से पढ़ लीजिए, तो फिर आपको याद रहने लगे।

डॉक्टर (घायल से) तुम अच्छे तो हो जाओगे, पर काम करने योग्य नहीं रहोगे।

आलसी घायल—यह तो बड़ा शुभ समाचार है।

*
**

"आज मैंने एक बड़ी सुन्दर स्त्री देखी।"

"उसकी सूरती-शक्ल कैसी थी?"

"रेशमी साड़ी और गुलाबी क़मीज़ पहने थी।"
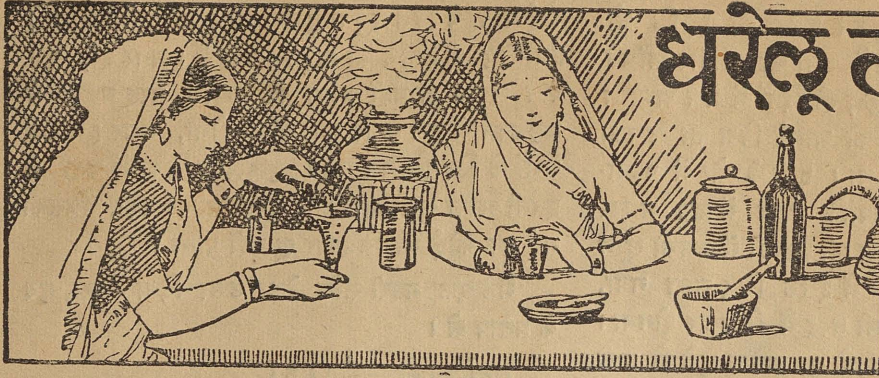
गर्भाधान के लिए

शिवलिङ्गी बीज ६ माशे और शङ्खपुष्पी की जड़ दो तोला, दोनों का चूर्ण बना ले। ५ माशे की मात्रा में सुबह-शाम धारोष्ण दूध के साथ ऋतुमती स्त्री चौथे दिन से ३ दिन तक सेवन करे, अवश्य गर्भाधान होगा।

दूसरी दवा

शिवलिङ्गी के बीज ६ माशे, श्वेत कटेरी की जड़ ५ तोले, असगन्ध ५ तोले, सफ़ेद दूब ५ तोले, इन सबका चूर्ण बना ले और १३ माशे चूर्ण ऋतुमती स्त्री चतुर्थ दिन से गाय के दूध के साथ सेवन करे तो गर्भाधान होता है।

तीसरी दवा

शिवलिङ्गी के बीज ७ नग और अनबिधे मोती ३ नग रजोस्नान के बाद स्त्री साबित निगल जाय और ऊपर से गाय के दूध में बनी चावल की खीर खावे। इसी प्रकार तीन दिन प्रातःकाल खाकर गर्भाधान-संस्कार करे तो अवश्य सन्तान प्राप्त हो।

नोट—उपरोक्त तीनों प्रयोगों से यदि प्रथम मास में लाभ न हो, तो तीन मास तक लगातार प्रति मास में तीन दिन सेवन करना चाहिए।

* * *

दाढ़ का दर्द

जलभाँगरे का रस कान में डालने से दाढ़ का दर्द तुरन्त दूर हो जाता है।

* * *

आँख का दर्द

अपामार्ग (लटजीरा) की जड़ १ तोला, सेंधा नमक ४ रत्ती, शहद १ तोला, सबको ताँबे के पात्र में इतना रगड़े कि काजल की भाँति हो जाय। इसके लगाने से आँखों की सब प्रकार की पीड़ा और सुर्खी दूर होती है।

* * *

बिच्छू-दंश

अपामार्ग (लटजीरा) की जड़ बिच्छू के काटे हुए स्थान में पीस कर लेप करने से और पत्तों का रस कान में डालने से दर्द तुरन्त बन्द हो जाता है। यही बर्र के काटने में भी लाभकारी है।

* * *

शीघ्र प्रसव के लिए

प्रसव-काल में यदि दर्द अधिक हो रहा हो और बच्चा पैदा होने में देर हो, तो लटजीरा की जड़ एक छटाँक खूब बारीक पीस कर प्रसूता स्त्री की जङ्घाओं में लेप करने से शीघ्र प्रसव होता है। परन्तु प्रसव हो जाने पर लेप को तुरन्त ही कपड़े से पोंछ डालना चाहिए, नहीं तो गर्भाशय तक निकल आने की सम्भावना है।

* * *

प्लीहा

शङ्ख की भस्म मट्ठे के साथ सेवन करने से प्लीहा नष्ट हो जाती है।

* * *

आतशक

शुद्ध रस-कपूर १ तोला और कालीमिर्च १ तोला, दोनों को सेहुँड़ के दूध में पीस कर चने बराबर गोली बनाकर छाया में सुखा ले। १ गोली प्रातः-काल पानी से निगल जाय, आठ या दस दस्त होंगे। सात दिन में असाध्य आतशक भी शान्त हो जाता है। पथ्य में दूध-चावल की खीर ही खानी चाहिए।

* * *

विषम-ज्वर

कञ्जा की मींगी १ तोला, काली मिर्च ६ माशे, फिटकरी भूनी ६ माशे, केसर १ माशा—सबको पानी में पीसकर दो-दो रत्ती की गोली बना ले। एक-एक गोली सायं-प्रातः देने से विषम-ज्वर, तिजारी आदि शीघ्र दूर होते हैं।

* * *

पुष्टिकारक योग

केवाँच के बीज, गोखुरू बड़ा, सफ़ेद मूसली, सेमर-मूसली, आँवला, तालमखाना, गिलोय-सत्त, शतावर, बीजबन्द, सबको समभाग लेकर चूर्ण बना ले और उसके बराबर मिश्री या देशी खाँड़ मिलाकर शीशी में रख ले। इसे ६ माशे से १ तोला तक गोदुग्ध के साथ सेवन करने से वीर्य-सम्बन्धी समस्त रोग दूर हो जाते हैं। ऐसे रोगों के लिएयह दवा रामबाण है।

* * *

शिरदर्द

चन्दन, सोंठ, सेंधानमक, बालछड़, सुगन्ध-बाला, क़लमी शोरा और कपूर—इन सब चीज़ों को बराबर-बराबर पीस कर चूर्ण बना ले। आवश्यकता पड़ने पर थोड़ा चूर्ण पानी में महीन पीस कर मस्तक पर लेप करने से हर प्रकार का शिर-दर्द आराम होता है।

बलतोड़

शहद और चूना एक में मिला कर लगाने से बलतोड़ पक कर फूट जाता है।

* * *

पसली की पीड़ा

सींगी मोहरा, हरताल, हींग, राई, नौशादर, मैनसिल, लहसुन, बच और एलुवा लेकर सबको कूट-पीस ले, फिर थोड़ा सा चूर्ण पत्थर पर रख कर सिरका डाल कर बारहसिङ्गा से रगड़े। गाढ़ा हो जाने पर गरम करके पसली पर लेप करे। इससे तुरन्त पसली की पीड़ा शान्त हो जाती है।

—उत्तराकुमारी

* * *

गण्डमाला की औषधि

गण्डमाला गले में होती है। जिस मनुष्य के गले में गण्डमाला हो, वह छबूँदा † को मार कर दो तोले सरसों के तेल में भून कर लगा लेवे। इस तेल के कुछ दिन लगाने से गण्डमाला अवश्य अच्छी हो जावेगी।

* * *

बाल काले करना

लोहे का चूरा, भाँगरा, हरड़, बहेड़ा, आँवला और काली मिर्च, सबको बराबर-बराबर कूट-पीस तथा छान कर चूर्ण बना ले। फिर ईख के रस में डालकर एक महीने तक बरतन का मुँह बन्द करके रक्खा रहने दे। इसे पके हुए बालों में लगाने से शीघ्र ही वे काले हो जायँगे।

* * *

—सौभाग्यवती हजेला

---

† यह एक प्रकार का कीड़ा है, जो जङ्गलों में पाया जाता है। यह बड़ा ज़हरीला और काले रङ्ग का होता है। इसकी पीठ पर सफ़ेद रङ्ग के ६ बूँद होते हैं।
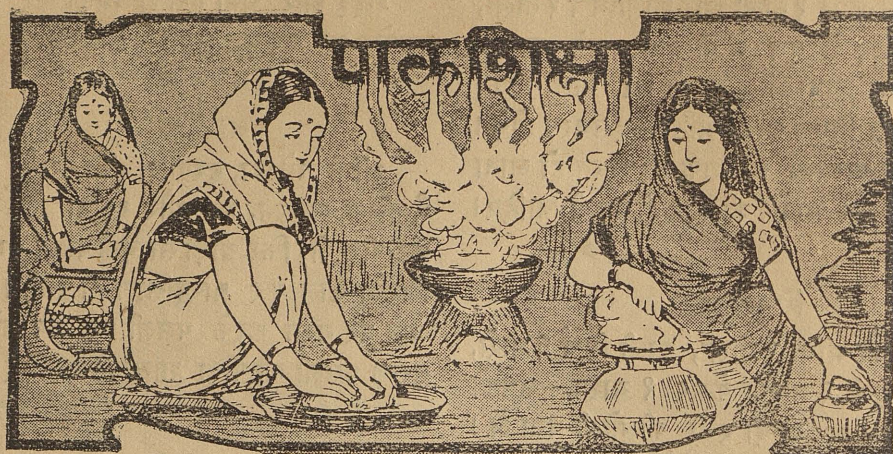
भोजन-सम्बन्धी आवश्यक बातें

अधिक भोजन करने से क़ब्ज़, दस्त आदि अनेक प्रकार के पेट-सम्बन्धी रोग उत्पन्न हो जाते हैं और इससे बुख़ार भी आने लगता है। यदि भोजन अच्छा और पूरा मिले और परिश्रम यथेष्ट न किया जाय, तो शरीर बेडौल हो जाता है। प्राय: दूकानदार और सेठ आदि ऐसे ही होते हैं। ऐसे लोगों को कभी-कभी गठिया भी हो जाती है। थोड़ा और ख़राब भोजन करने से मनुष्य दुबला हो जाता है और जल्दी मर जाता है। यदि तरकारियाँ या ताज़े फल यथेष्ट न मिलें तो मसूड़े फूल जाते हैं, और रक्त दूषित, हलके नीले रङ्ग का तथा तेज़ाब की ख़ासियत का हो जाता है।

गरमी के दिनों में घी, तैल आदि का व्यवहार कम कर देना चाहिए और दूध-दही, मट्ठे आदि का व्यवहार ख़ूब करना चाहिए। जाड़े के दिनों में इससे विपरीत आचरण होना चाहिए, अर्थात् उन दिनों में घी, तैल आदि के अनेक प्रकार के पकवानों का अधिकता से प्रयोग करना चाहिए।

गेहूँ का आटा यदि बहुत दिनों तक रक्खा रहे तो उसमें कई प्रकार के कीड़े तथा घुन लग जाते हैं। इसी प्रकार चावल में भी होता है। ऐसी चीज़ों को व्यवहार में लाने के पहले ख़ूब देख-भाल लेना चाहिए; क्योंकि उनके खाने से अनेक प्रकार के भयङ्कर रोग उत्पन्न हो जाते हैं। बासी भोजन भी स्वास्थ्य के लिए अत्यन्त हानिकर तथा रोगोत्पादक होता है। बासी भोजन करना रोगों को निमन्त्रण देना है। भोजन ही नहीं, किसी भी बासी, गन्दी तथा सड़ी-गली चीज़ों के व्यवहार से सिवा हानि के लाभ कुछ नहीं है; अत: रसोई बनाने वाले को चाहिए कि वह सब चीज़ों को देख-भाल कर काम में लाए। इसके अतिरिक्त उसे ऋतु और प्रकृति का भी सदैव विचार रखना चाहिए।

* * *

आलू की पूड़ी

एक सेर आलू लेकर धीमी-धीमी आँच में उबाले। उबल जाने पर छिलका अलग करके मैदा के समान कर ले। फिर एक सेर मैदा उसमें

मिलाकर साने और पानी की आवश्यकता होने पर ख़ालिस दूध काम में लावे। एक माशा केसर घी में पीस कर मैदा में मिला ले और अन्दाज़ से सेंधा नमक डाल कर उसे ख़ूब गूँद डाले। जब बिलकुल तैयार हो जाय, तब पूड़ी बना कर घी में सेंक ले। यह पूड़ी बहुत स्वादिष्ट और मुलायम होती हैं।

* * *

मूली और अदरक की चटनी

मूली और अदरक को छील कर, छोटे-छोटे एक-एक अङ्गुल के लम्बे टुकड़े बना ले। इन टुकड़ों नींबू के अर्क़ में डाल दे और फिर उसमें नमक, जीरा, कालीमिर्च, धनियाँ और पोदीना पीसकर मिलावे। यह चटनी बड़ी स्वादिष्ट और गुणदायक होती है।

* * *

नारङ्गी की चटनी

नारङ्गी को छील कर, सब फाँकों को अलग कर ले, फिर फाँकों के ऊपर का छिलका निकाल डाले। अब भीतर के गूदे को पत्थर की प्याली में रख कर नमक, कालीमिर्च, पोदीना, जीरा और हींग भून कर मिलावे, और फिर अदरक के छोटे-छोटे टुकड़े करके उसमें डाल दे। यह चटनी भी बड़ी स्वादिष्ट और लाभदायक होती है।

—कलावती

* * *

शकरकन्द के रसगुल्ले

सेर भर शकरकन्द लेकर अच्छी तरह उबाल ले। जब उबल जाय तब छिलका अलग कर, मसल कर बारीक कर ले और उसमें एक छटाँक मैदा मिला ले। इसके बाद एक पाव खोवा लेकर उसमें पिस्ता, किशमिश और छोटी इलायची बारीक करके मिला ले और छोटी-छोटी गोली बनावे। अब थोड़ा सा शकरकन्द का भुरता लेकर एक गोली उसके अन्दर रख कर उसे गुलाब-जामुन या परवल की शक्ल का बनाए। इसी प्रकार सारे भुरते के रसगुल्ले बना डाले और मन्द अग्नि से घी में सेंके। जब वह सिंक कर बादामी रङ्ग के हो जायँ, तो उतार ले। अब आध सेर चीनी में आधी छटाँक पानी डाल कर उसको अग्नि पर चढ़ा दे और जब एक तार की चाशनी तैयार हो जाय, तब उसे उतार कर उसमें सिंके हुए शकरकन्द के सूखे रसगुल्लों को डाल दे। एक घण्टा बाद निकाल कर काम में लाए। यह जितनी देर रस में पड़े रहेंगे उतने ही अच्छे होंगे।

* * *

सँदेस बनाने की विधि

दो सेर ताज़ा कच्चा दूध लेकर (यदि भैंस का हो तो बहुत अच्छा है) उसे आग पर चढ़ा दे और आध पाव दही लेकर थोड़ा-थोड़ा दूध में डाले, जिससे कि दूध फट जाय, और यदि दही न हो तो नींबू से दूध फाड़ ले, किन्तु दही ज्यादा अच्छा है। जब दूध फट जाय तो उसको एक कपड़े में रख कर निचोड़े। कपड़े के अन्दर दूध की फुटक रह जायगी। दूध फाड़ने के लिए इसी छाने का पानी बहुत अच्छा है वह और बोतल में सुरक्षित रह सकता है। अब दूध की फुटक को सिल पर पीस ले और उसमें पिस्ता मिला दे, और उसके ही अन्दाज़ से चीनी की तीन तार की चाशनी बना कर उसमें वह फुटक डाल कर चलाए। जब वह लड्डू या गोली बनाने योग्य हो जाय तो उतार ले और एक-एक किशमिश भीतर रख कर लड्डू बाँध ले। यह लड्डू बहुत स्वादिष्ट होते हैं।

—कुमारी सत्यवती कँवर
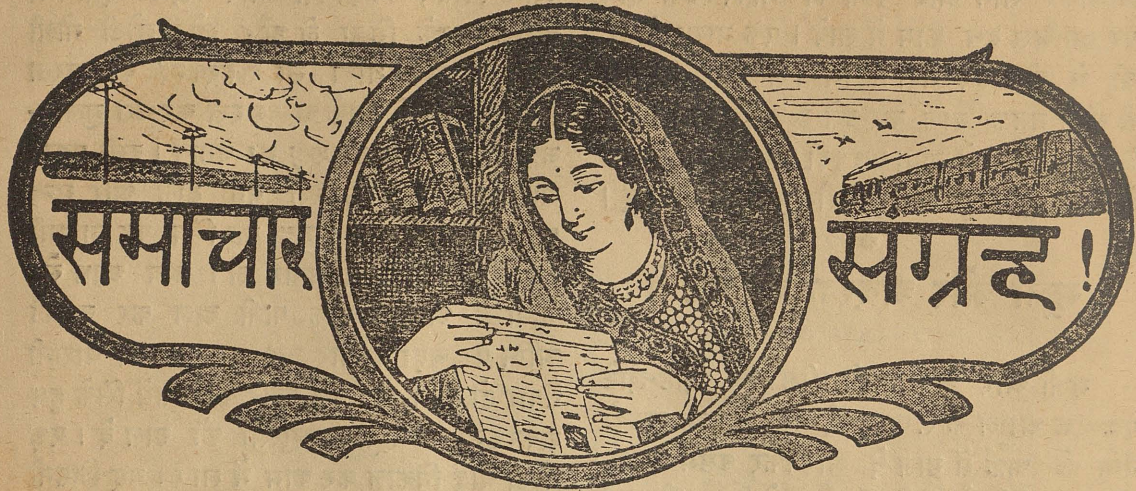
लाला जी का स्वर्गवास

हमें यह दुखदाई समाचार प्रकाशित करते वास्तव में अपार क्लेश हो रहा है कि आज, जबकि हमें पञ्जाब-केशरी लाला लाजपतराय जी की आवश्यकता थी, वे हमारे बीच से उठ गए! गत १७वीं नवम्बर को प्रातःकाल पौने सात बजे हृदय की गति रुक जाने के कारण अचानक आपकी मृत्यु होगई। अपनी श्रद्धाञ्जलि तो हम फिर कभी भेंट करेंगे, इस समय हम केवल परम-पिता से प्रार्थना करते हैं कि आपकी आत्मा को चिर-शान्ति और परिवार वालों को धैर्य प्रदान करें।

एक प्रशंसनीय दान

काशी के बाबू बालकृष्ण दास जी खत्री ने अपने पुत्र श्रीकृष्णदास जी के विवाह के शुभ अवसर पर २० हज़ार रुपयों का प्रशंसनीय दान इसलिए दिया है कि इन रुपयों का सूद खत्री-बालकों की शिक्षा और खत्री-विधवाओं की सहायता में व्यय किया जाय। जो लोग शादी-विवाह के अवसर पर आतिशबाज़ी और वेश्याओं के नृत्य में लाखों रुपए कुछ ही घण्टों में स्वाहा कर डालते हैं, उन्हें इस प्रकार के आदर्श दानों से शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए।

* * *

राजपूताना महिला-कॉन्फ़्रेन्स

हमें यह जानकर बड़ी प्रसन्नता हो रही है कि राजपूताने की मरुभूमि में भी जाग्रति के स्पष्ट-चिह्न दिखाई देने लगे हैं। गत १९वीं और २०वीं नवम्बर को अजमेर में महिलाओं की एक विराट् सभा मिसेज़ रेनॉल्ड्स के सभापतित्व में बड़े समारोह से हुई। राजपूताने के विभिन्न भागों से आकर स्त्रियों ने बड़े उत्साह से कॉन्फ़्रेन्स की कार्यवाही में भाग लिया। उपस्थित महिलाओं की संख्या एक हज़ार से अधिक थी। अनेक महिलाओं के सारगर्भित व्याख्यान हुए और कई महत्वपूर्ण प्रस्ताव—ऐसे प्रस्ताव, जिनके उपस्थित होते ही प्रायः मार-पीट तक हो जाने की सम्भावना रहती है—बड़े उल्लास-पूर्वक सर्वसम्मति से पास हुए, जिनमें राजपूताने के राज्याधीशों से सविनय प्रार्थना की गई है कि (१) प्रत्येक गाँव और तहसील में कन्या-पाठशालाएँ स्थापित की जायँ (२) परदे की नाशकारी प्रथा को एकबार ही तिलाञ्जलि दी जाय (३) बाल-विधवाओं का पुनर्विवाह किया जाय (४) स्त्रियों के दाय भाग को सुरक्षित रक्खा जाय—पूर्वजों की सम्पत्ति में बालकों के समान उन्हें भी भाग दिया जाय (५) बाल-विवाह की नाशकारी प्रथा—जिसके कारण शिशुओं तथा स्त्रियों की मृत्यु-संख्या इतनी भयङ्कर हो रही है, एक बार ही बन्द कर दी जाय (६) शारदा-बिल का समर्थन किया जाय और (७) प्रत्येक राज्य में यह क़ानून बना दिया जाय कि लड़कों का विवाह १८

श्रीमती मोहता का आदर्श

परमात्मा की सृष्टि-रचना वास्तव में बड़ी विचित्र है। कीचड़ से कमल की उत्पत्ति, खान से मणियों की उत्पत्ति, हाथी से गजमुक्ता की उत्पत्ति, नीलाम्बर से चन्द्रोदय की उत्पत्ति और पर्वतों की अन्धकारमय गुफाओं से सञ्जीवनी बूटियों की उत्पत्ति जिस प्रकार हमें आश्चर्य में डालती है, ठीक उसी प्रकार जब हम मरू-भूमि के बीहड़ रेगिस्तान में—धर्मान्धता के कट्टर गढ़ बीकानेर के मारवाड़ी-भाइयों की सुधारात्मक प्रवृत्ति पर दृष्टिपात करते हैं तो हमारे आश्चर्य की सीमा नहीं रहती। अधिकांश मारवाड़ी-भाइयों की जहालत सर्व-प्रसिद्ध है। इसलिए एक ऐसे समाज का छोटे से छोटा सुधार भी हमें आश्चर्य की दृष्टि से देखना पड़ता है। बीकानेर के अधिकांश सामाजिक सुधारों का उत्तरदायित्व मोहता-परिवार पर ही है। अन्य सुधारों के समान इस समाज में परदा-प्रथा के विरुद्ध बग़ावत करने का श्रेय भी इसी परिवार को है। श्री० बालकृष्ण जी मोहता की धर्मपत्नी इस कुप्रथा के मस्तक पर पाद-प्रहार करने वाली मारवाड़ी-समाज की प्रथम महिला-रत्न हैं, जो आजकल कलकत्ता-अबला-आश्रम की अभागिनी महिलाओं की सेवा कर रही हैं। (इस संस्था का उल्लेख हम आगामी अङ्क में करेंगे) अब 'कराँची-गज़ट' को देखने से पता चलता है कि विगत १८ अक्टूबर को श्री० रामगोपाल गोवर्धनदास मोहता हिन्दू-जीमखाना (व्यायामशाला) के सभापति और टेनिस के खिलाड़ियों को एक भोज दिया गया था। अधिवेशन मि० रूपचन्द बिलाराम (एडिशनल जुडिशियल कमिश्नर, सिन्ध) की अध्यक्षता में हुआ था। इस अवसर पर रावबहादुर सेठ शिवरतन मोहता महोदय की धर्मपत्नी भी उपस्थित थीं। यह पहला ही अवसर था जब देवी जी ने परदा-प्रथा को तिलाञ्जलि देकर सभा के समक्ष एक आदर्श उपस्थित किया। आशा है, देवी जी का यह आदर्श अनेक मारवाड़ी महिलाओं का पथ-प्रदर्शक होगा।

* * *

नागपुर महिला-कॉलेज

बड़ी प्रसन्नता की बात है कि सी० पी० सरकार ने नागपुर में एक महिलाओं का कॉलेज स्थापित करने का निश्चय कर लिया है और एक जाँच-कमिटी इसलिए नियुक्त की है कि जाँच करके वह प्रान्तीय सरकार को इस बात की रिपोर्ट दे कि कौन सा स्थान महिला-कॉलेज के लिए उपयुक्त होगा। कमिटी इस बात की भी सिफ़ारिश करेगी कि कॉलेज की निजी बिल्डिङ्ग बनवाई जाय या किराए पर ली जाय। नागपुर डिवीज़न के कमिश्नर इस कमिटी के प्रधान तथा सुपरिन्टेण्डिङ्ग इञ्जीनियर फ़र्स्ट सर्किल नागपूर, मॉरिस कॉलेज के प्रिन्सिपल, श्रीमती रामाबाई टाँबे, मिसेज़ मेकफ़ेडिन (Mc Fadyen) और डॉक्टरा इन्दिराबाई नियोगी इस कमिटी की सदस्या नियुक्त हुई हैं। हमें आशा है, कमिटी कॉलेज के लिए एक ख़ास और विशाल बिल्डिङ्ग बनाने का परामर्श दे, अपने कर्त्तव्य का पालन करेगी।

* * *

महिला राजनैतिक परिषद्

इस वर्ष भारतीय महिलाओं में वास्तव में अभूतपूर्व जाग्रति उत्पन्न हुई है। पाठकों को जानकर प्रसन्नता होगी कि विगत १३ वीं अक्टूबर को मेरठ में महिलाओं के राजनैतिक कॉन्फ़्रेन्स का अधिवेशन बड़े समारोह से सम्पन्न हुआ। भिन्न-भिन्न प्रान्तों से लगभग १५० महिला-प्रतिनिधि इस परिषद् में पधारी थीं। अनेक उपयोगी प्रस्ताव पास हुए। देश के राजनैतिक आन्दोलन में भाग लेने के लिए स्त्रियों को उत्साहित किया गया। स्त्रियों और कन्याओं की अनिवार्य शिक्षा के लिए ज़ोर दिया गया, परदा-प्रथा की हानियाँ बतलाई गईं और स्वदेशी वस्तुओं का प्रचार और विदेशी वस्तुओं के वहिष्कार के प्रस्ताव भी पास हुए। अपने प्राणों की आहुति देकर भी स्त्री-जाति की प्रतिष्ठा क़ायम रखने वाले वीर-श्रेष्ठ भाई खड्गबहादुर सिंह जी को अब तक जेल में सड़ाने के लिए सरकार की तीव्र निन्दा और उन्हें तुरन्त मुक्त करने की प्रार्थना की गई। पञ्जाब की श्रीमती पार्वती देवी जी का भाषण बड़ा प्रभावशाली हुआ। आपने एक बड़े मार्के की बात कही। आपने कहा कि आज भारतीय महिलाओं को अपनी स्वतन्त्रता और अधिकार प्राप्त करने के लिए दो प्रकार की शक्तियों से लड़ना पड़ रहा है। एक विदेशी सरकार से और दूसरे भारतीय पुरुषों की सङ्कीर्णात्मक प्रवृत्ति से। आज इस उन्नति और विकास के युग में पुरुषों द्वारा भारतीय स्त्री-

जाति पर जो अमानुषिक अत्याचार हो रहे हैं, उसे देखकर पुरुष-मात्र को लज्जा से अपना मस्तक नत कर लेना चाहिए। आपने प्रत्येक स्त्री से कम से कम दिन में ३ घण्टे सूत कातने की, परदा-प्रथा का मुँह काला करने की तथा विधवा-विवाह के प्रचार करने की प्रार्थना की। बालक-बालिकाओं के विवाह के लिए आपने उपयुक्त अवस्था क्रमशः २६ और १८ बतलाई। देवी जी ने आँखों में आँसू भर कर उपस्थित महिलाओं को बतलाया कि—"एक निर्लज्ज काम-लोलुप ६० वर्ष के बूढ़े ने हाल ही में २६वीं बार अपना विवाह किया है और अनेक भूत-पूर्व स्त्रियाँ अभी तक जीवित हैं और बूढ़े को कोस रही हैं।" इन पंक्तियों को सुनते ही सारी सभा में एक बार ही खलबली मच गई और लानत तथा धिक्कार की आवाज़ों से सारा मण्डप गूँज उठा। वृद्ध-विवाह के सम्बन्ध में स्त्रियों की मनोवृत्ति का यह सच्चा प्रदर्शन था।

* * *

महिला-शक्ति का महत्व

विगत २२वीं अक्टूबर को डॉक्टर एनी बेसेण्ट महाराजा कोचिन के निमन्त्रण पर इरनाकुलम पधारी थीं। स्थानीय महिला-समिति ने डॉक्टर महोदया को एक सारगर्भित अभिनन्दन-पत्र भेंट किया था। उसके उत्तर में श्रीमती बेसेण्ट ने जो महत्वपूर्ण व्याख्यान दिया था, भारतीय पुरुषों को उसकी उपयोगिता और सत्यता पर विचार करना चाहिए। आपने कहा कि जब तक भारतीय महिलाओं की शिक्षा-दीक्षा, उनके स्वास्थ्य, स्वतन्त्रता और उन्नति की ओर विशेष ध्यान न दिया जायगा, तब तक भारतीयों का स्वतन्त्र होना एक बार ही असम्भव है। आपने प्राचीन भारतीय आदर्शों की चर्चा करते हुए बतलाया कि जब तक स्त्री-पुरुषों का देशोन्नति में समान हाथ और दिलचस्पी रही, तब तक कोई उसे पराधीन नहीं कर सका और कर भी नहीं सकता था। स्त्रियों के मानसिक, नैतिक और आध्यात्मिक उन्नति पर ही किसी देश की उन्नति तथा अवनति सर्वथा अवलम्बित है, और यह एक निश्चित-सत्य है कि यदि भारतवासी अपना सुधार करना चाहते हैं और पूर्ण स्वतन्त्रता का उपभोग करना चाहते हैं, तो उन्हें स्त्री-जाति के सुधार की ओर तुरन्त ध्यान देना चाहिए। गत वर्षों में भारतीय महिलाओं में जो जाग्रति उत्पन्न हुई है उस पर आपने बड़ा हर्ष प्रकट किया और सुधारों के आन्दोलनों को और भी वेग से चलाने की सलाह दी। देवी जी ने कहा कि भारत की स्वतन्त्रता में अब देर नहीं है; और इसके पहले कि यह प्राप्त हो, भारतीय स्त्री-पुरुषों को इस बात का सम्मिलित उद्योग करना चाहिए कि वह सुरक्षित रह सके।

* * *

कड़ुआ और मीठा

माथुर चतुर्वेदियों में आज—इस उन्नति के युग में—भी वही सब सामाजिक कुरीतियाँ प्रचलित हैं, जो अभागे भारत को बुरी तरह लथेड़ रही हैं। बाल-विवाह, बेमेल-विवाह, बदला करने की प्रथा, विधवा-विवाह का विरोध, परदा-प्रथा का समर्थन, अनुचित उपजाति का ढकोसला आदि-आदि सभी कुरीतियाँ इस समाज का रक्त चूस रही हैं। इस समाज के कोढ़ में जो खाज का कार्य कर रहा है वह है 'कड़ुआ' और 'मीठा' उपजाति का परस्पर विरोध, 'कड़ुआ' और 'मीठा' का फ़िर्क़ा हम देखते हैं दिनोंदिन विस्तृत होता जा रहा है और आज इन दो फ़िर्क़ों में भी कितनी उपजातियाँ उत्पन्न हो गई हैं और दिनोंदिन इनमें परस्पर विरोध बढ़ता जा रहा है। इस समाज के नवयुवकों को इन कुप्रथाओं के विरुद्ध एक बार ही बग़ावत का झण्डा बुलन्द करना चाहिए, इसीमें इस समाज का कल्याण है। परमात्मा 'कड़ुओं' के स्थान में सबको 'मीठा'—बहुत मीठा कर दें, 'चाँद' की यही कामना है।

* * *

गौड़ ब्राह्मणों का सद्कार्य

हमारे आश्चर्य की सीमा नहीं है, जब हम उस रिपोर्ट को पढ़ते हैं, जो हमारे विशेष सम्वाददाता, ने रोहतक से हमारे पास भेजी है। हाल ही में रोहतक ज़िले के गौड़ ब्राह्मणों ने अपनी जातीय महासभा में एक बड़ा महत्वपूर्ण प्रस्ताव पास कर अपनी दूरदर्शिता का परिचय दिया है। शिक्षित ब्राह्मणों के अलावा इस सभा में अनेक ग्रामीण और दक़ियानूसी ख़्याल के गौड़ ब्राह्मण भी उपस्थित

थे और सभों ने एक स्वर से अनुमोदित कर यह प्रस्ताव पास किया है कि जो विधवाएँ संयमपूर्वक जीवन व्यतीत करने में असमर्थ हों, तुरन्त उनका पुनर्विवाह कर दिया जाय और समाज में ऐसी विधवाओं को भी उसी प्रतिष्ठा की दृष्टि से देखा जाय, जिस दृष्टि से हम साधारण विवाहिता स्त्रियों को देखते हैं। यदि वह प्रस्ताव, कोरा प्रस्ताव न रह कर, कार्य-रूप में परिणत किया गया तो वास्तव में गौड़ ब्राह्मणों की प्रतिष्ठा हमारी दृष्टि में बहुत अधिक बढ़ जायगी, पर क्या ऐसा होगा ?

* * *

प्रयाग महिला समिति

उपरोक्त समिति की अध्यक्षता में स्त्रियों की एक विराट सभा विगत तीसरी दिसम्बर को स्थानीय भारती-भवन में हुई थी। लगभग सभी प्रतिष्ठित महिलाएँ सभा में उपस्थित थीं। शहर की अनेक ऐसी स्त्रियों ने, जिन्हें बहुत हद तक 'अशिक्षिता' कह सकते हैं, विशेष दिलचस्पी से सभा की कार्यवाही में भाग लिया। कई उपयोगी प्रस्ताव सर्वसम्मति से पास हुए, जिनमें तीन विशेष महत्वपूर्ण और उल्लेखनीय हैं। पहिले प्रस्ताव में बाल-विवाह प्रथा के विरुद्ध घृणा प्रदर्शित की गई और उपस्थित महिलाओं ने दृढ़ निश्चय किया कि अपने परिवार में, जहाँ तक उनकी शक्ति काम कर सकेगी, वे इस प्रकार बालक-बालिकाओं का बलिदान न होने देंगी। दूसरे प्रस्ताव में स्त्रियों के परिमित क़ानूनी अधिकारों की निन्दा की गई और तीसरे प्रस्ताव में इस बात पर खेद प्रगट किया गया कि पति की जायदाद में उसकी विधवा को कोई विशेष अधिकार नहीं रहता। वास्तव में बृटिश-शासन-पद्धति का तथा स्त्रियों के स्वत्वों के प्रति भारतीय पुरुषों की उदासीनता का यह ऐसा कलङ्क है, जिसे सारे समुद्र का जल भी नहीं धो सकता। स्त्रियों का क़ानूनी अधिकार कितना सङ्कुचित है, इस बात का प्रमाण निम्न-लिखित पत्र से मालूम होगा जिसे "एक दुखिया बहिन" ने श्रीमती लाडो रानी ज़ुतशी के पास भेजा है और जिसे उन्होंने हमारे पास भेजने की कृपा की है :—

"मेरी प्यारी बहिन,

निवेदन यह है कि १० सितम्बर, १९२८ के समाचार-पत्र 'लीडर' में यह देखकर बहुत प्रसन्नता हुई कि आपने लड़कियों के दायाधिकार के विरुद्ध आवाज़ उठाने का बीड़ा उठाया है। मैं आपके इस यत्न के लिए आपको और आपकी सहयोगिनियों को अनेक धन्यवाद देती हूँ, और सर्वशक्तिमान जगदीश्वर से प्रार्थना करती हूँ कि वह आपके कार्य में सफलता प्रदान करें। मेरी दुख-भरी कथा सुनिए :—

"मेरे पिता जी का स्वर्गवास हुए १५ वर्ष हुए। उन्होंने दस लाख रुपए की,सम्पत्ति छोड़ी थी, जिससे २६,०००) का प्रति वर्ष लाभ होता है। मेरा एक भाई है, पर जब से मेरे पिता मरे हैं मेरे भाई ने एक बार भी मुझे अपने घर नहीं बुलाया। वह अपनी पत्नी के वशीभूत है, मेरी माता भी जीवित हैं, पर वह बेबस हैं। धन के अभाव में जो हमारी दुर्दशा हो रही है, हमीं जानती हैं। मेरे पतिदेव तिजारत किया करते थे, पर उनका कार्य शिथिल हो गया, इसलिए हमारा निर्वाह भी बहुत कठिनता से होता है। मेरे ६ बच्चे हैं, यदि लड़कियों को पिता की सम्पत्ति में से भाग मिलता होता तो मैं क्यों इस प्रकार दुख भोगती ? अवश्य मनु महाराज के दाय नियमों में परिवर्तन होना चाहिए। जिस समय स्त्री-समाज का कोई जलसा हो, मेरी यह दुख की कहानी सुना देना। धर्मशास्त्रों में परिवर्तन की बहुत आवश्यकता है। अब ऐसा समय आगया है कि कोई भाई अपनी बहिन के दुख का बिलकुल ध्यान नहीं रखता। बहिन गर्मी के दिनों में चक्की पीसकर अपना पेट भरती है और भाई बिजली के पङ्खों का आनन्द लूटते हैं !! ऐसा होने से ज्ञात होता है कि दुनिया के बुरे दिन आ गए हैं, तभी तो वर्षा नहीं होती, काल पर काल पड़ते हैं। मेरे पतिदेव को आप कहीं नौकरी दिलवा दें तो बड़ी कृपा होगी !!"

कौन ऐसा सहृदय होगा जिसकी आँखों से पत्र पढ़कर गर्म आँसुओं की दो बूँदें न टपक पड़ें ? हमें खेद है, बड़ी व्यवस्थापिका सभा के एक भी सदस्य ने पुरुषों की इस हृदय-हीनता की ओर अब तक ध्यान नहीं दिया, हालाँकि ये सदस्य एसेम्बली-प्रवेश के समय सामाजिक तथा राजनैतिक सुधारों के लिए बर्फ़ के समान घुलते रहने की दुहाई देते फिरते हैं !! किसी आगामी अङ्क में हम विशेष रूप से इस समस्या पर प्रकाश डालेंगे।

तार का पता:—"गोल्डमाइन" कलकत्ता
टेलीफ़ोन नं०—बड़ा बाज़ार १५९०, कलकत्ता
सोना चाँदी और जवाहरात के ज़ेवरों का
अपूर्व संग्रह-स्थान
[इस प्रतिष्ठित फ़र्म के सञ्चालकों से हमारा पूर्ण परिचय है। यहाँ किसी प्रकार का धोखा होगा, इस बात का स्वप्न में भी भय न करना चाहिए। सारा काम सञ्चालकों की देख-भाल में सुन्दर और ईमानदारी से होता है; हमें इसका पूर्ण विश्वास है।
—सम्पादक 'चाँद']
कुछ मन लुभाने वाली फ़ैन्सी चीज़ों पर ध्यान दीजिए!
बिजली की तरह चमकीले बेटर सोने का और मोती, माणिक, हीरे,
पन्ने का न्यू डिज़ाइन के नाना प्रकार के हार और नेकलेस
चमकीले आइनों को मात करने वाली बेटर सोने की और जवाहरात की निहायत
नफ़ीस और डायमण्ड कट की हर एक क़िस्म की चूड़ियाँ
पुष्पों से आकर्षक, दीपक से भी भड़कीला उम्दा से उम्दा कड़ा;
तारा सा चमकता हुआ ईयरिङ्ग और प्रेम में वृद्धि करने
वाली सुन्दर अँगूठियाँ
गले का अनुपम शृङ्गार, बिजली सी भड़कीली चित्ताकर्षक
सीकलियाँ, हाथ और गले का मनोरञ्जक बटन
और
चाँदी के हाई-पॉलिश के हर एक क़िस्म के बर्तन—जैसे थाली, लोटा,
गिलास, कटोरा, गङ्गासागर, कुञ्जा, ताँबड़ी, पञ्चपात्र, कप-
सोसर्स, पहलदार कटोरा, टिफ़िन बॉक्स,
और
अतरदान, गुलाबपास, फ़्लावर वास, पानदान, सिंहासन, फ़ुवारा, ग्लास्ट्रे वग़ैरह हमारी नोवेल्टी है।
पताः—मुरारजी गोविन्दजी जौहरी,
पोस्ट-बॉक्स ६७७३, १५६ हैरिसन रोड, कलकत्ता
चाँदी और सोने का विशाल सूचीपत्र मुफ़्त। डाक-ख़र्च के लिए चार आने का टिकट भेजिए।
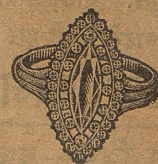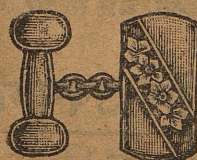
STRIKING OPINIONS

Mr. S. H. Thompson, I. C. S., Collector and Magistrate, Allahabad:

. . . I consider for the most part highly artistic. Some of the pictures, which are not quite at a par with the majority, might be omitted; but otherwise the album (*Adarsh Chittrawali*) is a very praiseworthy production.

Sam Higginbottom, Principal of the Allahabad Agricultural Institute Naini (Allahabad):

. . . I think it is beautifully done. Most of the guests who came into the drawing room pick it up and look at it with interest.

The Private Secretary to His Excellency the Governor of Punjab:

. . . His Excellency considered the reproduction of the pictures to have been most successfully carried out.

The Private Secretary to His Excellency the Governor of Central Provinces:

. . . His Excellency the Governor has looked through it (*Adarsh Chittrawali*) with interest.

Lt.-Col. H. R. Nutt, I.M.S., Civil Surgeon Allahabad:

. . . The color execution is exceedingly good.

G. P. Srivastava, Esq., B. A., LL. B:

. . . Really it is a unique publication of its kind. The pictures are excellent and choicest; at the same time the printing is simply marvelous. It must have its success.

A. H. Mackenzie, Esq., M. A., C. I. E., M. L. C., Director of Public Instruction, United Provinces:

. . . I congratulate your Press on the get-up of the Album (*Aaarsh Chittrawali*), which reveals a high standard of fine Art printing.

The Hon'ble Mr. Justice Lal Gopal Mukerjea of the Allahabad High Court:

. . . The Pictures are indeed very good and indicate not only the high art of the painters but also the consumate skill employed in printing them in several colours. I am sure the Album (*Adarsh Chittrawali*) will be very much appriciated by the public.

The Indian Daily Mail:

. . . The album (*Adarsh Chittrawali*) is probably the one of its kind in Hindi—the chief features of which are excellent production, very beautiful letter press in many colours, and the appropriate piece of poem which accompanies each picture. . . .

सती-प्रथा का रक्त-रञ्जित इतिहास

[ले० अनेक पुस्तकों के रचयिता श्रीयुत पं० शिवसहाय जी चतुर्वेदी]

यदि धर्म के नाम पर स्वेच्छाचारिता का नङ्गा चित्र आप देखना चाहते हैं, तो इस महत्वपूर्ण ग्रन्थ को एक बार अवश्य पढ़िए। रूढ़ियों से चली आई इस रक्त-रञ्जित कुप्रथा ने न जानें कितनी होनहार युवतियों की हत्याएँ की हैं। किस प्रकार विधवाओं को सती होने पर मजबूर किया जाता था; उनकी इच्छा न होने पर भी, किस प्रकार उन्हें दहकती हुई अग्नि में झोंक दिया जाता था; किस प्रकार विधवाओं को ज़मीन में जीवित गाड़ दिया जाता था; जो कोमल युवतियाँ दहकती हुई प्रज्वलित चिता से निकलने का प्रयत्न करती थीं, उनके सम्बन्धी अपने अन्ध-विश्वास के वशीभूत होकर किस प्रकार अपनी माँ-बहिनों पर खड्ग-प्रहार करते थे तथा भारतीय महिलाओं की कैसी दुर्दशा होती थी—यदि ये सब बातें प्रामाणिक रूप से आप जानना चाहते हैं, तो एक बार इस पुस्तक को अवश्य देखिए। प्रस्तुत पुस्तक भारतीय इतिहास का वह कलङ्क है, जिसके लिए भारतवासियों को घोर प्रायश्चित्त की अग्नि में तिल-तिल कर जलना होगा। विधवाओं के दारुण कष्टों के ऐसे नमूने दिए गए हैं, जिन्हें पढ़कर भारतीय महिला-मण्डल की भीषण परवशता तथा उसकी असहायता का पता चलता है। भारतीय इतिहास के ये रक्त-रञ्जित पृष्ठ हैं, जिन्हें पढ़कर आँखों से आँसुओं की धारा अपने समस्त वेग से प्रवाहित होकर भारतीय समाज को एकबार ही बहा देने का प्रयत्न करती है। हम प्रत्येक भारतवासी से प्रार्थना करेंगे कि वह एक बार इस काले इतिहास को अवश्य ध्यानपूर्वक पढ़कर अपने पूर्वजों के किए हुए पापों का प्रायश्चित्त करें, इसी में उनका तथा उनके परिवार का मङ्गल है!

जिस प्रकार की कठिन खोज करके यह पुस्तक लिखी गई है, वह बात पुस्तक के पढ़ने से ही प्रकट हो सकती है। किस प्रकार इस प्रथा को रोका गया, सुधारकों को कैसी-कैसी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा, इन सभी बातों का वर्णन इस पुस्तक में सविस्तार और प्रामाणिक रूप से अङ्कित किया गया है। २० ऐतिहासिक चित्र भी आर्ट-पेपर पर दिए गए हैं, छपाई-सफ़ाई देखने योग्य है, पृष्ठ-संख्या २५० से अधिक; पुस्तक सजिल्द है, कवर के ऊपर अङ्गरेज़ी ढङ्ग का Protecting Cover आर्ट-पेपर पर छपा हुआ है, जिस पर श्मशान का रोमाञ्चकारी तिरङ्गा चित्र है! इतना होते हुए भी पुस्तक का मूल्य देखकर आप आश्चर्य करेंगे। मूल्य २॥) रु०; स्थायी ग्राहकों से केवल १॥।=); इससे सस्ती पुस्तक आपने न देखी होगी!!

हमारा सारा प्रयत्न तभी सफल हो सकता है, जब भारतवासी ऐसी पुस्तकों का महत्व समझकर इनके प्रचार में हमारा हाथ बटाएँ; और विद्याविनोद-ग्रन्थमाला के स्थायी ग्राहक स्वयं बनें तथा इष्ट-मित्रों को बनाएँ।

☞ व्यवस्थापिका 'चाँद' कार्यालय, इलाहाबाद

मनोरमा

[ले० स्वर्गीय चण्डीप्रसाद जी, बी० ए० 'हृदयेश']

इस मौलिक उपन्यास के पहले संस्करण ने समाज में एकबार ही क्रान्ति उत्पन्न कर दी थी। इस पुस्तक का पहला २००० कॉपियों का संस्करण केवल २५ रोज़ में समाप्त होगया था। समाज का नङ्गा चित्र जिस योग्यता से इस पुस्तक में अङ्कित किया गया है, हम दावे के साथ कह सकते हैं, अब तक ऐसा एक भी उपन्यास हिन्दी-संसार में नहीं निकला है। बाल-विवाह और वृद्ध-विवाह के भयङ्कर दुष्परिणामों के अलावा भारतीय हिन्दू-विधवा का जीवन जैसा आदर्श और उच्च दिखलाया गया है, वह बड़ा ही स्वाभाविक है। ७ वर्ष की बालिका शान्ता का विवाह १० वर्ष के बालक से होना, इसके परिणाम-स्वरूप बालिका शान्ता का विधवा होना, किन्तु वैधव्य-यातना को ही अपना जीवन मानकर उसका आदर्श-चरित्र, पातिव्रत्य-धर्म का निभाना ऐसे करुणापूर्ण शब्दों में अङ्कित किया गया है कि पढ़ने वालों की आँखों से आँसुओं की धारा बह निकलेगी। इसके विपरीत शान्ता की लाडिली सहेली मनोरमा का विवाह एक ६४ वर्ष के पतित बूढ़े से होना, बूढ़े खूसट का अपनी आदर्श प्रेयसी पत्नी मनोरमा पर भाँति-भाँति के अमानुषिक अत्याचार करना, इन अत्याचारों के ख़िलाफ़ मनोरमा के हृदय में क्रान्ति के भाव पैदा होना और उन्हें उसका क्रियात्मक बाना पहनाना ऐसा स्वाभाविक है कि पापी हिन्दू-समाज इस घटना को पढ़कर दहल जायगा। शान्ता का इन सामाजिक अत्याचारों के ख़िलाफ़ आवाज़ बुलन्द करना और भाँति-भाँति के सुधार-सम्बन्धी उद्योग करना प्रत्येक भारतवासी को अपने हृदयपट पर अङ्कित करना चाहिए। अपने प्रायश्चित्त-स्वरूप मनोरमा का पश्चात्ताप प्रकट करना और व्यथित हृदय से हिन्दू-समाज की निन्दा करते हुए उसे शाप देना वह करुणापूर्ण दृश्य है, जिसके द्वारा अन्धे और पतित हिन्दू-समाज की आँखें खुल जायँगी।

सम्भव है, स्त्रियों की पराधीनता से अनुचित लाभ उठाने वाले पुरुष, स्त्रियों को यह पुस्तक पढ़ने की आज्ञा न दें; किन्तु हमारा अनुरोध है कि प्रत्येक बहिन को इस पुस्तक को ध्यानपूर्वक मनन करना चाहिए, ताकि उन्हें अपनी वास्तविक स्थिति का ज्ञान प्राप्त हो सके।

पुस्तक की छपाई-सफ़ाई के विषय में इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि यह नवीन संस्करण फ़ाइन आर्ट प्रिन्टिङ्ग कॉटेज में छपा है। पुस्तक सजिल्द है। ऊपर दो तिरङ्गी तस्वीरों सहित नयनाभिराम प्रोटेक्टिङ्ग कवर भी दिया गया है। मूल्य वही २॥); स्थायी ग्राहकों से १॥।=) मात्र !!

☞ व्यवस्थापिका 'चाँद' कार्यालय, इलाहाबाद

नवीन संस्करण छप गया !
प्रकाशित हो गया !
शैल कुमारी
[ले० पं० रामकिशोर जी मालवीय, सहकारी सम्पादक 'अभ्युदय']
यह उपन्यास अपनी मौलिकता, मनोरञ्जकता, शिक्षा, उत्तम लेखन-शैली तथा भाषा की सरलता और लालित्य के कारण हिन्दी-संसार में विशेष स्थान प्राप्त कर चुका है। अपने ढङ्ग के इस अनोखे उपन्यास में यह दिखाया गया है कि आजकल एम० ए०, बी० ए० और एफ़० ए० की डिग्री-प्राप्त स्त्रियाँ किस प्रकार अपनी विद्या के अभिमान में अपने योग्य पति तक का अनादर कर उनसे निन्दनीय व्यवहार करती हैं ; किस प्रकार उन्हें घरेलू काम-काज से घृणा उत्पन्न हो जाती है; अपने पति से वे किस प्रकार ख़िदमतें कराती हैं और उनका गार्हस्थ्य जीवन कितना दुखपूर्ण हो जाता है। दूसरी ओर यह दिखाया गया है कि पढ़े-लिखे युवकों के साथ फूहड़ तथा अनपढ़ और गँवार कन्याओं का बेजोड़-विवाह ज़बरदस्ती कर देने से दोनों का जीवन कैसा दुखमय हो जाता है। इन सब बातों के अलावा स्त्री-समाज के प्रत्येक महत्वपूर्ण विषयों पर प्रकाश डालकर उसकी बुराइयाँ दूर करने के उदाहरण दिए गए हैं।
दो तिरङ्गे और चार सादे चित्रों से सुसज्जित लगभग २५० पृष्ठ की इस सुन्दर पुस्तक का मूल्य केवल २); स्थायी ग्राहकों से १॥);
नवीन संस्करण अभी-अभी प्रकाशित हुआ है।
व्यवस्थापिका 'चाँद' कार्यालय, इलाहाबाद

६,००० प्रतियाँ हाथोंहाथ बिक चुकी हैं !!
तीसरी बार !
प्राणनाथ
तीसरा संस्करण !!
लेखक—
लम्बी दाढ़ी, नाक में दम, मार-मार कर हकीम, लतखोरी लाल, आदि-आदि अनेक पुस्तकों के रचयिता—हास्यरस के प्रधान लेखक
श्री० जी० पी० श्रीवास्तव, बी० ए०, एल्-एल्० बी०
इस सुन्दर उपन्यास की उत्तमता का अन्दाज़ा इसी बात से लगाया जा सकता है कि इसकी ६,००० प्रतियाँ हाथोंहाथ बिक चुकी हैं और नित्य माँगें चली आ रही हैं ! वह चीज़ है जिसे पढ़कर आपको अपनी सामाजिक स्थिति पर घण्टों विचार भी करना होगा और सामाजिक सुधार के क्षेत्र में अपने को उतारने की शपथ खानी होगी । पहले संस्करण का मूल्य २।।।) था पर केवल प्रचार की दृष्टि से इसे घटा कर २।।) कर दिया गया है, छपाई-सफ़ाई दर्शनीय हुई है । पुस्तक सजिल्द है । आज ही एक प्रति मँगा लीजिए । स्थायी ग्राहकों से मूल्य केवल १।।।=)
व्यवस्थापिका 'चाँद' कार्यालय, इलाहाबाद

Printed and Published by R. SAIGAL—Editor—at The Fine Art Printing Cottage
Twenty-eight, Elgin Road Allahabad.